आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला, पुष्प-१

प्रभाचन्द्र कृत

आराधना कथा प्रबन्ध

(कथा कोश)

हिन्दी अनुवाद

डॉ० रमेशचन्द जैन, एम. ए., पी.-एच. डी.
डी० लिट्०, जैनदर्शनाचार्य
अध्यक्ष–संस्कृत विभाग
वर्द्धमान कालेज, बिजनौर, उ० प्र०

प्रकाशक

आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला
बुढ़ाना (मुजफ्फरनगर) उ. प्र.

आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० सुपार्श्वकुमार जैन, डॉ० रमेशचन्द जैन

डॉ० जयकुमार जैन व डॉ० श्रेयांसकुमार जैन

प्रथम संस्करण

वीर निर्वाण सवत् २५१६

विक्रम संवत् २०४७

सन् १९९०

मूल्य - ३० रुपये

मुद्रक

वैशाली प्रेस,

निकट जैन मन्दिर

बिजनौर, उ. प्र.

Acharya Shantisagar (Chhani) Smriti Granthamala

Prabha Chandra's

Aaradhana Katha Prabandha

or

Kathakosha

Translated by

Dr. Ramesh Chand Jain

M. A. Ph. D., D. Litt., Jain Darshanacharya

Head of the Sanskrit department

Vardhaman College, Bijnor, U. P.

Published by

Acharya Shantisagar (Chhani) Smriti Granthamala Budhana (Muzaffarnagar)

U. P., India

परम पूज्य, तपोनिधि, उपाध्याय 108 श्री ज्ञान सागर जी महाराज

समर्पण

प्रज्ञा के पुञ्ज
पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज
के कर कमलों में
श्रद्धा, भक्ति, विनय
और
आदर के साथ
श्री प्रभाचन्द्र विरचित
आराधना कथा प्रबन्ध
सानुवाद
निम्नाङ्कित भावना के साथ
सादर समर्पित—

विषयों की आशा नहिं जिनके,
साम्यभाव धन रखते हैं।
निज–पर के हित साधन में जो,
निशदिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या,
बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के,
दुख समूह को हरते हैं॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का,
ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उनही जैसी चर्या में यह,
चित्त सदा अनुरक्त रहे॥

—[illegible] जैन

प्रकाशकीय

बुढ़ाना नगर के सौभाग्य से इस वर्ष गर्मियों में पूज्य १०८ उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज तथा मुनि वैराग्य सागर महाराज का शुभागमन हुआ। पूज्य महाराज श्री के शुभागमन से बुढ़ाना जैन समाज का धार्मिक उत्साह दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। फलतः दिनांक २३ एवं २४ मई १९९० को उपाध्याय श्री एवं मुनि श्री के सांनिध्य में एक भव्य गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें देश के मूर्द्धन्य विद्वान् उपस्थित हुए। इस अवसर पर शास्त्रि परिषद् का अधिवेशन भी हुआ। गोष्ठी के कुछ दिनों बाद ही श्रुतपंचमी के शुभ दिन बुढ़ाना के उत्साही भाई बहनों ने आचार्य शान्तिसागर "छाणी" स्मृति ग्रन्थमाला की स्थापना की। लगभग एक लाख रुपया की धनराशि भिन्न २ दान दाताओं की ओर से श्रुत के प्रकाशन एवं संरक्षण हेतु प्राप्त हुई। ग्रन्थमाला की एक समिति गठित की गई, जिसके सम्पादक मण्डल में डा० सुपार्श्वकुमार जैन, डा० रमेशचन्द जैन, डा० जयकुमार जैन, एवं डा० श्रेयांसकुमार जैन, को सम्पादक मनोनीत किया गया। परामर्शदाताओं में श्रीमान् डा० पन्नालाल साहित्याचार्य, डा० दरबारी लाल कोठिया, ब्र० पं० सुमति चन्द्र शास्त्री डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल एव डा० प्रेम सुमन जैन मनोनीत हुए।

समिति ने अपने उद्देश्यों को मूर्त रुप देने हेतु यह निर्णय किया कि भट्टारक प्रभाचन्द्र कृत आराधना कथा प्रबन्ध (कथाकोश) का सानुवाद प्रकाशन किया जाय। तदनुसार उक्त ग्रन्थ के अनुवादक डा० रमेशचन्द जैन से अनुरोध किया गया कि वे उक्त ग्रन्थमाला का अनुवाद ग्रन्थमाला को प्रकाशनार्थ दें। डा० सा० ने सभी के अनुरोध को स्वीकार करते हुए अपनी पाण्डुलिपि ग्रन्थमाला को समर्पित कर दी। हर्ष की बात है कि आराधना कथा प्रबन्ध प्रकाशित होकर पाठकों के हाथ में आ रहा है।

जिनवाणी प्रकाशन सम्बन्धी उक्त समस्त कार्यों हेतु उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज एवं मुनि श्री वैराग्यसागर जी महाराज ने हमें आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया है। उनके श्री चरणों में हमारा बारंबार नमोऽस्तु।

हम ग्रन्थमाला से सम्बद्ध समस्त विद्वज्जनों, दानदाताओं तथा बुढ़ाना नगर के समस्त साधर्मी भाईयों के आभारी है, जिनके सहयोग से हमारे समस्त कार्य वर्तमान में सुसम्पादित हो रहे है और भविष्य में होंगे।

रतनलाल जैन
(मन्त्री)
आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला
बुढ़ाना (मुजफ्फनगर) उ० प्र०

प्रस्तावना

जैन कथा साहित्य

जैन कथा साहित्य बहुत विशाल है । चार अनुयोगों में से यह प्रथमानुयोग के अन्तर्गत आता है । प्रथमानुयोग के विषय में आचार्य समन्तभद्र ने कहा है–

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ।।४३।।

सम्यग्ज्ञान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का जिसमें कथन है ऐसे चरित को पुण्य पुराण को, जो कि बोधि और समाधि का निधान है, जानता है ।

इससे स्पष्ट है कि पुराण पुरुषों की कथायें और चरित्र बोधि और समाधि के निधान हैं। इन कथाओं की अधिकांश रचना श्रमणों द्वारा की गई है। महाश्रमण भगवान महावीर ने सर्वप्रथम द्वादशाङ्ग में इसकी प्ररूपणा की, उसका अवधारण गौतमादि गणधरों ने किया। अनन्तर वे आचार्य परम्परा से हमें प्राप्त हुई । इन कथाओं के जो नायक या श्रेष्ठ चरित हैं, उनके जीवन को नया मोड़ देने और उज्ज्वल बनाने में जैन श्रमणों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । अतः प्रायः प्रत्येक कथा का सम्बन्ध कहीं न कहीं दिगम्बर मुनि से अवश्य रहता है । उदाहरणार्थ पार्श्वनाथ मन्दिर में चारित्रभूषण मुनि के द्वारा देवागम स्तोत्र सुनकर पात्रकेशरी का जीवन ही बदल गया । वे मिथ्यामत छोड़कर जैनधर्म के श्रद्धानी हो गए और उन्होंने जैन धर्म का बहुत प्रचार और प्रसार किया । उनके महापाण्डित्य से प्रभावित होकर राजा भी जैनधर्मी हो गया ।

अकलङ्कदेव और निष्कलङ्कदेव के माता पिता ने श्रमण रविगुप्ताचार्य के समीप नन्दीश्वर पर्व की अष्टमी के दिन आठ दिन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया और क्रीडा से पुत्रों को भी यह व्रत दिया, जिसका उन्होंने जीवन भर निर्वाह किया और अनेक कठिनाईयों के बीच विद्याध्ययन कर जैन धर्म की महान् प्रभावना की । उन्होंने राजा हिमशीतल की राज्यसभा में बौद्धों को जीतकर राजा को जिनधर्मी बना लिया।

सनत्कुमार चक्रवर्ती ने वैराग्य को प्राप्त हो शिवगुप्त मुनि के समीप उग्रतप किया। अन्त में घातिकर्मों का क्षय हो उन्हें केवलज्ञान हुआ।

आचार्य समन्तभद्र की कथा से ज्ञात होता है कि उन्होंने स्वयम्भू स्तोत्र की रचना कर भगवान् चन्द्रप्रभ की प्रतिमा प्रकट की और राजा शिवकोटि को जैनधर्मी बना लिया।

समुद्रदत्त व्यापारी, जिसके श्रीभूति पुरोहित ने रत्न चुरा लिए थे, धर्माचार्य के पास मुनि हो गया।

अंजन चोर चारण मुनि के समीप तप ग्रहण कर कैलाशपर्वत पर केवलज्ञान उत्पन्न कर मोक्ष चला गया।

श्रेष्ठी प्रियदत्त और उसकी भार्या अङ्गवती ने चम्पानगरी में आचार्य धर्मकीर्ति के पादमूल में ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया, क्रीड़ा हेतु अपनी पुत्री अनन्तमती को भी व्रत ग्रहण करा दिया। इस व्रत का अनन्तमती ने अनेक बाधायें आने पर भी जीवन भर निर्वाह किया।

राजकुमार वारिषेण उपसर्ग निवारण के बाद सूरदेव मुनि के समीप मुनि हो गए।

वात्सल्य अङ्ग के धारी विष्णुकुमार ने सात सौ मुनियों के ऊपर होने वाले घोर उपसर्ग को दूर किया। बलि आदि मन्त्री अकम्पनाचार्यादि के चरणों में गिरकर श्रावक हो गए।

अज्ञानी गोपाल ने चारणमुनि की शीतकाल की रात्रि में शरीर पर गिरे हुए तुषार आदि को हटाकर सेवा की, फलस्वरूप वह अगले जन्म में सेठ सुदर्शन हुआ।

राजा श्रेणिक, सगरचक्रवर्ती, दशानन, विभीषण, मन्दोदरी, हरिषेण चक्रवर्ती, अंजना, राम, कृष्ण, भरत, सुकौशलमुनि, वज्रजंघ, जटायु, भामण्डल, त्रिलोकमण्डन हाथी आदि की कथाओं में कहीं न कहीं श्रमणमुनि की भूमिका अवश्य दृष्टिगोचर होती है। श्रमणों के सदुपदेश से राजा, रानी, पुरोहित, राजकुमार, राजपुत्री, चोर, गोपाल आदि सभी प्रकार के मनुष्यों ने अपने जीवन में सुधार किया। यहाँ तक कि पशु भी उपदेश श्रवण कर धर्म के दृढ़ श्रद्धानी बन गए। इन सबका वर्णन जैन कथा साहित्य में हुआ है। अधिकांशतया यह होता है

कि किसी नगर, उद्यान, वन या पर्वत पर मुनि का आगमन होता है। लोग उनके पास धर्मश्रवण हेतु जाते हैं । उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक लोग व्रत ग्रहण कर लेते हैं। बहुत से श्रावक के व्रत ग्रहण करते हैं, बहुत से मुनि बनकर अपने इहलोक और परलोक को यशस्वी बनाते हैं और बहुत से मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार स्वर्ग, मोक्ष और सद्गति प्रदाता के रूप में जैनश्रमण सदैव स्मरणीय रहे हैं। किसी श्रावक के उपदेश से कोई मुनि बन गया हो, ऐसा कोई उदाहरण देखने में नहीं आया । किन्तु मुनि के उपदेश से अथवा उनके प्रभाव से अधिकांश मुनि बन गए और उन्होंने आत्मकल्याण किया ।

एक ओर श्रमणों ने उपदेश देकर परोपकार किया, दूसरी ओर उन्होंने साहित्य सृजन भी किया, कथा साहित्य भी इसका एक अङ्ग है। इसका अनेक प्रकार से वर्गीकरण प्राप्त होता है। दशवैकालिक में सामान्य कथा के तीन भेद किए गए हैं–

अकहा कहा य विकहा हविज्ज पुरिसंतरं पप्प ॥ दश० हा० गाथा २०८–२११ पृ० २२७

अकहा– मिथ्यात्व के उदय से अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जिस कथा का निरूपण करता है, वह संसार परिभ्रमण का कारण होने से अकथा कहलाती है ।

कथा–तप, संयम, दान शील आदि से पवित्र व्यक्ति लोक कल्याण के लिए अथवा विचार शोधन हेतु जिस कथा का निरूपण करता है, वह कथा कहलाती है। इस कथा को ही कुछ मनीषियों से सत्कथा कहा है । (१)

विकथा–प्रमाद–कषाय, राग, द्वेष, स्त्री, भोजन, राष्ट्र, चोर एवं समाज को विकृत करने वाली कथा विकथा कहलाती है।

दशवैकालिक में वर्ण्यविषय की दृष्टि से कथाओं के चार भेद किए गए हैं–अर्थकथा कामकथा धर्मकथा और मिश्रित कथा ।

---

१. 'सत्कथा श्रवणात्' पद्मचरित प्रथम पर्व श्लो. ४०
जिनसेन: महापुराण १/१२०

अत्थकहा कामकहा धम्मकहा चेव मीसिया य कहा ।
एत्तो एक्केक्कावि य णेगविहा होइ नायव्वा ।। दस० गा० १८८
पृ० २१२

अर्थकथा—विद्या शिल्प उपाय—प्रयास—अर्थार्जन के लिए किया गया प्रयास, निर्वेद—संचय, साम, दंड और भेद का जिसमें वर्णन हो या जिसमें ये विषय अनुमित या व्यंग्य हों वह अर्थकथा है।

विज्जासिप्पमुवाओ अणिवेओ संचओ य दक्खत्तं ।
साम दंडो भेओ उवप्पयाणं च अत्थकहा ।। दस० गा० १८९ पृ० २१२

कामकथा—रूप—सौन्दर्य अवस्था—युवावस्था देश दाक्षिण्य आदि विषयों की तथा काल की शिक्षा का दृष्टि श्रुत अनुभूत और संयम—परिचय प्रकट करना कामकथा है।

रूपं वओ य वेसो दक्खत्त सिक्खियं च विसयेसु ।
दिट्ठं सुयमणुभूयं च संथवो चेव कामकहा ।।

धर्मकथा—जिसमें क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, संयम, सत्य आकिंचन, ब्रह्मचर्य अणुव्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, भोग परिभोग, अतिथि संविभाग, अनुकम्पा और अकामनिर्जरा के साधनों का बहुलता से वर्णन हो, वह धर्मकथा है।

धर्मकथा के भेद—धर्मकथा के चार भेद हैं—आक्षेपिणी विक्षेपिणी संवेगिनी और निर्वेदनी।

आक्षेपिणी—आक्षेपिणी कथा में चार बातें आती हैं—आचार व्यवहार प्रज्ञप्ति और दृष्टिवाद। आचार के अन्तर्गत लोक व्यवहार मुनि और गृहस्थों के रहन सहन, सदाचार मार्ग आदि परिगणित हैं। व्यवहार के अन्तर्गत प्रायश्चित्त दोषों का परिमार्जन भूलों और प्रमादों के लिए पश्चाताप आदि हैं। प्रज्ञप्ति में संशयापन्न व्यक्ति के संशय को मधुर वचनों के द्वारा निरूपण करना दुखी और पीड़ित व्यक्ति को सान्त्वना देना, विपरीत आचरण वाले के लिए मध्यस्थ भाव रखना तथा समस्त प्राणियों के साथ मित्रता का व्यवहार करना परिगणित है।

---

१. समराइच्चकहा पृ० ३

दृष्टिवाद में श्रोता की अपेक्षा सूक्ष्म, गूढ और हृदयग्राही भाव एवं संवेदनाओं का निरूपण करना अभिप्रेत है।

विक्षेपिणी कथा—विक्षेपिणी कथा के चार भेद हैं—
१— स्वशास्त्र का कथन कर परशास्त्र का कथन करना (२) परशास्त्र का निरूपण कर स्वशास्त्र का कथन करना (३) मिथ्यात्व कहकर सम्यक्त्व का कथन करना (४) सम्यक्त्व का कथन कर मिथ्यात्व का विवेचन करना। (अ)
संवेगिनी—वैराग्यवर्द्धक कथायें।

निर्वेदिनी-निर्वेदिनी कथा में सांसारिक सुख-दुख से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी बातें तथ्य रूप में अंकित की जाती हैं, जिनका प्रभाव पूर्णतया निर्वेद-आसक्ति त्याग के लिए होता है।

मिश्रित कथा—अर्थकथा, कामकथा और धर्मकथा इन तीनों का इसमें मिश्रण पाया जाता है। हरिभद्र सूरि ने इसे उदाहरण, हेतु और कारणों से समर्थित माना है।

पात्रों के आधार पर कथायें तीन भागों में विभाजित हैं-१-दिव्य २— मानुष और ३— दिव्य मानुष(आ)

भाषा के आधार पर कथायें तीन प्रकार की होती हैं १—संस्कृत २—प्राकृत और ३—मिश्र। (इ)

स्थापत्य के आधार पर उद्योतन सूरि ने कथाओं के पांच भेद किए हैं—

१—सकल कथा २—खण्ड कथा ३—उल्लाप कथा ४—परिहास कथा और ५—संकीर्ण कथा।(ई)

सकल कथा—जिसके अन्त में समस्त फलों—अभीष्ट वस्तु की

अ दश० हा० प० २२१
आ तत्थ य तिविहं कथावत्थु इति पुव्वायरियपवाओ। तं जहा दिव्वं, दिव्वमाणुसं, माणुसं च॥ वही पृ० २
इ अण्णं सक्कयपायय संकिण्ण विहा सुवण्णा रइयाओ।
सुव्वंति महाकइ पुंगवेहि विविहाउ सुकहाओ॥ ३६॥ लीलावई
ई कुवलयमाला पृ० ४

प्राप्ति हो जाय, ऐसी घटना का वर्णन सकल कथा में होता है। सकलकथा की शैली महाकाव्य की होती है। शृंगार, वीर और शान्त रसों में से किसी एक रस का प्राधान्य होता है। यद्यपि अंग रूप में सभी रस निबन्धित रहते हैं। नायक कोई अत्यन्त पुण्यात्मा, सहनशील और आदर्शचरित वाला व्यक्ति होता है। इसमें नायक के साथ प्रतिनायक का भी नियोजन रहता है तथा प्रतिनायक अपने क्रियाकलापों से सर्वदा नायक को कष्ट देता है। जन्म जन्मान्तर के संस्कार अत्यन्त सशक्त होते हैं।

खण्डकथा—जिसका मुख्य इतिवृत्त रचना के मध्य में या अन्त के समीप लिखा जाय, उसे खण्डकथा कहते हैं। खण्डकथा की कथावस्तु छोटी होती है। जीवन का लघु चित्र ही उपस्थित किया जाता है।

उल्लाप कथा—ये एक प्रकार की साहसिक कथायें हैं, जिनमें समुद्र यात्रा या साहसपूर्वक किए गए कार्यों का निरूपण रहता है। इसमें असम्भव और दुर्घट कार्यों की व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। उल्लाप कथा का उद्देश्य नायक के महत्त्वपूर्ण कार्यों को उपस्थित कर पाठक को नायक के चरित्र की ओर ले जाना है। इसकी शैली वैदर्भी रहती है। छोटी छोटी ललित पदावली में कथा लिखी जाती है।

परिहास कथा—यह हास्य व्यंगात्मकता का सृजन करने में सहायक होती है।

संकीर्ण कथा—इन कथाओं की शैली वैदर्भी होती है तथा इनमें अनेक तत्त्वों का मिश्रण होने से जनमानस को अनुरंजित करने की अधिक क्षमता होती है। मिश्र कथा गद्य-पद्य मिश्रित शैली में ही लिखी जाती है। उपदेश को मध्य में इस प्रकार निहित किया जाता है, जिससे पाठक के मन में जिज्ञासावृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है। (उ)

उ प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ४४८-४४९

धार्मिक उपदेशों को कथा के माध्यम से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति प्राचीनकाल से चली आ रही है। श्वेताम्बर आगम साहित्य में आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, भगवतीसूत्र नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ अन्तः कृद्दशाङ्ग और अनुत्तरोपपातिक, विपाकसूत्र, उपाङ्ग, साहित्य, मूलसूत्र एवं छेदसूत्रों में सुन्दर कथायें आयी हैं। उत्तराध्ययन में अनेक भावपूर्ण और शिक्षाप्रद आख्यान हैं। दृष्टिवाद अङ्ग में भी कथाओं का सहारा लिया गया था।

आचार्य कुन्दकुन्द के भावपाहुड में बाहुबलि, मधुपिङ्ग,वशिष्ठ मुनि, शिवभूति, बाहु, द्वीपायन शिवकुमार और भव्यसेन के भावपूर्ण कथानकों का उल्लेख है। यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ति में त्रेसठ शलाका पुरुषों की जीवनी के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत की है। श्वेताम्बर आगमों पर जो भाष्य और टीकायें लिखी गई हैं, उनमें कथाओं का समावेश है। आवश्यक चूर्णि, सूत्रकृताङ्ग चूर्णि, निशीथ-चूर्णि और दशवैकालिक चूर्णि में अनेक सुन्दर कथायें हैं। भगवती आराधना में अतिसंक्षिप्त रूप में गाथाओं के माध्यम से कथाओं का निर्देश किया गया है। प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत में अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे गए हैं, इनमें कथाओं की बहुलता है। प्राकृत में पउम-चरिय, तरंगवती, वसुदेवहिंडी, समराइच्चकहा, धूर्ताख्यान, लीलावई कहा, चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, सुरसुन्दरी चरियं, कथाकोशप्रकरण, संवेगरंगशाला, नागपंचमी कहा, सिरि विजयचंद केवलिचरियं महावीर चरियं, सिरिपासनाहचरियं, रयणचूडरायचरियं, आख्यानमणिकोश सुपा-सनाहचरिय, सिरिवाल कहा, रयणसेहर कहा, महिवाल कहा, कुमार-पाल प्रतिबोध, पाइअकहा सगओ, कुवलयमाला, निर्वाणलीलावती कथा कालिकायरियकहाणय, नम्मया सुन्दरी कहाणय, मणिवाल कथा आदि कथा साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

जैनाचार्यों ने जब संस्कृत को अपनाया तो अनेक कथाग्रन्थों की रचनायें हुई। सिद्धर्षि ने उपमितिभवप्रपंचकथा, धनपाल ने तिलकमंजरी, हेमचन्द्र ने त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित और हरिषेण ने बृहत्कथा कोश जैसे मौलिक ग्रन्थों की रचना संस्कृत में की। बृहत्कथाकोश के अतिरिक्त चार आराधनाओं के महत्त्व को प्रकट

करने वाले कुछ और कथाकोश रचे गए हैं। उनमें प्रभाचन्द्र, सिंहनन्दि, नेमिचन्द्र और ब्रह्मदेव के संस्कृत में हैं। कुछ अन्य कथाकोश, जिन्हें व्रत कथाकोश भी कहते हैं। उनमें दयावर्द्धन, देवेन्द्रकीर्ति, धर्मचन्द्र एवं मल्लिषेण की रचनाओं का उल्लेख मिलता है। अन्य कथाकोशों में वर्द्धमान, चन्द्रकीर्ति, सिंहसूरि तथा पद्मनन्दि के ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। पुण्यास्रव कथाकोश मदनपराजय, यशोधर चरित, पद्मचरित, श्रीपालचरित, भविस्यदत्त कथा, मुनिपतिचरित, सुकुमालचरित, नरवर्मकथा, मृगांकचरित, चन्द्रप्रभचरित, शालिवाहन चरित, अकलंक कथा, पात्रकेशरि कथा, विक्रमसेनचरित, नागदत्त-कथा, मलयसुन्दरी कथा, सुभद्राचरित, सुदर्शनचरित, शत्रुंजय माहात्म्य, ज्ञान पंचमी कथा, सुगन्धदशमी कथा, भक्तामर कथा, विक्रम चरित, भोजचरित, आदि ग्रन्थ संस्कृत भाषा में जैनकथाओं का सुन्दर प्रस्तुतीकरण करते हैं। इनके अतिरिक्त भिन्न भिन्न तीर्थंकरों पर पुराण लिखे गए हैं। इनमें पद्मचरित (पद्मपुराण) आदिपुराण, हरिवंश पुराण, उत्तर पुराण विशेष प्रसिद्ध हैं। चरित और महाकाव्य की परिधि में आने वाली समस्त कृतियां कथाओं को सँजोए हुए हैं।

ईसवी सन् की लगभग दसवीं शताब्दी के आस पास से अनेक अपभ्रंश कृतियों का सृजन हुआ। इनमें पउमचरिउ, करकंडुचरि, मयण पराजय चरिउ, सुदंसण चरिउ, सिरिवाल चरिउ रिट्ठणेमि चरिउ पासणाह चरिउ वड्ढमाण चरिउ णायकुमार चरिउ, जम्बु-कुमार चरिउ आदि चरित ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं इनमें सुन्दर कथाएं पाए जाते हैं।

आराधना कथा प्रबन्ध

जैनधर्म में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप ये चार आराधनायें कही गई हैं। इन आराधनाओं के फलस्वरूप मृत्यु जैसे कठिन समय में भी भेदविज्ञान की प्राप्ति होती है। ये भावनायें सम्यक् श्रद्धा, भक्ति आत्म संयम और भेदज्ञान की प्रतीक हैं। इन आराधनाओं पर शिवार्य कृत भगवती आराधना एक प्राचीन ग्रन्थ पाया जाता है। इसे मूलाराधना भी कहते हैं। भगवती आराधना

है जिन कथाओं की ओर संक्षेप में सङ्केत है, उन कथाओं पर संस्कृत प्राकृत और कन्नड़ में अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं, जिनमें हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश, प्रभाचन्द्रकृत आराधना कथाप्रबन्ध अथवा कथाकोश, श्रीचन्द्रकृत 'कह कोसु' आदि प्रमुख हैं। भगवती आराधना पर विभिन्न भाषाओं में जो टीकायें लिखी गईं, उनके आधार पर इन स्वतन्त्र कथा ग्रन्थों की रचना हुई। इन टीकाओं में से अधिकांश टीकायें आज अनुपलब्ध हैं।

प्रभाचन्द्र ने 'आराधना कथा प्रबन्ध' की रचना के पूर्व भगवती आराधना की दो गाथायें उद्धृत की हैं। कथाओं का प्रारम्भिक परिचय प्रायः संस्कृत वाक्यों से दिया गया है। शीर्षक के बाद प्रायः भगवती आराधना की गाथा अथवा गाथा का भाग दिया हुआ है। डा० ए० एन० उपाध्ये ने कथाकोश अथवा आराधना कथा प्रबन्ध की प्रस्तावना में एक तालिका दी है, जिसमें यह दिखलाया गया है कि किस प्रकार विभिन्न कथायें क्रमशः भगवती आराधना की गाथाओं से सम्बन्धित हैं। ९० कहानियों में प्रभाचन्द्र प्रायः भगवती आराधना का अनुसरण करते हैं।

९०-१ की कहानी से आगे की कहानियों में न केवल क्रम का ही भङ्ग हुआ है, अपितु कुछ कहानियाँ जो प्रथम भाग में दी गई हैं, दुहरा दी गई हैं। १४ वीं कथा तथा उससे आगे की कथाओं में संस्कृत की पंक्तियाँ जो प्रायः आर्या छन्द की भाग हैं, उद्धृत की गई हैं। यह संभव है कि प्रभाचन्द्र के सामने आर्या छन्द में संस्कृत की आराधना रही है, जिससे वे पद्यभाग उद्धृत करते हैं और उनमें उदाहरण स्वरूप कथायें जोड़ देते हैं। कथा नं० ९०-३२ संस्कृत के एक विशेष पद्य से प्रारम्भ होती है तथा इसके प्रारम्भ में भगवती आराधना की गाथा नं० ४४६ भी है। संस्कृत पद्य से प्रारम्भ होना इस कथा की निजी विशेषता है।

आराधना कथा प्रबन्ध दो भागों में विभाजित है। प्रथम में ९० कहानियाँ हैं और दूसरे में शेष ९०-१ इत्यादि हैं। प्रथम भाग का शीर्षक आराधना कथा प्रबन्ध है, (इसका निर्माण प्रभाचन्द्र पण्डित के द्वारा हुआ, जो कि जयसिंहदेव के राज्य में धारा के निवासी थे।

दूसरे भाग के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण नहीं है। इसके अन्त में जो प्रशस्ति दी है उससे ज्ञात होता है। कि यहाँ भट्टारक प्रभाचन्द्र द्वारा निर्मित कथाकोश समाप्त होता है। इस विषय में निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं कि दोनों भागों के रचनाकर पण्डित प्रभाचन्द्र और भट्टारक प्रभाचन्द्र एक ही थे अथवा भिन्न २ थे। दोनों की शैली और अभिव्यक्ति को देखते हुए डा० ए० एन० उपाध्ये इन्हें एक ही व्यक्ति मानते हैं। शैली में केवल एक अन्तर है कि प्रथम भाग में कथाओं का प्रारम्भिक परिचय आर्या छन्द के संस्कृत वाक्यों में दिया गया है किन्तु द्वितीय भाग में अधिकांश परिचय भगवती आराधना की गाथाओं के भाग से दिया गया है। प्रभाचन्द्र ने एक स्रोत का अनुसरण करते हुए अपने कथाप्रबन्ध को ९० कथाओं में पूर्ण किया होगा, किन्तु जैसे ही उन्हें दूसरी टीका या कथाकोश प्राप्त हुआ होगा (जिसमें कि अधिक कहानियाँ थीं,) उन्होंने पूरक भाग जोड़ दिया होगा। दो स्रोतों के इस प्रकार मिश्रण से कहानियाँ पुनरुक्त हो गईं, जैसे कि १४ और ९० [illegible] १५ और ९० [illegible] १८, १९ और ९० [illegible] ३१

प्रभाचन्द्र ने अपनी रचना के प्रारम्भ में आराधना सत् या सत्सुकथा प्रबन्ध कहकर उसका उल्लेख किया गया है। इसे कथाकोश भी कहते हैं। ग्रन्थ के अन्त में दिए गए वाक्यों से प्रकट होता है। कि प्रभाचन्द्र पण्डित जयसिंहदेव के राज्य में धारा नगरी में रहते थे, वहीं उन्होंने इस कृति की रचना की। जयसिंह देव के हाथ में सत्ता राजा भोज (१०१८–५५) के बाद में आयी। इस प्रकार प्रभाचन्द्र का समय ११वीं शताब्दी का अन्तिम भाग निर्धारित होता है। ये प्रभाचन्द्र न्यायकुमुदचन्द्र तथा प्रमेयकमल मार्तण्ड के कर्त्ता प्रभाचन्द्र से भिन्न प्रतीत होते हैं, क्योंकि कथाकोश की शैली और उपर्युक्त न्याय ग्रन्थों की शैली में बहुत अन्तर है। यह सम्भव है कि ये प्रभाचन्द्र वही हों, जिन्होंने रत्नकरण्ड श्रावकाचार, आत्मानुशासन तथा समाधिशतक पर टीकायें लिखी हैं। कथाकोश की शैली बड़ी संक्षिप्त है। कुछ कथायें तो इतनी संक्षिप्त हैं कि उनको विस्तृत रूप से समझने के दूसरे स्रोतों से सहारे की आवश्यकता रहती है। इन कहानियों में कई ऐसे शब्द हैं, जिनकी संस्कृत कोशों में उपलब्धि नहीं होती, इसके लिए प्राकृत,

अपभ्रंश अथवा कन्नड स्रोतों की अपेक्षा होती है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इनका अध्ययन अपेक्षित है। भट्टारकीय मान्यताओं का भी ग्रन्थ में कहीं कहीं समर्थन हुआ है, जो कि तत्कालीन परिस्थिति का प्रभाव है।

प्रस्तुत संस्करण हेतु आभार प्रदर्शन

प्रभाचन्द्र के इस कथाकोश का सर्वप्रथम प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, देहली की ओर से माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला की ओर से वीर निर्वाण संवत् २५०० (१९७४ ई०) में हुआ था। यह संस्करण *स्व० श्री नाथूराम प्रेमी* से उपलब्ध एक मात्र प्रति के आधार पर डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ने तैयार किया था। उसकी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना नामानुक्रमणिका आदि उन्होंने ही तैयार की थी। ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार के परिचय के लिए मेरी प्रस्तावना डा० *उपाध्ये की ऋणी है।*

स्व० नाथूराम प्रेमी, जिन्होंने इस प्रति को सुरक्षित रखा तथा डा० आ० ने० उपाध्ये, जिन्होंने इसका सुन्दर संस्करण भारतीय ज्ञान-पीठ द्वारा निकलवाकर इसे सर्वजन सुलभ बनाया, के प्रति मैं अपनी *हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, क्योंकि मेरी प्रति का आधार यही* प्रति है। इसका हिन्दी अनुवाद मैंने ६-११-१९७९ई० को ३ ॥ बजे सायंकाल पूर्ण किया था, किन्तु किसी से कुछ न कहने के मेरे संकोच और समाज की साहित्य प्रकाशन के प्रति उदासीनता के कारण जून १९९० तक इसका प्रकाशन न हो सका। सौभाग्य से बुढ़ाना जैन समाज ने इस वर्ष श्रुतपञ्चमी पर आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रन्थमाला का शुभारम्भ किया। इसके प्रथम पुष्प के रूप में यह पुस्तक सानुवाद प्रकाशित हो रही है, इसके लिए बुढ़ाना जैन समाज और *उसके श्री रतनलाल जैन जैसे कार्यकर्ता बधाई के पात्र हैं।*

ग्रन्थमाला के सौभाग्य से पूज्य १०८ उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं मुनि श्री १०८ वैराग्य सागर महाराज का आशीर्वाद प्राप्त है। आशा है, यह ग्रन्थमाला दिन दूनी तथा रात चौगुनी उन्नतिकर श्रुत के संरक्षण और प्रकाशन के क्षेत्र में बड़ी कार्य करेगी,

श्री वीतराग जैन ग्रन्थमाला जैसी आदर्श संस्थाएं कर रही है ।

इस अवसर पर स्व० पूज्य पितामह श्री मानचन्द जैन सौंरया, (मड़ावरा, जिला-ललितपुर) को स्मरण किए बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने बचपन से धर्मशास्त्रों के अध्ययन की प्रेरणा दी । कनिष्ठ पितामह पं० जम्बूप्रसाद जी शास्त्री (मड़ावरा) निरन्तर मुझे साहित्यिक कार्यों हेतु प्रेरित करते रहते हैं । ग्रन्थमाला सम्पादक डा० सुपार्श्व-कुमार जैन, डा० जयकुमार जैन, डा० श्रेयांसकुमार जैन के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने कथाकोष के प्रकाशन की संस्तुति की । मैंने भरसक मूलानुगामी अनुवाद करने का प्रयास किया है । यदि कहीं भूल हो गई हो तो मुझे अल्पज्ञ मानकर विद्वज्जन क्षमा करेंगे और त्रुटित स्थलों की ओर ध्यान आकर्षित करेंगे, ताकि आगे इनका परिमार्जन हो सके । इसके प्रकाशन की व्यवस्था में मैं इस वर्ष ग्रीष्मावकाश में घर भी नहीं आ सका, ऐसे समय पूज्य माता-पिता ने पुत्रमोह त्यागकर श्रुत प्रकाशन का जो अवसर प्रदान किया, उसके लिए उन्हें प्रणाम समर्पित हैं ।

—रमेशचन्द जैन

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ सं०
सम्यक् श्रद्धा प्रकाशन	१
सम्यक् ज्ञान उद्योतन	५
चारित्रोद्योतन	१५
ज्ञान और चारित्र उद्योतन	२१
तप उद्योत कथा	२७
सम्यक्त्व के मध्य प्रथम अङ्ग की कथा	३६
निःकांक्षित आख्यान कथा	४७
निर्विचिकित्साख्यानकम्	५१
अमूढदृष्टि आख्यानक	५१
उपगूहन अङ्ग की कथा	५५
स्थितिकरण अङ्ग की कथा	५७
वात्सल्याख्यानकम्	५६
प्रभावना अङ्ग की कथा	६५
एकत्व भावना का बल	६६
सङ्गति का प्रभाव	७३
बुरी सङ्गति	७५
सरलता	७५
भ्रान्ति	७७
मिथ्यात्व का प्रभाव	७७
दर्शन से भ्रष्ट ही भ्रष्ट है	७८
अविरत राजा श्रेणिक	८१
जिनेन्द्रभक्ति	८५
नमस्कार मन्त्र का प्रभाव	८५
स्वाध्याय का प्रभाव	८६
पञ्च नमस्कार मन्त्र का प्रभाव	६३
अहिंसाव्रत का प्रभाव	६५
झूठ का दुष्परिणाम	६७
दूसरे का धन हरण करने का दुष्परिणाम	१०१
नीच करनी	१०३

कामान्धता	१०५
कण्डरीक नरक गया	१०६
परस्त्री संसर्ग	१०८
ईर्ष्या	११०
कुलटा स्त्री	११२
आहारदान का प्रभाव	११५
मधुबिन्दु रूपक	११७
संसर्गज दोष	११७
कुसङ्गति का प्रभाव	१२३
वेश्या संसर्ग	१२५
स्त्रीसंसर्ग	१२५
सात्यकि और रुद्र की कथा	१२७
राजश्री कथा	१३१
रूप का लोभ	१३१
पाप का मूल परिग्रह	१३३
धन का लोभ	१३५
महाभय परिग्रह	१३५
धन का दुष्प्रभाव	१४५
परिग्रह की ममता	१४७
खोटा निदान	१४९
मान का दुष्प्रभाव	१५९
माया का परिणाम	१६१
मिथ्यात्व शल्य	१६१
घ्राणेन्द्रिय की पराधीनता	१६३
कर्णेन्द्रिय की पराधीनता	१६३
जिह्वेन्द्रिय की पराधीनता	१६५
रूपासक्ति	१६७
स्पर्शनेन्द्रिय का लोभ	१६९
क्रोध का दुष्परिणाम	१७१
मान का दुष्परिणाम	१७३

माया का दुष्परिणाम	१७५
लोभ का दुष्परिणाम	१७५
लोभ का दोष	१७७
ध्यान का प्रभाव	१७९
रत्नत्रय का निर्वाह	१८७
सहिष्णुता	१८९
समता भाव	१९१
मोह विमुक्ति	१९३
अवमोदर्य व्रत	१९३
तपाचरण	१९५
तृषा परिषहजय	१९७
शीत परिषहजय	१९७
उष्णपरिषहजय	१९९
सहन शक्ति	२०१
परमसमाधि	२०३
दंशमशक परिषहजय	२०३
परम ध्यान	२०७
समभाव	२०९
समाधि का बल	२११
परम सिद्धि	२१३
उपसर्ग विजय	२१३
उपसर्ग जय	२१७
अतिगृद्धता	२१७
रस की गृद्धता	२१९
जग के नाते रिश्ते	२१९
कर्म परवशता	२२५
कर्मों की पराधीनता	२२७
व्रत का निर्वाह	२२९
संन्यास	२२९
द्रोहशमन	२३१

समाधिमरण	२३३
सम्यक् श्रद्धा	२३५
आत्मनिन्दा	२३५
आत्मगर्हा	२३७
उपतपलोभ	२३७
ज्ञान की विनय	२३९
अकालस्याख्यानम्	२४१
विनयस्याख्यानम्	२४१
उपधानाख्यानम्	२४३
बहुमानाख्यानम्	२४५
अनिह्नवाख्यानम्	२४५
व्यञ्जनहीनाख्यानम्	२४७
अर्थहीनाख्यानम्	२४९
व्यञ्जनार्थयोर्हीनाख्यानम्	२४९
हीनाधिकव्यञ्जनाख्यानम्	२५१
अमूढता	२५१
त्याग तथा संयम	२५५
वैयावृत्य	२५७
दुर्जन सङ्गति	२५७
आश्रय का प्रभाव	२५९
सत्पुरुष	२६३
मनुष्य जन्म की दुर्लभता	२६३
पाशक दृष्टान्त	२६५
धान्य दृष्टान्त	२६५
द्यूत दृष्टान्त	२६७
रत्न दृष्टान्त	२६७
स्वप्न दृष्टान्त	२६७
चक्र दृष्टान्त	२६९
कूर्म दृष्टान्त	२६९

युग दृष्टान्त २६६
परमाणु दृष्टान्त २६६
मिथ्यात्व की तीव्रता का प्रभाव २७१
अनुराग २७५
प्रेमानुरागरक्ताख्यानम २७७
मज्जानुराग रक्ताख्यानम् २७७
धर्मानुरागरक्ताख्यानम् २७७
जिनेन्द्र भक्ति २७६
सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट ही भ्रष्ट है २७६
भव आताप निवार—सम्यग्दर्शन २८१
सम्यग्दर्शन का प्रभाव २८१
सम्यक्त्व की शुद्धता का माहात्म्य २८३
समर्था जिनभक्ति २६५

वात्सल्य मुर्ति 108 मुनि श्री वैराग्य सागर जी
महाराज

श्री शान्तिनाथाय नमः

परमपूज्य, योगी सम्राट्, तपोनिधि, प्रशम मूर्ति

आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज

(छाणी) का संक्षिप्त जीवन परिचय

– डा० कपूरचन्द जैन अध्यक्ष संस्कृत विभाग
श्री कुन्दकुन्द जैन महाविद्यालय
खतौली – २५१२०१, उ० प्र०

सांसारिक जीवन दुःखों से परिपूर्ण है, इस दुःख की निवृत्ति हेतु अपनी-अपनी भूमिकानुसार सभी जीवों की प्रवृत्ति देखी जाती है। जैन दर्शन के अनुसार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र मुक्ति का मार्ग हैं। सम्यक् चारित्र की प्राप्ति श्रमणत्व के बिना सम्भव नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्द ने लिखा है –

'पडिवज्जदु सामण्ण जदि इच्छसि दुक्ख परिमोक्ख'

अर्थात् यदि दुःख से छुटकारा चाहते हो तो 'श्रामण्य' मुनिपद को प्राप्त होओ। मुनि या निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा धारण किये बिना यह जीव सांसारिक दुःखों से निवृत्त नहीं हो सकता।

प्राचीन काल में अनन्तानन्त जीवों ने निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा धारण कर मोक्ष और स्वर्ग सुख प्राप्त किया, किन्तु इस पंचम काल की उन्नीसवीं बीसवी शती में यह परम्परा अवरुद्ध सी प्रतीत हो रही थी। शास्त्रों में मुनि महाराजों के स्वरूप के सन्दर्भ में पढ़ते थे, किन्तु उनका दर्शन असम्भव सा था। इस असम्भव को दो महान् आचार्यों ने सम्भव बनाया, जिनकी परम्परा से आज भी हम मुनि-महाराजों के दर्शन कर अपने आपको धन्य मानते है। वे दो आचार्य हैं, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर जी महाराज (दक्षिण) तथा प्रशममूर्ति आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी)। कैसा संयोग है कि दोनों ही शान्ति के सागर थे तथा शान्ति का उपदेश दे रहे थे। एक ने दक्षिण भारत में तो दूसरे ने उत्तर भारत में मुनि परम्परा को दृढ़ीकृत किया था। दोनों आचार्यों में परस्पर भारी मेल था। ब्यावर 'राज०' में दोनों आचार्य संघों ने एक साथ चार्तुमास किया था।

आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर जी महाराज 'छाणी' का जन्म छाणी (उदयपुर–राज०) में पिता श्री भागचन्द जैन के घर माता श्रीमती माणिकाबाई की कोख से कार्तिक बदी ११ संवत् १९४५ को हुआ। श्री भागचन्द दशाहुमड़ जैन थे। बालक का नाम केवलदास रक्खा गया, जो आगे चलकर अपने नामानुरूप केवल 'अकेला-अद्वितीय' ही हुआ।

परिवार के धार्मिक वातावरण में ही केवलदास की शिक्षा–दीक्षा प्रारम्भ हुई, कुछ रोजगार व नौकरी भी की, पर मुक्तिवधू की आकांक्षा रखने वाले का मन घर में कैसे लगता। एक दिन अपने बहनोई से भ० नेमिनाथ का चरित्र सुनकर और संसार की असारता' का चिन्तन कर आपको संसार असार प्रतीत होने लगा। रात्रि में दो स्वप्न आये सम्मेदशिखर जी की यात्रा तथा भ० बाहुबलि का अष्ट द्रव्य से पूजन।

इसीबीच आपको तीर्थक्षेत्र केशरिया जी की यात्रा का सौभाग्य मिला, वहीं आपने विवाह न करने और दिन में एक ही बार भोजन करने का नियम ले लिया। पिताजी के विवाह हेतु आग्रह करने पर आपने कहा कि पिताजी! इस संसार में अनन्तवार विवाह कर चुका, तो भी विषयों से तृप्त नहीं हुआ, अब ऐसा विवाह करूँगा, जिससे भविष्य मे विवाह करने की आवश्यकता ही न रहे, मैं मुक्तिश्री का वरण करूँगा।'

पिता की आज्ञा लेकर आप सम्मेद शिखर जी पहुँचे। वहाँ पांच यात्रायें करके भ० पार्श्वनाथ के स्वर्णभद्र कूट पर दीक्षा का विचार हुआ, वहीं आपने भगवान् के समक्ष कहा-'हे भगवान्! मुझे ब्रह्मचर्य दीक्षा दो' ऐसा कहकर, केशलोंचकर तथा कपड़ों की मर्यादा लेकर सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर दिया, यहीं से आपका त्यागमय जीवन जीवन प्रारम्भ हो गया। यह दिन १ जनवरी सन् १९१९ का शुभ दिनथा।

ब्रह्मचारी अवस्था में अनेक तीर्थों की यात्रायें आपने की। धर्म प्रचार करते आप गढ़ी, जिला बांसवाड़ा [राज०] पहुँचे। वहाँ विधान के समय भगवान् आदिनाथ की मूर्ति के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा ले

ली और केवलदास क्षुल्लक शान्तिसागर बन गये। जिसका सुफल है कि ब्रह्मचर्य व्रत के ३ वर्ष बाद सन् १९२२ में ही आपने क्षुल्लक दीक्षा ले ली।

क्षुल्लक दीक्षा के एक वर्ष बाद ही आपने सागवाड़ा, जिला डूंगरपुर [राज०] में चातुर्मास किया वहीं भाद्रपद शुक्ल १४ संवत् १९८० (सन् १९२३) को आदिनाथ मन्दिर में भ० आदिनाथ के समक्ष सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर सिंहवृत्ति रूप दिगम्बर दीक्षा धारण की और निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो गये। वि० सं० १९८५ [सन् १९२८] में आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ। मुनि श्री ज्ञानसागर जी (धार) मुनि श्री आदिसागर जी, मुनि श्री नेमिसागरजी, मुनि श्री वीरसागरजी, मुनि श्री सूर्यसागरजी महाराज आपके शिष्य थे। मुनि श्री सूर्यसागर को आपने आचार्य पद दिया, श्री सूर्यसागरजी ने अनेकों ग्रन्थों का प्रणयन किया तथा आपकी परम्परा को वृद्धिंगतकिया।

मुनि श्री शान्तिसागरजी के उपदेश में बहुमधुरता थी जो, आबालवृद्ध को तृप्त करती थी, वे जहाँ भी जाते क्या बड़े ?, क्या छोटे?, क्या स्त्री ?, क्या पुरुष?, सभी कोई न कोई व्रत लेते, कोई बिना छने जल का त्याग करता तो कोई रात्रिभोजन को त्यागता।' कोई पूजन का नियम लेता तो कोई स्वाध्याय का। छाणी में उपदेश के समय महाराज श्री के अहिंसा-व्याख्यान को सुनकर; वहाँ के जमींदार ने दशहरा के अवसर पर भैंसा काटने की प्रथा को रोक दिया, तथा सम्पूर्ण राज्य में सभी प्रकार की हिंसा का निषेध कराया। अनेक स्थानों पर दहेज प्रथा मृत्यु पर छाती पीटने की प्रथाओं को आपने बन्द करवाया। बड़वानी में सामायिक के समय जैनेतर लोगों ने आप पर मोटर से हमला किया, ऊपर मोटर चढ़ा दी, घोर उपसर्ग हुआ, पर धर्म की महिमा देखिये कि आप ध्यान में मग्न रहे और मोटर खराब हो गई। अनेक ग्रन्थमालाओं की स्थापना आपके द्वारा हुई। जिनसे अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुई। अनेक पाठशालाओं, श्राविकाश्रमों, श्रावकाश्रमों की स्थापना आपके उपदेशों से हुई। अन्त में वि० सं० २००१ (सन् १९४४) में सागवाड़ा, जिला डूंगरपुर (राज०) में आपने समाधिपूर्वक इस नश्वर शरीर का त्याग किया। सर्वत्र जिनधर्म का डंका पीटने वाले पूज्य आचार्य श्री को शत शत नमन! शत शत वन्दन!

आचार्य शान्ति सागर (छाणी) की संक्षिप्त जीवन झाँकी

जन्मतिथि	– कार्तिक वदी ११ सं. १९४५, सन् १८८८ ई०
जन्मस्थान	– छाणी (उदयपुर) राजस्थान
गृहस्थनाम	– केवलदास
जाति	– जैन (दशाहुमड)
पितृनाम	– श्री भागचंद जी जैन
मातृनाम	– श्रीमती माणिकबाई
शिक्षा	– धार्मिक शिक्षण
पारिवारिक सदस्य	– भाई एक, बहिन दो (दोनों ने दीक्षा ली)
धार्मिक संस्कार	– पारिवारिक संगति से
गृहत्याग तथा व्रत ग्रहण	– जनवरी १९१९ (सं. १९७६) – श्री पार्श्वनाथ भगवान के समक्ष स्वर्ण भद्रकूट श्री सम्मेद शिखर जी पर्वत
क्षुल्लकदीक्षा	– भ. आदिनाथ के समक्ष सन् १९२२ (सं. १९७९) गढ़ी, जिला-बांसवाड़ा (राज.)
मुनिदीक्षा	– भाद्रपद शुक्ल १४ संवत् १९८० सागवाड़ा, (डूंगरपुर) राजस्थान
आचार्य पद	– संवत् १९८५ गिरिडीह (बिहार)
समाधिमरण	– संवत् २००१, सागवाड़ा जिला डूंगरपुर (राजस्थान) ज्येष्ठ वदी १०(१७-५-१९४४)
पट्टाचार्य	– आचार्य सूर्य सागर जी, तच्छिष्य आचार्य विजय सागर जी, तच्छिष्य आचार्य विमल सागर जी, (भिण्ड वाले), तच्छिष्य आचार्य सुमतिसागर जी

परम पुज्य, बाल ब्रह्मचारी,

योगी सम्राट आचार्य 108 श्री शान्ति सागर जी महाराज (छाणी)

जन्म – कार्तिक बदी 11, संवत 1945
छाणी (उदयपुर)

मुनि दीक्षा– भाद्रपद शुक्ल 14 संवत 1980
सागवाड़ा, राजस्थान

ममाधि– ज्येष्ठवदी 10 संवत 2001
सागवाड़ा, राजस्थान

आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति ग्रंथमाला, बुढ़ाना, हेतु दान दातारों की सूची

श्री पद्मसैन जैन पुत्र श्री लाला रोशनलाल जैन	११,१११-००
श्री इन्द्रसैन जैन पुत्र श्री लाला रोशनलाल	११,१११-००
श्री महावीर प्रसाद जैन पुत्र श्री लाला बाबुराम जैन	११,१११-००
श्री रतनलाल जैन पुत्र श्री लाला घासीराम जैन (बड़ौदा वाले)	११११-००
श्री आनन्द स्वरूप जैन पुत्र श्री लाला गुलशन राय जैन	११०१-००
श्री प्रमेश कुमार जैन पुत्र श्री लाला सलेकचन्द जैन	११००-००
श्रीमति सुशीला देवी जैन पत्नि श्री पवन कुमार जैन	११०१-००
श्रीमति त्रिशला जैन पत्नि श्री श्रीपाल जैन	५०१-००
श्रीमति सुनिता जैन पुत्री श्री सलेकचन्द जैन	५०१-००
श्रीमति परमन्दी जैन पत्नि श्री शिखरचन्द जैन	५५१-००
श्रीमति सावित्री जैन पत्नि श्री बिजेन्द्र कुमार जैन	५५१-००
श्रीमति जयमाला जैन पत्नि श्री नरेशचन्द जैन	५०१-००
श्रीमति सुनीता जैन पत्नि श्री अभिनन्दन प्रसाद	५०१-००
श्री अभिनन्दन कुमार जैन पुत्र श्री पलटूमल जैन	३१०१-००
श्रीमति सरोज जैन पत्नि श्री हंस कुमार जैन	५०१-००
श्रीमति कमला जैन पत्नि श्री तरमचन्द जैन	५०१-००
श्रीमति ऊषा जैन पत्नि श्री महेशचन्द जैन	५०१-००
श्रीमति कौशलरानी जैन पत्नि श्री सुशील कुमार जैन	५०१-००
श्रीमति शान्तिदेवी जैन पत्नि श्री कामता प्रसाद जैन	११०१-००
श्रीमति रेखा जैन पत्नि श्री प्रवीण कुमार जैन	५०१-००
श्रीमति महावीरीदेवी जैन पत्नि श्री श्रीचन्द जैन	११०१-००
श्रीमति दयावती जैन पत्नि श्री भूषणलाल जैन	११०१-००
श्रीमति रेखा जैन पत्नि श्री विनोद कुमार जैन	५०१-००
श्री ओमप्रकाश जैन पुत्र श्री गेन्दामल जैन	५०१-००
श्रीमति मुकेश जैन पत्नि श्री प्रवीण कुमार जैन	५०१-००
श्री हर्षित कुमार जैन द्वारा श्री मदनलाल जैन (बीमे वाले)	११०१-००

श्रीमति कमला जैन पत्नी श्री रामचन्द्र जैन	१०१-००
श्री नरेन्द्र कुमार रघुनाथ प्रसाद जैन	११०१-००
श्रीमति ऊषा जैन पत्नी श्री पवन कुमार जैन	५०१-००
श्रीमति मालती देवी जैन पत्नि स्व० श्री सीताराम जैन (हुसैन पुर)	११०१-००
श्री माडू मल बिजेन्द्र कुमार जैन	५०१-००
श्रीमति पुतली जैन पत्नि श्री श्रीपाल जैन	५०१-००
श्रीमति ममता जैन पत्नि श्री रमेश चन्द जैन	५०१-००
श्री राम सेवक गुप्ता (बहराईच)	२५१-००
श्रीमति अंगूरी देवी (निरपुडा)	५१-००
श्री सतेन्द्र कुमार जैन (बैल्ली वाले)	१०१-००
श्री राजीव कुमार मनीष कुमार मोदी पुत्र श्रीअजीत कुमार मोदी	२१०१-००
श्री गुलाब चन्द जी पटना वाले सर्राफा बाजार, सागर	५००१-००
श्रीमती रेखा जैन पत्नि श्री महीपाल जैन प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर	२५०१-००
श्री प्रमोद कुमार जैन पुत्र ला० सीताराम जैन	३१०१-००
श्री मंगल सैन जैन (पैट्रोल पम्प वाले) बिनौली	११०१-००
श्रीमती विद्या जैन धर्मपत्नी श्री सुमत प्रसाद जैन पैट्रोल पम्प वाले, बुढ़ाना	५००१-००
श्री दि० जैन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति बलवीरनगर, शाहदरा, दिल्ली-३२	११०००-००
योग-	९७८८१-००

॥ श्रीः ॥

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

प्रणम्य मोक्षप्रदमस्तदोषं
प्रकृष्टपुण्यप्रभवं जिनेन्द्रम् ।
वक्ष्येऽत्र भव्यप्रतिबोधनार्थ-
माराधनासत्सुकथाप्रबन्धम् ॥

सिद्धे जयप्पसिद्धे चउव्विहाराहणाफलं पत्ते ।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो ॥
उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वहणं साहणं च णित्थरणं ।
दंसणणाणचरित्तं तवाणमाराहणा भणिया ॥

[भ० आरा० १-२]

मोक्ष को प्रदान करने वाले, दोषों से रहित, प्रकृष्ट पुण्य के उत्पत्तिस्थल जिनेन्द्र भगवान् को प्रणाम् करके भव्य जीवों को प्रतिबोधित करने के लिए यहाँ 'आराधना सत्सुकथाप्रबन्ध' को कहता हूँ ॥

संसार में प्रसिद्ध, (ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप) चार आराधनाओं के फल को प्राप्त हुए सिद्ध परमेष्ठी को तथा अरहन्त परमेष्ठी को नमस्कार कर क्रमशः उन आराधना को कहूँगा ।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप का उद्योतन करना, इनके प्रति उद्यम करना, इनका निर्वाह करना, इनकी साधना करना तथा इन्हें परलोक में ले जाना, इन्हें जिनेन्द्र भगवान ने आराधना कहा है ।

[भगवती आराधना १-२]

उद्द्योतनमित्यादि– सम्यग्दर्शनादीनां स्वयं स्वकृतानां लोके प्रकाशनमुद्द्योतनम् । उद्योगः सम्यग्दर्शनादीना स्वयं स्वकृतानां द्विनिमित्तमनालस्येनोद्यमन । निर्वाहणं गृहीतानां सम्यग्दर्शनादीनां त्यागकारणोपनिपाते शतखण्डं व्रजतोऽपि यस्तदपरित्यागः । अपरिहार–कत्वमित्यर्थः । साधनं तत्त्वार्थाद्यध्यापनरागद्वेषविजयादिना सम्यग्दर्शना–दीना समग्रतासाधकत्वम् । निस्तरण सम्यग्दर्शनादीनां निर्विघ्नतो जन्मपर्यन्तप्रापणम् ॥

[१] तत्र सम्यक्त्वोद्द्योतनकथा ।

यथा—मगधदेशे अहिच्छत्र नगरे राजा अवनिपालो महामण्डलेश्वरः पञ्चशतद्विजपण्डितै परि ृत सातिशय राज्यं कुर्वाणस्तिष्ठति । द्विजाश्च सर्वेऽपि संध्याद्वये सध्यावन्दना कृत्वा श्रीपार्श्वनाथ च दृष्ट्वा निज–निजकर्मसु प्रवर्तन्ते । एकदा चारित्रभूषणमुनेः श्रीपार्श्वनाथस्याग्रे देवाग–मेनापराह्णे देववन्दना कुर्वतः पात्रकेसरिणा सह महापण्डिता. समस्त–प्रधानाः सध्यावन्दनां कृत्वा श्रीपार्श्वनाथ द्रष्टुमागताः देवागमस्तवं श्रुत्वा [पात्रकेसरी] मुनि पृष्टवान्—भगवन् अर्थ बुध्यसे । भगवतोक्तम् नाहं बुध्ये । ततस्तेनोक्तम्—पुनः पठ । ततो भगवता विशिष्टपदविश्रामै–र्देवागमस्तवो भणित. । पात्रकेसरिणश्च एकसंस्थत्वेनैकहेलयैव शब्दतो–ऽशेषदेवागमावगाहकत्वसभवात् शनै. शनैस्तदर्थं चेतसि परिभावयतो दर्शनमोहक्षयोपशमवशादुत्पन्नतत्त्वार्थश्रद्धानस्य एतत्प्रतिपादितमेव जीवा–जीववस्तुस्वरूपं परमार्थतो नान्यदिति गृहे गत्वा रात्रौ वस्तुस्वरूपं परामृशतोऽनुमानविषये संशयः संजातः । अत्र हि जीवादिवस्तुप्रमेयं प्रतिपादिम् । तत्त्वज्ञान च प्रमाणमनुमानलक्षणम् तत्कीदृशं जैनमते संभवतीत्येवं मुहुर्मुहुः संशय कुर्वाणः पद्मावतीदेव्या आसनकम्पादागत्य भणितः ·

उद्योतनमित्यादि—स्वयं स्वीकृत सम्यग्दर्शनादि का प्रकाशन उद्योत है। स्वयं स्वीकृत निसर्गज और अधिगमज सम्यग्दर्शनादि का आलस्य रहित उद्यमन उद्योग है। ग्रहण किए हुए सम्यग्दर्शनादि का त्याग के कारण आ पड़ने पर तथा सौ टुकड़े हो जाने की स्थिति में भी त्याग न करना निर्वाह है। इसका अर्थ है—अपरिहारकत्व। साधन तत्त्वार्थ का अध्यापन तथा राग द्वेष पर विजय प्राप्त कर सम्याग्-दर्शनादि की समग्रता की साधकता है। सम्यग्दर्शनादि का निर्विघ्न रूप से जन्म पर्यन्त पहुँचाना निस्तरण है।

सम्यक् श्रद्धा प्रकाशन

[१] सम्यक्त्वोद्योतन कथा

मगध देश के अहिच्छत्रनगर में महामण्डलेश्वर राजा अवनिपाल पाँच सौ ब्राह्मण पण्डितों से परिवृत होकर सातिशय राज्य करता हुआ रहता था। समस्त द्विज प्रातः और सायकाल दोनों सन्ध्याओं में सन्ध्यावन्दन करके तथा श्री पार्श्वनाथ का दर्शन करके अपने अपने कार्यों मे प्रवृत्त होते थे। एक बार चारित्रभूषण मुनि श्री पार्श्वनाथ के आगे देवों का आगमन होने के कारण अपराह्ण मे देव वन्दना करते हुए पात्रकेसरी के साथ समस्त प्रधान महापण्डित सन्ध्या वन्दना करके श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र सुनकर पात्रकेसरी ने मुनि से पूछा—भगवन्! अर्थ जानते हो? भगवान् ने कहा—मैं नहीं जानता हूँ। तदनन्तर उसने कहा—पुनः पढ़ो। अनन्तर भगवान् ने विशिष्ट पद तथा विश्रामों से युक्त देवागम स्तोत्र कहा। पात्रकेसरी एक स्थान पर स्थित होकर एक बार ही शब्दशः समस्त देवागम की जानकारी उत्पन्न हो जाने के कारण धीरे धीरे उसके अर्थ का चित्त में विचार करने लगे। दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम के वश में उत्पन्न हुआ है तत्त्वार्थ श्रद्धान जिनको ऐसे पात्रकेसरी विचार करने लगे कि इसमें प्रतिपादित जीव और अजीव रूप वस्तुस्वरूप ही सत्य है, अन्य सत्य नहीं है। इस प्रकार विचार करते हुए उन्हें अनुमान के विषय में संशय उत्पन्न हुआ। इस देवागम स्तोत्र में जीवादिवस्तु रूप प्रमेय का प्रतिपादन किया गया है तथा अनुमान लक्षण तत्त्वज्ञान को प्रमाण बतलाया गया है। वह जैनमत में कैसे सम्भव है? इस प्रकार बार जब वे संशय कर

भो पात्रकेसरिन्, प्रातः श्रीपार्श्वनाथदर्शनादनुमानलक्षणनिश्चयो भविष्यतीत्युक्त्वा श्रीपार्श्वनाथफणामण्डपे अनुमानलक्षणश्लोको लिखितः—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ॥

इति देवतादर्शने संजाते जैनमते अतिशयेन रुचिस्तस्य संजाता । प्रातश्च देवं पश्यतः फणामण्डपेऽनुमानलक्षणश्लोकदर्शनात्तल्लक्षणनिश्चये सति संजातहर्षः पुलकितशरीरोऽयमेव देवोऽयमेव धर्म इति दर्शनमोह-क्षयोपशमविशेषवशादुत्पन्नविशिष्टसम्यग्दर्शनो जिनोक्तं तत्त्वं चेतसि पुनः पुनश्चिरं परिभावयन् द्विजैर्भणितः—मीमांसार्थ एव तात्पर्यतश्चेतसि चिन्त्यताम्, किं जैनमतार्थचिन्तयेति । ततः पात्रकेसरिणोक्तम्—जैनमतमेव सर्वमतेभ्यः श्रेष्ठम्, अतो भवद्भिरपि मिथ्याभिनिवेशं परित्यज्य तत्रैव रतिः कर्तव्येति विवादे सति समस्तानपि तान् राज्ञोऽग्रे वादेन जित्वा जैनमतं समर्थ्यात्मनः सम्यक्त्वगुणः प्रकाशितः । अन्यमतनिराकरणप्रवणो जिनेन्द्रगुणसंस्तुतिस्तवश्च कृतः । तं च तथाभूतं महापण्डितं दृष्ट्वा अवनिपालादयो गृहीतसम्यक्त्वा जिनधर्म एव रताः संजाता इति ॥

[२] अथ ज्ञानोद्योतनकथा ।

मान्याखेटनगरे राजा शुभतुङ्गो, मन्त्री पुरुषोत्तमनामको, भार्या पद्मावती, पुत्रावकलङ्कनिष्कलङ्कौ । एकदा नन्दीश्वराष्टम्यां पितृभ्यां रविगुप्ताचार्यपार्श्वेऽष्टदिनानि ब्रह्मचर्यं गृहीतम् ।

रहे थे तब पद्मावती देवी ने आसन कम्पायमान होने के कारण आकर कहा—हे पात्रकेसरी ! प्रातः श्री पार्श्वनाथ के दर्शन से अनुमान के लक्षण का निश्चय हो जायगा । ऐसा कहकर श्री पार्श्वनाथ के फणा-मण्डप पर अनुमान के लक्षण के विषय में श्लोक लिख दिया—

जहाँ अन्यथानुपपन्नत्व है वहाँ त्रैरूप्य (बौद्धाभिमत लक्षण) की आवश्यकता क्या है ? जहाँ अन्यथानुपपन्नत्व नहीं है वहाँ भी त्रैरूप्य की क्या आवश्यकता है ?

इस प्रकार देवी का दर्शन हो जाने पर पात्रकेसरी की जैनमत में अत्यधिक रुचि उत्पन्न हो गई । प्रातःकाल देवदर्शन करते हुए फणा-मण्डप पर अनुमान के लक्षण विषयक श्लोक के देखने से अनुमान के लक्षण का निश्चय हो जाने पर जिसे हर्ष उत्पन्न हुआ है ऐसे पुलकित शरीर वाले, यही देव है, यही धर्म है इस प्रकार दर्शनमोहनीय के क्षयोपशम से उत्पन्न विशिष्ट सम्यग्दर्शन वाले, जिनोक्त तत्त्व का पुनः पुनः चिरकाल तक विचार करने वाले पात्रकेसरी से ब्राह्मणों ने कहा—मीमांसार्थ ही तात्पर्यतः चित्त में विचार करो, जैनमत के पदार्थ के विषय में विचार करने से क्या लाभ है ? अनन्तर पात्रकेसरी ने कहा—जैनमत ही समस्त मतों में श्रेष्ठ है अतः आप लोगों को भी मिथ्या अभिप्राय का परित्याग कर जैनमत में ही अनुराग करना चाहिए, इस प्रकार विवाद हो जाने पर उन समस्त पण्डितों को राजा के सामने शास्त्रार्थ में जीतकर जैनमत का समर्थन कर अपने सम्य-क्त्व गुण को प्रकाशित किया । अन्य मत के निराकरण पूर्वक उन्होंने जिनेन्द्र गणों की स्तुति और गुणगान किया । उन्हें उस प्रकार महा-पण्डित देखकर अवनिपाल आदि सम्यक्त्व ग्रहण कर जिनधर्म में ही अनुरागी हो गए ।

[सम्यक् ज्ञान उद्योतन]

[२] ज्ञानोद्योतन कथा

मान्यखेट नगर में राजा शुभतुंग, पुरुषोत्तम नामक मन्त्री, भार्या पद्मावती तथा पुत्र अकलङ्क और निष्कलङ्क थे । एक बार नन्दी-श्वर पर्व की अष्टमी के दिन माता पिता ने गुरविप्ताचार्य के समीप

पुत्रयोरपि प्रणतोऽमाङ्गयोः क्रीडया ब्रह्मचर्यं दापितम् । कतिपयदिनै-र्विवाहोपक्रमसप्रदानादिकं दृष्ट्वा पुत्राभ्यां पिता भणितः— तात, किम-र्थोऽयं विवाहोपक्रमः क्रियते । पित्रोक्तम्,—भवतोः परिणयनार्थम् । ननु तात, त्वया आवयोः ब्रह्मचर्यं दापितम्, तत्किं विवाहेन । पित्रोक्तम्क्रीडया तद्भवतोर्मया दापितम् । ननु तात, धर्मे का क्रीडा । ननु नन्दीश्वराष्ट दिनान्येव मया भवतोर्दापितम्, न भवता भगवता वा तथाविवक्षितत्वात् तत इह जन्मन्यावयोः परिणयने निवृत्तिरस्तीत्युक्त्वा सकलासद्व्यापारा-न्परिहृत्याशेषशास्त्राणि ताभ्यामधीतानि । बौद्धदर्शनपरिज्ञातुस्तथाभूतस्य कस्यचिन्मान्यखेटे अभावात्तत्परिज्ञानार्थमतीवाज्ञच्छात्ररूपं धृत्वा महा-बोधिस्थाने महाबौद्धपरिज्ञातुर्धर्माचार्यस्य पार्श्वे छात्रवृत्त्या स्थितौ स चोपरितनभूमौ विजातीयं परिशोध्य वन्दकानां बौद्धव्याख्यानं करोति । तौ चाज्ञौ भूत्वा मातृकां पठन्तौ तदाकर्णयतः । अकलङ्कदेवश्च तयोर्मध्ये एकसंस्थो निःकलङ्को द्विसंस्थश्चिन्तयति । एवमेकदा तद्व्याख्यानतस्तस्य दिग्नागाचार्येणानेकान्तं दूषयता पूर्वपक्षतया सप्तभङ्गीवाक्ये लिखितेऽशुद्ध-त्वात्परिज्ञानं न संभवति । ततो व्याख्यानं संवृत्य स व्यायामे गतः । अकलङ्कदेवेन च तद्वाक्यं शोधित्वा धृतम् । तेन चागत्य तद्वाक्यं शोधितं दृष्ट्वोक्तम्—कश्चिज्जैनो यथावज्जैनमतपरिज्ञाता वन्दकवेषधारी बौद्धम-धीयानो वर्तमिस्तिष्ठति । परिशोध्य मार्यतामित्युक्त्वा शपथादिना सर्वेऽपि परिशोधिताः । पुनर्जिनप्रतिमोल्लङ्घनं कारिताः । अकलङ्कदेवेन प्रतिमो-परि सूत्रं प्रक्षिप्य सावरणेयमिति संकल्पं कृत्वा तदुल्लङ्घनं कृतम् । ततः कथमपि जैनमलक्षयता पुनः कांस्यभाजनानि बहूनि एकत्र गोण्यां निक्षिप्य एकैकस्य वन्दकस्य छात्रकस्य च शयनस्य समीपे एकैकमुपासकादिकं

आठ दिन का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। नम्रीभूत सिर वाले दोनों पुत्रों को भी क्रीड़ा से ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया। कुछ दिनोंबाद पुत्रों ने पिता से कहा। तात ! यह विवाह का उपक्रम किसलिए किया जा रहा है ? पिता ने कहा– आप दोनों के विवाह लिए। हे पिताजी ! आपने हम दोनों को ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, अतः विवाह से क्या प्रयोजन है ? पिता ने कहा– मैंने तुम्हें क्रीड़ा के लिए दिलाया था। पिता जी ! धर्म में क्या क्रीडा ! पिता जी ने कहा--निश्चित रूप से नन्दीश्वर पर्व के आठ दिन के लिए ही मैंने ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था। पुत्रों ने कहा– आपकी और भगवान की वैसी विवक्षा नहीं थी। अतः इस जन्म में हम दोनों की विवाह मे निवृत्ति है – ऐसा कहकर समस्त खोटे कार्यों का परिहार कर उन दोनों ने समस्त शास्त्र पढ़े। बौद्धदर्शन की जानकारी के लिए वैसे किसी विद्वान् के मान्यखेट नगर में न होने से अत्यन्त अज्ञ छात्र का रूप धारण कर महाबोधि स्थान में बौद्धदर्शन के महान् ज्ञाता धर्माचार्य के समीप छात्र का आचरण करते हुए ठहरे। धर्माचार्य ऊपरी भूमिका पर विजातीय शोधन कर बौद्धभिक्षुओं को बौद्ध व्याख्यान करते थे। वे दोनो अज्ञ होकर मातृका को पढते हुए उसे सुनने लगे। उन दोनों के बीच अकलङ्क देव एक बार और निःकलङ्क दो बार में अवधारण करलेता था। इस प्रकार एक बार जब आचार्य व्याख्यान कर रहे थे तब दिग्नाग आचार्य के द्वारा अनेकान्त में दोष लगाने के प्रसङ्ग मे पूर्व पक्ष के रूप में सप्तभङ्गी वाक्य लिखने पर अशुद्धता के कारण उसे उसका परिज्ञान सभव नहीं हो रहा था। अतः व्याख्यान रोक-कर वह व्यायाम (भूमि) में गया। अकलङ्क देव ने उस वाक्य का शोधन कर दिया। उसने आकर उस वाक्य को शोधित देखकर कहा - कोई धूर्त यथावत् जैन मत का ज्ञाता जैन, बौद्ध भिक्षु का वेष धारणकर बौद्ध दर्शन का अध्ययन करता हुआ ठहर रहा है। उसकी परीक्षा कर मारा जाय ऐसा कहकर शपथ आदि के द्वारा सभी को शोध डाला। पुनः जिन प्रतिमा का उल्लङ्घन कराया। अकलङ्क देव ने प्रतिमा के ऊपर धागा रखकर, यह सावरण है, ऐसा संकल्प करके उसका उल्लङ्घन किया। अनन्तर किसी भी प्रकार से जैन को न लक्षित कर पुनः बहुत से कांसे के वर्तन एकत्र बोरे में रखकर एक एक

दत्त्वा तानि कांस्यभाजनानि दूराद्दुत्क्षिप्य निक्षिप्तानि । ततो रौद्रे महति तच्छब्दे समुत्थितेऽकलङ्कनिःकलङ्कौ पञ्चनमस्कारं स्मरन्तावुत्थितौ । ततस्तौ बौद्धा(चार्य) समीपे नीतौ । भणितं च—भो भो आदेशिन्नेतौ तौ धूर्तौ छात्रवेषधारिणौ जैनौ लब्धाविति श्रुत्वा तेनोक्तम् – स तमभूमा-वेतौ धृत्वा पश्चाद्रात्रौ मारयितव्याविति । ततस्तौ सप्तमभूमौ नीत्वा धृतौ । ततो निःकलङ्केनोक्तम् – भो अकलङ्कदेव, अस्माभिर्गुणानुपार्ज्य दर्शनस्योपकारः कश्चिदपि न कृतः । एवमेव मरणमायातमिति । एतच्छ्रु-त्वा अकलङ्कदेवेनोक्तम्—मा विसूरय । जीवनोपायोऽस्त्येको विद्यते । इद छत्रं हस्तेन धृत्वा आत्मानं प्रक्षिप्यावां गृहीतवातं छत्रं गत्वा यत्र भूमौ लगिष्यति ततो निर्गत्य यास्याव इति पर्यालोच्य रात्रावेतत्सर्वं कृत्वा—निर्गत्य गतौ । अधरात्रे गते मारणार्थं यावत्तावन्वेषितौ तावन्न दृष्टौ । अथ उपरि वाटिकायां पत्तने चान्वेष्यमाणौ तौ न दृष्टौ । ततो निर्गता-विति ज्ञात्वा तत्पृष्ठतोऽश्ववारा लग्नाः । उच्चलितधूलिरजो दृष्ट्वा तानागच्छतो ज्ञात्वा निःकलङ्केनोक्तम् – भो अकलङ्कदेव, त्वमेकसंस्थो महाप्राज्ञो दर्शनोपकारकरणार्थमत्र पद्मिनीषण्डमण्डिते सरोवरे प्रविश्या-त्मानं रक्षय । मां मार्गे गच्छन्तं दृष्ट्वा मारयित्वा एते व्याघुटन्ति लग्ना इति तद्वचनादकलङ्कदेवो झटिति सरोवरे प्रविश्य पद्मिनीपत्रं मस्तकोपरि धृत्वा स्थितः । निःकलङ्कः शीघ्रं नश्यन् रजकेन कर्पटानि प्रक्षालयता उच्च लितधूलिरजो दृष्ट्वा क्षुभितचित्तेन पृष्टः । किमर्थं भवान्नश्यतीति । तेनो क्तम्—शत्रुबलं पश्चैतदागच्छति । तत्तु यं पश्यति तं मारयति । तद्भया-दहं नश्यामीति श्रुत्वा सोऽपि तेनैव सह नष्टः । नश्यन्तौ तौ द्वौ धृत्वा

बौद्ध भिक्षु और छात्र की शय्या के समीप एक-एक उपासकादि को ठहराकर उन कांसे के वर्तनों को दूर से उठाकर रखा। तदनन्तर उस महाभयानक शब्द के होने पर अकलङ्क और निःकलङ्क पञ्च नमस्कार मन्त्र का स्मरण करते हुए उठे। अनन्तर वे दोनों बौद्धाचार्य के समीप ले जाए गए। उन्होंने कहा—हे-हे आचार्य! ये दोनों धूर्त छात्र वेषधारी जैन प्राप्त हो गए। यह सुनकर आचार्य ने कहा- इन दोनों को सातवीं मंजिल में रखकर अनन्तर रात्रि के समय मार देना अनन्तर वे सातवीं मंजिल पर ले जाकर रखे गए। अनन्तर निःकलङ्क ने कहा- हे अकलङ्क देव; हम लोगों ने गुणोपार्जन कर [जैन] दर्शन का उपकार किसी भी प्रकार से नहीं किया। यों ही मरण आ गया यह सुनकर अकलङ्क देव ने कहा- पश्चाताप मत करो। आज जीवन का एक उपाय है। इस छतरी को हाथ में पकड़कर अपने आपको गिराकर हम दोनों हवा से युक्त छतरी के साथ जिस भूमि में लगेंगे वहीं से निकलकर दोनों चलेंगे, ऐसा विचार कर रात्रि में यह सब करके निकलकर दोनो चले गए।

आधी रात बीत जाने पर मारने के लिए जब उन दोनों को खोजा गया तब वे नहीं दिखाई दिए। अनन्तर ऊपरी उद्यान तथा शहर में ढूंढे जाने पर वे नहीं दिखाई दिए। तब निकल गए। उड़ती हुई धूलि के कण देखकर उन्हें आता हुआ जानकर निकलङ्क ने कहा - हे अकलङ्क देव, तुम एक बार में याद करलेने वाले, महाप्राज्ञ हो अतः दर्शन का उपकार करने के लिए यहाँ कमलिनी के समूह से मण्डित सरोवर में प्रवेश करके अपने आपकी रक्षा करो। मुझे मार्ग में जाते हुए देखकर मारकर पीछा करने वाले ये पीछे हट जायेंगे। इस प्रकार निकलङ्क देव के वचन के अनुसार अकलङ्क शीघ्र ही सरोवर में प्रविष्ट होकर कमलिनी के पत्ते को मस्तक के ऊपर रखकर खड़े हो गये। निःकलङ्क को शीघ्र भागते हुए देखकर कपड़ों को धोते हुए धोबी ने उड़ते हुए धूलिकण देखकर क्षुभित चित्त से पूछा- आप किस कारण भाग रहे हैं? उसने कहा- शत्रु सेना को देखो? यह आ रही है। वह जिसे देखती है, उसे मार डालती है। उसके भय से मैं भाग रहा हूँ, यह सुनकर वह भी उसी के साथ भागा। भागते हुए उन दोनों

मारयित्वा उत्तमाङ्गं गृहीत्वा च पृष्ठतो लग्ना व्याघुट्य गताः। ततो अकलङ्कदेवः सरोवरान्निर्गत्य गच्छन् कतिपयदिनैः कलिङ्गदेशे रत्नसचयपुरं प्राप्तः। तत्र राजा हिमशीतलो, राज्ञी मदनसुन्दरी, स्वयंकारितमहाचैत्यालये जिनधर्मप्रभावनारता फाल्गुनाष्टम्यां रथयात्रां कारयन्ति, सघश्रीवन्दकेन विद्यादर्पितेन राज्ञोऽग्रे भणितम्। जिनस्य रथयात्रा न कर्तव्या जिनदर्शनस्यैवासभवादिच्छुकं वा मुनीनां पत्रं देयम्। ततो राज्ञो क्तमात्मीयं दर्शनं समर्थयित्वा रथयात्रा प्रिये कर्तव्या नान्यथेति। एतच्छ्रुत्वा राज्ञी उद्विग्ना सञ्जाताभिमाना वसतिकायां गता। मुनयश्च पृष्टाः किं क्वापि कश्चिदस्मद्दर्शने एतस्य प्रतिमल्लोऽस्ति, य इमं जित्वा मम मनोरथं पूरयतीति। मुनिभिरुक्तम्—दूरे मान्याखेटादावेतस्मादप्यधिका महापण्डिता जैनदर्शने सन्तीति। एतदाकर्ण्य राज्ञी उच्छीर्षके सर्पो य जनाते वैद्य इत्युक्त्वा देवस्य विशेषपूजां कृत्वा राजकुलं परित्यज्य चैत्यालये प्रविश्य यदि सघश्रियो दर्पभङ्गपूर्वप्रवाहेण महोत्सवेन मदीया रथयात्रा भवति, तदा ममाहारादौ प्रवृत्तिर्नान्यथेत्युक्त्वा देवस्याग्रे पञ्चनमस्कार जपन्ती कायोत्सर्गेण स्थिता। अर्धरात्रे आसनकम्पात्समागत्य चक्रेश्वरी देवी, हे मदनसुन्दरि, मा किञ्चिदुद्वेगं कुरु, प्रातः सघश्रीदर्पविध्वंसकस्तव वाञ्छितमनोरथपूरको जिनशासनप्रभावनाकारकोऽकलङ्कदेवो नाम दिव्यः पुरुष आगच्छति लग्न इत्युक्त्वा गता। एतच्छ्रुत्वा राज्ञी संजातपरमानन्दहर्षात्पुलकितशरीरा परमभक्त्या देवस्तुतिं कृत्वा प्रातर्महाभिषेकं निर्वर्त्याकलङ्कदेवस्यान्वेषणार्थं चतुर्दिक्षु पुरुषाः प्रेषिताः तत्र पूर्वस्या दिशि ये गताः पुरुषास्तैरुद्यानवने अशोकवृक्षतले कतिपयच्छात्रैः परिवृतो नगरविश्राम कुर्वन्नकलङ्कदेवो दृष्टः। छात्रमेकं तन्नाम पृष्ट्वा गत्वा राज्ञ्याः कथितम्। ततो राज्ञी चतुर्विधसंघेन सहिता यानजपानसमन्विताकलङ्कदेवस्याभिमुखा आगता। तेन दिव्यगन्धविलेपनैश्चार्चितेन दिव्यवस्त्रैः परिधापिते राज्ञी सघस्य क्षेमकुशलवार्ता पृष्टा।

को पैक्कमार मारकर सिर ग्रहण कर पीछा करने वाले पीछे लौट गए अनन्तर अकलङ्क देव सरोवर से निकलकर जाते हुए कुछ दिनों में रत्नसञ्चयपुर नगर में आए। वहाँ पर राजा हिमशीतल और रानी मदन सुन्दरी स्वयं बनवाए हुए महा चैत्यालय में जिनधर्म की प्रभावना में रत होकर फाल्गुन मास की अष्टमी के दिन रथयात्रा करा रहे थे। संघश्री नामक बौद्धभिक्षु ने विद्या के दर्प से उस राजा के आगे कहा। जिन की रथयात्रा नहीं करना चाहिए? क्योंकि जिनदर्शन ही असम्भव है, ऐसा कहकर मुनियों को पत्र दे दिया। तब राजा ने कहा– प्रिये! अपने दर्शन का समर्थन करके रथयात्रा करना चाहिए, अन्यथा नहीं। यह सुनकर जिसे अभिमान उत्पन्न हो गया है ऐसी रानी घबड़ाकर वसतिका में गई। और मुनियों से पूछा– क्या कोई हमारे दर्शन में इसका प्रतियोद्धा है। जो इसे जीतकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें। मुनियों ने कहा– दूर मान्यखेट में इससे भी अधिक महापण्डित जैनदर्शन में हैं। यह सुनकर रानी ने सिर पर सर्प है और सौ योजन दूरी पर वैद्य है, ऐसा कहकर देव की विशेष पूजा करके राजकुल परित्याग कर चैत्यालय में प्रविष्ट होकर यदि संघश्री के दर्पभङ्ग से पूर्व परम्परा के अनुसार महोत्सवपूर्वक मेरी रथयात्रा होती है तो मैं आहारादि करूँगी, अन्यथा नहीं, ऐसा कहकर भगवान् के आगे पंचनमस्कार मन्त्र जपती हुई कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित हो गई। आधी रात में आसन कम्पायमान होने से चक्रेश्वरी देवी आई और हे मदन सुन्दरी! कुछ उद्वेग मत करो, प्रातः संघश्री के दर्प का विध्वंसक तुम्हारे इष्ट मनोरथ की पूर्ति करने वाला, जिनशासन प्रभावना कारक अकलङ्क देव नामक दिव्य पुरुष आ जायेगा, ऐसा कहकर चली गई। यह सुनकर परम आनन्द उत्पन्न हुई, हर्ष से पुलकित शरीर वाली रानी ने परम भक्ति से देवस्तुति करके प्रातः महाभिषेक सम्पन्न कर अकलङ्कदेव के अन्वेषण के लिए चारों दिशाओं में पुरुष भेजे। वहाँ पूर्व दिशा में जो पुरुष गए थे, उन्होंने उद्यान के वन में अशोक वृक्ष के नीचे कुछ छात्रों से घिरे हुए, नगर में विश्राम करते हुए अकलङ्कदेव को देखा। एक छात्र से उसका नाम पूछकर जाकर रानी से कह दिया। तब रानी चतुर्विध संघ सहित वाहन, शिविका सहित अकलङ्क देव के सामने आ गई उसके दिव्य गन्ध और विलेपन से युक्त दिव्य वस्त्र पहिनने पर रानी ने क्षेम कुशल

ततोऽश्रुपातं कुर्वाणया राज्ञ्योक्तम्-संघ: क्षेमकुशलेन तिष्ठति । किंतु सघस्य महतीम्लानता साप्रतमत्र जातेत्युक्त्वा सघश्रीविलसितं सर्वं तस्य कथितम् । तदाकर्ण्याकलङ्कदेव: समुत्पन्नकोपो भणति –कियन्मात्रो वराक: सघश्रीर्मया सह सुगतोऽपि वादं कर्तुमसमर्थ इत्युक्त्वा संघश्रिय: पत्रं दत्त्वा महोत्सवेन वसतिकायां प्रविष्ट: । संघश्रिया च पत्रदर्शनात् क्षुभितचित्तेन पत्र न भिन्नम् । हिमशीतलराज्ञाकलङ्कदेवो महागौरवेणाकार्य नीत्वा तेन सह वाद कारित: । सघश्रिया चोत्तरप्रत्युत्तरैर्वाद कुर्वताकलङ्कदेववाग्विभवं दृष्ट्वा आत्मनोऽशक्ति प्रतिपाद्य ये केचन बौद्धपण्डिता देशान्तरे सन्ति ते सर्वेऽप्याकारिता: पूर्वविद्धां च ताराभगवतीं रात्रावक्तार्योक्तम्-देवि, अहमनेन सहवाद कर्तुमसमर्थ: । ततस्त्वमिम वाद कृत्वा जयेत्युक्ते तयोक्तम् एव भवतु सभायामन्त: पटेनाह कुम्भेऽव तीर्यानेन सह वाद करिष्यामीति । तत: प्रभाते राज्ञोऽग्रे संघश्रियोक्तम् अहम [न्त:] पटेनाद्यप्रभृति कस्यापि मुखमपश्यन्विचित्रपदवाक्यविन्या सैरुपन्यासं करिष्यामीत्युक्त्वा काण्डपट दत्त्वा मध्ये बुद्धप्रतिमामास्ताराभगवत्याश्च पूजां कृत्वा ताराभगवतीरिता । सा कुम्भेऽवतीर्य दिव्य ध्वनिना क्षणभङ्गं शतखण्डं कृत्वा निराकृत्यानेकान्तात्मक सर्वं तत्त्वमवद्यस्वपरपक्षसाधनदूषणवाक्यै: समर्थयितुं लग्न: । एवं षण्मासेषु गतेष्वेकदाकलङ्कदेवस्य रात्रौ चिन्तोत्पन्ना । मानुषमात्रो मया सहैतावन्ति दिनानि वादं करोतीति किमत्र कारणमिति पुन: पुनश्चेतसि वितर्कयतश्चक्रेश्वरीदेव्या प्रत्यक्षीभूयोक्तम्–भो अकलङ्कदेव,न भवता सह मानुषमात्रस्यैतावन्ति दिनानि वादविधाने सामर्थ्यमस्ति । तारा भगवती इयं भवता सह एतावन्ति दिनानि वादं करोति । अत: प्रातरुपन्यस्तं वाक्यं व्याघुट्य पृच्छ्यतामेतस्या: पराजयो भवतीति ततोऽकलङ्कदेवो देवतादर्शनात्संजातपरमोत्साह: सभामध्ये क्रीडार्थं मयानेन सहैतावन्ति दिनानि वाद: कृत: ।

वार्ता पूछी– तब अश्रुपात करती हुई रानी ने कहा– संघ क्षेम कुशल पूर्वक स्थित है, किन्तु इस समय यहाँ अब अत्यधिक म्लानता हो गई है, ऐसा कहकर संघश्री के समस्त खेल को उससे कह दिया। उसे सुनकर जिसे कोप उत्पन्न हुआ है ऐसे अकलङ्क देव कहने लगे – बेचारा संघश्री कितना है, मेरे साथ बुद्ध भी वाद करने में असमर्थ हैं, ऐसा कहकर संघ श्री के पत्र को देकर महोत्सव पूर्वक वसतिका में प्रविष्ट हुआ संघश्री ने पत्र को देखने से क्षुभित चित्त हो पत्र नहीं खोला। हिमशीतल राजा ने अकलङ्क देव को अत्यधिक गौरवपूर्वक बुलाकर ले जाकर संघ श्री के साथ शास्त्रार्थ कराया। संघ– श्री ने उत्तर प्रत्युत्तरों से वाद करते हुए अकलङ्कदेव की वाणी के वैभव को देखकर अपनी असमर्थता बतलाकर दूसरे देशों में जो बौद्ध पण्डित थे उन सबको बुलाया और पूर्व सिद्ध तारा देवी को रात्रि में आह्वान कर कहा– देवी ! मैं इसके साथ वाद करने में असमर्थ हूँ। अतः तुम इससे वाद करके जीतो। देवी ने कहा– यहीं हो, सभा मे परदे के अन्दर घड़े मे अवतीर्ण होकर इसके साथ वाद करूँगी। अनन्तर प्रातःकाल राजा के सामने संघश्री ने कहा– मैं पर्दे के मध्य से आज से किसी के भी मुख को न देखता हुआ विचित्र पद और वाक्यमय कथन करूँगा, ऐसा कहकर पर्दा लगाकर बुद्ध की प्रतिमा को और तारा देवी की पूजा कर तारा देवी को प्रेरित किया। वह [देवी] कुम्भ मे अव– तीर्ण होकर दिव्य ध्वनि से क्षण भङ्ग का कथन करने लगी। अक– लङ्क देव भी उसके कथन को पर्दे के अन्दर से क्षणभङ्ग सिद्धान्त के सौ टुकड़े कर, निराकरण कर समस्त तत्त्व अनेकान्तात्मक है इस प्रकार निर्दोष स्वपक्ष साधना और पर पक्षदूषण वाक्यों से समर्थन करने में लग गए। इस प्रकार छः माह बीतने पर एक बार अकलङ्क देव के रात्रि में चिन्ता उत्पन्न हुई। मानुषमात्र मेरे साथ इतने दिन वाद करता है, इसमें क्या कारण है ? इस प्रकार पुनः पुनः चित्त में (जब अकलङ्कदेव) वितर्क कर रहे थे (तब) चक्रेश्वरी देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा– हे अकलङ्कदेव ! आपके साथ मानुष मात्र इतने दिन तक वाद करने में समर्थ नहीं है। यह तारा भगवती आपके साथ इतने दिन वाद कर रही है। अतः प्रातः कहे हुए वाक्य को दुबारा

अथ वादं जित्वा भोजनं कर्तव्यमिति प्रतिज्ञां कृत्वा वादं कर्तुं लग्नः ताराभगवत्याश्चोपन्यास कुर्वन्त्याः कीदृश प्रागुक्तं तद्वाक्यं त्वयोपन्यस्तं कथयेत्युक्तमकलङ्कदेवेन । देवतावाण्याश्चैकत्वात्किंचिदप्युत्तरमब्रुवाणा प्रणश्य सा गता । ततोऽकलङ्कदेवेनोत्थाय काण्डपट विदार्य ताराभगवत्य-धिवासकुम्भं दृढपादप्रहारेण स्फोटयित्वा सुगतं च पादेन हत्वा मदन-सुन्दर्याः समस्तभव्यानां चानन्द जनयता गलगर्जं कृत्वा अयं वराकसघश्रीः प्रथमदिन एव जितः । ताराभगवत्या च सह जैनमतज्ञानप्रभावोद्द्योत-नार्थमेतावन्ति दिनानि वादः कृतः । इत्युक्त्वा श्लोकः पठितः । -

नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं
नैरात्म्यं प्रतिपाद्य नश्यति जनः कारुण्यबुद्ध्या मया ।
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो
बौद्धौघान् सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फालितः ॥

एवंविधं च ज्ञानप्रभावं दृष्ट्वा हिमशीतलराजादयः सर्वेऽपि जिनधर्म एव रताः संपन्ना इति । एवमन्येनापि भव्येन ज्ञानोद्द्योतना कं कर्तव्य मिति ॥

[३] अथ चारित्रोद्द्योतनाख्यानम्

यथा- भरतक्षेत्रे वीतशोकपुरे राजा अनन्तवीर्यो, राज्ञी सीता, पुत्रः सनत्कुमारश्चतुर्थश्चक्रवर्ती षट्खण्डपृथ्वी प्रसाध्य नवनिधानचतुर्दशरत्ना-द्युपेतः परमविभूत्या राज्यं कुर्वन्नास्ते । एतस्मिन्प्रस्तावे सौधर्मेन्द्रो निज-सभायां पुरुषस्य रूपगुणव्यावर्णनां कुर्वाणो देवैः पृष्टः -

पूछना । इससे इसकी पराजय हो जावेगी । देवी के दर्शन से जिसे परम उत्साह उत्पन्न हो गया है ऐसे अकलङ्क देव सभा के मध्य क्रीड़ा के लिए मैंने इसके साथ इतने दिनों वाद किया है, आज वाद में जीतकर भोजन करूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा कर वाद (शास्त्रार्थ) करने लगे । बात करती हुई तारादेवी से—पहले क्या कहा था? उस कहे हुए वाक्य को कहो ऐसा अकलङ्क देव ने कहा । देवी की वाणी एक होती है, अतः कुछ भी उत्तर न देकर वह देवी भाग कर चली गई । तब अकलङ्क देव ने उठकर पर्दा फाड़कर तारा भगवती जिसमें अधिष्ठित थी उस कुम्भ को जोर से पैर के प्रहार से फोड़कर तथा सुगत को लात मारकर मदन सुन्दरी तथा समस्त भव्यों का आनन्द उत्पन्न कर जोर से गर्जना कर इस बेचारे संघ श्री को पहले ही दिन जीत लिया । तारा देवी के साथ जैनमत के ज्ञान के प्रभाव का उद्योतन करने के लिए इतने दिनों वाद किया-ऐसा कहकर श्लोक पढ़ा—

प्रायः चतुर आत्मा राजा श्रीहिमशीतल की राजसभा में नैरात्म्य का प्रतिपादन कर जो लोगों का विनाश कर रहे थे, ऐसे समस्त बौद्धों के समूह को जीतकर सुगत को पैर से कंपित कर दिया, यह सब मैंने कारुण्य बुद्धि से ही किया, अहकार के द्वारा वशीकृत मन से अथवा केवल द्वेष से नहीं किया ।

इस प्रकार ज्ञान के प्रभाव को देखकर हिमशीतलादि सभी राजा जिनधर्म में ही रत हो गए । इसी प्रकार अन्य भी भव्य को ज्ञानोद्योतनादि करना चाहिए ।

[चारित्रोद्योतन]

[३] अथ चारित्रोद्द्योतनाख्यानम्

भरत क्षेत्र के वीतशोकपुर में राजा अनन्तवीर्य तथा (उसकी) रानी सीता थी । (उन दोनों का) पुत्र सनत्कुमार था जो कि चतुर्थ चक्रवर्ती था तथा छह खण्ड पृथ्वी का पालन कर नव निधि तथा चौदह रत्नों आदि से युक्त होता हुआ परम विभूति सहित राज्य करता हुआ रहता था । इस अवसर पर सौधर्मेन्द्र अपनी सभा में जब

देव, भरतक्षेत्रे किं कस्यापि विशिष्टं रूपं विद्यते न वा। इन्द्रेणोक्तम्–सनत्कुमारचक्रवर्तिनो यादृशं रूपं तादृशं देवानामपि न संभवतीत्येतच्छ्रुत्वा मणिमालिरत्नचूलदेवौ तद्रूपं द्रष्टुमायातौ। दृष्टं च मज्जनके प्रविष्टस्य चक्रवर्तिनः सर्वावयवगतं सहजमत्यद्भुतं चेतश्चमत्कारकारि दिव्यरूपम्। तद्दृष्ट्वा शिरःकम्पं कुर्वद्भ्यामहो देवानामपीदृशं रूपं न संभवतीत्युक्त्वा सिंहद्वारे प्रकटीभूय प्रतीहारो भणितः– भो प्रतीहार, चक्रवर्तिनः कथय, भवदीयं रूपं द्रष्टुं स्वर्गाद्देवावागताविति। एतदाकर्ण्य शृङ्गारं कृत्वा सिंहासने उपविश्याकारितौ देवौ। ताभ्यामागत्य तद्रूपं दृष्ट्वा विषादः कृतः। हा कष्टं, यादृशं प्राक्तनं मज्जनके प्रच्छन्नाभ्यां दृष्टं रूपं न तादृशमिदानीतनमतोऽशाश्वतं सर्वमिति तच्छ्रुत्वा मण्डनकारिणान्यैश्च सेवकैरुक्तम् - न किंचित्तदानीतनाद्रूपादिदानींतनस्य रूपस्य वैलक्षण्यमस्माकं प्रतिभाति। एतदाकर्ण्य तद्वैलक्षण्यप्रतीत्यर्थं जलभृतं कलशं राज्ञोऽग्रे तेषां दर्शयित्वा पश्चात्तान्बहिः प्रेषयित्वा चक्रवर्तिनः पश्यतस्तृणशलाकया बिन्दुमेकं ततोऽपनीय तेषां कलशो दर्शितः। कीदृशः प्रागिदानीं च कलश इति च ते पृष्टाः। ततस्तैरुक्तम् – तादृशः एवायं कलशो जलपरिपूर्णो मनागप्यनीदृशो न भवतीति। एतच्छ्रुत्वा देवाभ्यामुक्तम् – भो राजन्, यथा जलबिन्दुरपगतोऽप्येतैर्न लक्ष्यते तथा भवद्रूपं मनाग्गतमपि न लक्ष्यते इति। ततश्चक्रवर्ती वैराग्यं गत्वा देवकुमारपुत्राय राज्यं दत्त्वा त्रिगुप्तमुनिपार्श्वे तपो गृहीत्वा उग्रोग्रतपः कुर्वतः पञ्चप्रकारं चारित्रमनुतिष्ठतो विरुद्धाहारसेवनात्सर्वस्मिन् शरीरे कण्डूप्रभृतयोऽनेकरोगाः समुत्पन्नाः। तथाप्यसौ शरीरेऽतिनिस्स्पृहत्वाच्छरीरचिन्तामकुर्वन्नुत्तमं चारित्रमेवानुतिष्ठति।

पुरुष के रूप गुण का वर्णन कर रहा था, तब देवों ने पूछा—देव! भरत क्षेत्र में क्या किसी का भी विशिष्ट रूप है या नहीं ? इन्द्र ने कहा—सनत्कुमार चक्रवर्ती का जैसा रूप है वैसा देवों के भी संभव नहीं है, यह सुनकर मणिमालि और रत्नचूल नामक दो देव उसका रूप देखने के लिए आए और (उन्होंने) स्नानगृह में प्रविष्ट चक्रवर्ती के समस्त अङ्गों का सहज, अत्यद्भुत तथा चित्त को चमत्कृत करने वाला दिव्य रूप देखा। उसे देखकर सिर हिलाते हुए, ओह देवों का भी ऐसा रूप सम्भव नही है, यह कहकर सिंहद्वार में प्रकट होकर (उन दोनों ने) द्वारपाल से कहा हे द्वारपाल—चक्रवर्ती से कहो कि आपका रूप देखने के लिए स्वर्ग से दो देव आए हैं। यह सुनकर शृंगार करके, सिंहासन पर बैठकर (उन्होंने) दोनों देवों को बुलाया। उन दोनो ने आकर उस रूप को देखकर विषाद किया। हाय कष्ट है, जैसा स्नानगृह में छिपे हुए हम दोनों ने रूप देखा था, वैसा इस समय नही है अत सब क्षणिक है। यह सुनकर मण्डन करने वाले तथा अन्य सेवको ने कहा—हम लोगों को उस समय के और इस समय के रूप में भेद दिखलाई नही पड़ता है। यह सुनकर उस भेद की प्रतीत कराने के लिए जल से भरे हुए कलश को राजा के आगे उन्हें दिखलाकर अनन्तर उन्हें बाहर भेजकर चक्रवर्ती के देखते हुए तृण की सलाई से एक बिन्दु उससे निकालकर उन्हे कलश दिखाया और उनसे पूछा कि यह कलश उस समय कैसा था और अब कैसा है ? अनन्तर उन्होंने कहा—यह कलश वैसा ही जल से भरा हुआ है, कुछ भी भिन्न प्रकार का नही है। यह सुनकर दोनों देवों ने कहा—हे राजन्, जैसे जल का बिन्दु हटाने पर भी लक्षित नहीं होता है उसी प्रकार आपका रूप कुछ चलित होने पर भी लक्षित नही होता है। अनन्तर चक्रवर्ती को वैराग्य हो गया। उन्होने देवकुमार नामक पुत्र के लिए राज्य दे दिया और त्रिगुप्त मुनि के समीप तप ग्रहण कर अत्यधिक उग्र तपस्या करने लगे। पाँच प्रकार के चारित्र का अनुष्टान करते हुए विरुद्ध आहार का सेवन करने के कारण उनके सारे शरीर में खुजली आदि अनेक रोग उत्पन्न हो गए तो भी शरीर के प्रति अत्यन्त निःस्पृह होने के कारण शरीर की चिन्ता को न करते हुए उत्कृष्ट चारित्र का ही अनुष्ठान करने लगे।

सौधर्मेन्द्रश्च निजसभायां पञ्चप्रकारं चारित्रं व्याचक्षाणो मदनकेतु-देवेन पृष्टः– देव, भरतक्षेत्रे उक्तप्रकारचारित्रस्यानुष्ठाता किं कोऽप्यस्ति न वेति। ततस्तेनोक्तम् – सनत्कुमारचक्रवर्ती षट्खण्डपृथ्वीं त्यक्त्वा शरीरादावतिनिस्स्पृहो भूत्वा तदनुष्ठाता तिष्ठतीति। एतदाकर्ण्य मदनके-तुदेवेन चात्रागत्य महाटव्यामनेकव्याध्यभिभूतशरीरं सनत्कुमारमुनिं दुर्धं-रमनेकप्रकारं चारित्रमनुतिष्ठन्तमालोक्य शरीरादौ निःस्पृहत्वगुणं तदीयं परीक्षितुं वैद्यरूपं धृत्वा समस्तव्याधीन् स्फेटयित्वा नीरोगं दिव्यं शरीरं करोमीति मुहुर्मुहुर्ब्रुवाणो भगवतोऽग्रे पुनःपुनरितस्ततो गच्छन् भगवता पृष्टः–कस्त्वम्, किमर्थं चात्र निर्जनप्रदेशे फूत्कारं करोषीति। ततस्तेनो-क्तम्–वैद्योऽहं भवतां समस्तव्याधिमपनीय सुवर्णशलाकासदृशं शरीरं करो मीति। भगवतोक्तम्–यदि त्वं व्याधिं स्फेटयसि तदा संसारव्याधिं मे स्फे टयेत्याकर्ण्य तेनोक्तम् - नाहं तत्स्फेटने समर्थः, तत्र भवन्त एव समर्थाः। अहं तु शरीरव्याधिमात्रस्फेटन एव समर्थ इति। भगवतोक्तम्–किमशुचौ निर्गुणे अशाश्वते शरीरे व्याधिस्फेटनेन। तत्स्फेटने हि न किंचिद्वैद्यान्वे-षणेन निष्ठीवनसंस्पर्शमात्रेण बहुव्याधिमपनीय सुवर्णशलाकातुल्या बाहुस्तस्य दर्शितस्ततस्तेन मायामुपसंहृत्य प्रणम्य चोक्तम्–भगवन्यादृशं त्व-दीयं शरीरादौ परमनिस्स्पृहत्वेन विशिष्टचारित्रानुष्ठानं निजसभायां सौधर्मेन्द्रेण व्यावर्णितं तादृशमेवेदमिहागत्य मया दृष्टमतो धन्यस्त्वम्, मनुष्यजन्म तवैव सफलमिति प्रशस्य प्रणम्य च मदनकेतुदेवः स्वर्गं गतः। सनत्कुमारमुनिस्तु परमवैराग्यात्पञ्चविधपरमचरित्रानुष्ठानेन चारित्रस्-योद्द्योतनादिकं कृत्वा घातिकर्मक्षयं विधाय केवलमुत्पाद्य क्रमेणाघाति-कर्मक्षयं कृत्वा मोक्षं गत इति॥

(एक बार) सौधर्मेन्द्र अपनी सभा में पाँच प्रकार के चारित्र की व्याख्या कर रहा था। (तब) मदनकेतु देव ने पूछा—देव! भरतक्षेत्र में उक्त प्रकार के चारित्र का अनुष्ठान करने वाला क्या कोई है या नहीं है? तब उसने कहा—सनत्कुमार चक्रवर्ती छह खण्ड पृथ्वी का त्याग कर शरीरादि के प्रति अत्यन्त निःस्पृह होकर पांच प्रकार के चारित्र का अनुष्ठान करने वाले विद्यमान हैं। यह सुनकर मदनकेतु देव यहाँ आकर महा जंगल में अनेक रोगों से अभिभूत शरीर वाले सनत्कुमार मुनि को दुर्धर अनेक प्रकार के चारित्र का अनुष्ठान करते हुए देखकर उनकी शरीरादि के प्रति नि स्पृहता की परीक्षा करने के लिए वैद्यरूप को धारण कर समस्त व्याधियों को मिटाकर शरीर को दिव्य, रोग रहित करता हूँ, इस प्रकार बार बार कहते हुए भगवान के आगे पुनः पुन इधर उधर चलने लगा। भगवान् ने पूछा—तुम कौन हो? किस कारण इस निर्जन प्रदेश में तुच्छ भाषण कर रहे हो। अनन्तर उसने कहा—मैं वैद्य हूँ, आपकी समस्त व्याधियो को दूरकर शरीर को सोने की सलाई के समान करता हूँ। भगवान ने कहा—यदि तुम व्याधियों को मिटाते हो तो मेरी व्याधि को मिटाओ, यह सुनकर उसने कहा—मैं उसे मिटाने में समर्थ नही हूँ, आप ही समर्थ हैं। मैं तो मात्र शरीर की व्याधि मिटाने मे ही समर्थ हूँ। भगवान ने कहा—अशुचि, गुण रहित, अशाश्वत शरीर में रोग मिटाने से क्या लाभ है? शरीर का रोग मिटाने के लिए किसी वैद्य के अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है, उसका मिटना तो थूक के सम्पर्क मात्र से ही संभव है, ऐसा कहकर थूक के सम्पर्क मात्र से अनेक रोगों को दूर कर उसे सोने की सलाई के तुल्य भुजा दिखा दी। अनन्तर उसने माया समेटकर तथा प्रणाम कर कहा-भगवान्! सौधर्मेन्द्र ने अपनी सभा में जैसी आपकी शरीरादि के प्रति परमनिःस्पृहता, विशिष्ट चारित्र का अनुष्ठान वर्णित किया था, वैसा ही यहाँ आकर मैंने देखा अतः तुम धन्य हो? तुम्हारा ही मनुष्य जन्म सफल है, इस प्रकार प्रशंसा कर और प्रणाम कर मदनकेतु देव स्वर्ग चला गया। सनत्कुमार मुनि परमवैराग्य के कारण पाँच प्रकार के परम चारित्र को अनुष्ठान से चारित्र का उद्योतन आदि करके घातिकर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान उत्पन्न कर क्रम से अघाति कर्मों का क्षय कर मोक्ष चले गए।

(४) समन्तभद्रस्वामिना च उभयोरुद्द्योतनं कृतमस्य कथा ।

दक्षिणकाञ्च्यां तर्कव्याकरणादिसमस्तशास्त्रव्याख्याता दुर्धरानेकानुष्ठानानुष्ठाता श्रीसमन्तभद्रस्वामी नाम महामुनिस्तीव्रतरदुःखप्रदप्रबलासद्वेद्यकर्मोदयात्समुत्पन्नभस्मकव्याधिना अहर्निशं संपीड्यमानश्चिन्तयति ।

अनेन व्याधिना पीड्यमाना वयं दर्शनस्योपकारं कर्तुमसमर्थाः । अतस्तदुपशमविधिः कश्चिदनुष्ठातव्यः । स च तदुपशमविधिः स्निग्धप्रवरप्रचुराहारोपयोगान्नान्यो भवितुमर्हतीति । तत्प्राप्तेश्चात्राभावात् यस्मिन्देशे यत्र स्थाने येन च लिङ्गेन तथाविधाहारप्राप्तिर्भवति तदाश्रयणीयमिति सम्प्रधार्य काञ्चीनगरीं परित्यज्य उत्तरापथाभिमुखो गच्छन् पुण्ड्रनगरे समायातः । तत्र च वन्दकानां बृहद्विहारे महासत्रशालां दृष्ट्वा अत्र मदीयभस्मकव्याधेरुपशमो भविष्यतीति मत्वा वन्दकलिङ्गं धृतम् । तत्रापि तद्व्याध्युपशमहेतुभूतविशिष्टतराहारासंपत्तेस्ततोऽपिनिर्गत्योत्तरापथाभिमुखो नानानगरग्रामान् पर्यटन् दशपुरनगरं प्राप्तः । तत्र च भगवतां महामठं विशिष्टदातृभि. परमभक्त्या प्रतिदिन संपादितविशिष्टमृष्टाहारोपभोक्तृदिव्यानेकभगवल्लिङ्गं समाकुलं दृष्ट्वा वन्दकलिङ्गं परित्यज्य भगवल्लिङ्गं धृतम् । तत्रापि भस्मकव्याध्युपशमविधायकस्य प्रचुरतर विशिष्टाहारासंप्राप्तेस्ततोऽपि निर्गत्य नानादिग्देशनगरग्रामादीन्पर्यटन् वाणारस्यां गत.। तत्र च कुलघोषोपेतं[१]कुलघोशे योगिलिङ्गं धृत्वा वाणारस्यां मध्ये पर्यटता शिवकोटिमहाराजाधिराजेन कारितं दिव्यशिवायतनं प्रचुरतराष्टादशभक्ष्य भोजननैवेद्यसमन्वितं दृष्ट्वा चिन्तितम् ।

[४] समन्तभद्रस्वामी ने ज्ञान और चारित्र दोनों का उद्योतन किया, इसकी कथा

दक्षिण काञ्ची में तर्क, व्याकरणादि समस्त शास्त्रों का व्याख्यान करने वाले, दुर्धर अनेक अनुष्ठानों के अनुष्ठाता श्री समन्तभद्र स्वामी नामक महामुनि तीव्रतर दु:खप्रद, प्रबल असद्वेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न भस्मक व्याधि से रात दिन पीड़ित होते हुए विचार करने लगे। इस व्याधि से पीडित होते हुए हम सम्यग्दर्शन का उपकार करने में असमर्थ हैं, अत: रोग के उपशम का कोई उपाय करना चाहिए। रोग के उपशम की विधि अत्यधिक स्निग्ध, प्रचुर आहार के उपयोग के अतिरिक्त अन्य नहीं हो सकती है। उसकी प्राप्ति (यहाँ) न होने से जिस देश मे जिस स्थान पर जिस लिङ्ग से उस प्रकार के आहार की प्राप्ति हो, उसका आश्रय करना चाहिए, ऐसा निश्चय कर काञ्ची नगरी को छोड़कर उत्तर पथ की ओर जाते हुए पुण्ड्रनगर आए वहाँ पर बौद्ध-भिक्षुओं के बहुत बड़े विहार में महादान शाला को देखकर यहाँ पर मेरी भस्मक व्याधि की शान्ति होगी ऐसा मानकर बौद्ध भिक्षु का वेष धारण कर लिया। वहाँ पर भी उस रोग के उपशम का हेतुभूत विशिष्टतर आहार न मिलने से वहाँ से निकलकर उत्तरापथ की ओर नाना नगर और ग्राम में घूमते हुए दशपुर नगर में पहुंचे। वहाँ पर भगवतों के महामठ को विशिष्ट स्वादिष्ट आहार का उपभोग करने वाले अनेक भगवत् वेषधारियों को व्याप्त देखकर बौद्ध-भिक्षु का वेष त्यागकर भगवत् लिङ्ग धारण कर लिया। वहाँ पर भी भस्मक व्याधि की शान्ति करने वाले प्रचुरतर विशिष्ट आहार की प्राप्ति न होने से वहाँ से भी निकलकर नाना दिशाओं, देश, नगर, ग्रामादि में पर्यटन करते हुए वाराणसी गए। वहाँ पर कुलघोष से युक्त योगी के वेष को धारण कर जब वे वाराणसी नगरी के मध्य पर्यटन कर रहे थे तब शिवकोटि महा राजाधिराज के द्वारा बनवाया हुआ प्रचुरतर अठारह प्रकार के खाने योग्य भोजन के नैवेद्य से युक्त दिव्य शिवालय को देखकर सोचा। यहाँ पर

अत्रास्मदीयभस्मकव्याधेरुपशमो भविष्यतीति। एतस्मिन्प्रस्तावे देवस्य पूजाविधानं कृत्वा नैवेद्यं बहि क्षिप्यमाणं दृष्ट्वा हसित्वा भणितम्- किमत्र कस्यापि सामर्थ्यं नास्ति येन देवमत्रावतार्य राज्ञा परमभक्त्या सपादितं दिव्याहार भोजयतीति। एतदाकर्ण्य तत्रत्यलोकैर्भणितम् – किं भवतो देवतामवतार्य भोजयितुं सामर्थ्यमस्ति येनेद वदति भवान्। योगिना चोक्तमस्त्येव। ततस्तत्रत्यलोकै राज. कथितम्–देव योगिनैकेन भवदीयदेवस्य पूजाविसर्जनसमये दिव्य नैवेद्य बहिः क्षिप्यमाण दृष्ट्वा भणितम्- देवमह मत्रावतार्य एवंविधं दिव्याहारं भोजयामीति। एतदाकर्ण्य राजा सजातकौतुको दिव्यां रसवती दधिदुग्धघृतघटशतं. सहितां प्रचुरखण्डशर्कराइक्षुरसादिमसन्वितां गृहीत्वा समायातः। ततो योगी भणित.-भोजयतु भगवान् देवम्। एव करोमीत्युक्त्वा तेन समस्तां रसवतीमन्त प्रविश्य सर्वमन्तः परिशोध्य द्वार दत्त्वा शीघ्र तत्क्षणादेव भुक्त्वा द्वारमुद्धाट्य भणितम् रसवतीभाजनानि बहिर्नि सार्यतामिति। ततो राज्ञो महत्याश्चर्ये सपन्ने प्रतिदिनमभिनवामभिकामधिका विशिष्टां रसवती कारयित्वा प्रेषयत्यसौ ततः षण्मासैर्भस्मकव्याधेः क्रमेणोपशमे सजाते प्रकृते आहारे स्थिते रसवती समस्ता तथैवोद्ध्रियते। ततस्तत्रत्यलोकैर्भणितम्। भो भो योगीन्द्र, किमिति रसवती तथैवोद्ध्रियते। तेनोक्तम्–भगवानिदानीं तृप्तस्तेन स्तोकमेव भुङ्क्ते। एतत्सर्वं तत्रत्यलोकै राज्ञो निवेदितम्। राज्ञा च निर्मात्येन प्रच्छाद्य प्रनालप्रदेशे धूर्तो माणवको धृतः। तेन च स योगी द्वारं दत्त्वा स्वयमेव भुञ्जानो दृष्टः। कथित च राज्ञः। देव, योगी न किंचिद्देवमवतार्य भोजयति किन्तु द्वारं दत्त्वा स्वयमेव भुङ्क्ते। इति एतदाकर्ण्यं राज्ञा रुष्टेन [भणितम्]-भो योगिन्! मृषावादी त्वम्। न किंचिद्देवमवतार्य भोजयसि। किंतु द्वारं दत्त्वा स्वयमेव भुङ्क्षे।

हमारी भस्मक व्याधि की शान्ति होगी । इस अवसर पर देव की पूजा विधान कर नैवेद्य को बाहर फेंकते हुए देखकर हँसकर कहा– क्या यहाँ किसी की भी सामर्थ्य नहीं है, जो कि देव को यहाँ पर उतारकर राजा के द्वारा परम भक्ति से तैयार कराए गए दिव्य आहार को खिला दे । यह सुनकर वहाँ पर स्थित लोगों ने कहा–क्या भगवान् को उतार कर भोजन कराने की आपकी सामर्थ्य है ? जिससे आप ऐसा कह रहे हैं । योगी ने कहा–हैही । अनन्तर वहाँ के लोगों ने राजा से कहा–एक योगी ने आपके देव की पूजा की समाप्ति के समय दिव्य नैवेद्य को बाहर फेंके जाते हुए देखकर कहा–"मैं देव को यहाँ उतारकर इस प्रकार के दिव्य आहार को खिलाऊँगा ।" यह सुनकर जिसे कौतूक उत्पन्न हो गया है ऐसा राजा दही, दूध, घी, के सैंकड़ों घड़ों सहित प्रचुर खाँड, शकर ईख के रस इत्यादि से समन्वित दिव्य रसोई लेकर आया । अनन्तर योगी से कहा–आप देव को भोजन कराइए । यही करता हूँ ऐसा कहकर उन्होंने समस्त रसोई को अन्दर प्रवेश कराकर अन्दर से सब शोधन कर दरवाजा बन्दकर शीघ्र तत्क्षण ही खाकर द्वार खोलकर कहा–रसोई के वर्तनों को बाहर निकाल दो । अनन्तर वह राजा अत्यधिक आश्चर्य होने पर प्रति दिन नए नए अत्यधिक विशिष्ट रसोई को बनवाकर भेजने लगा । अनन्तर छह मास में भस्मक व्याधि क्रमश: शान्त होने पर, स्वाभाविक आहार में स्थित हो जाने पर समस्त पक्वान्न उसी प्रकार बाहर निकलने लगा । अनन्तर वहाँ पर स्थित लोगों ने कहा । अरे अरे योगीन्द्र, पक्वान्न उसी प्रकार क्यों बाहर निकलने लगे । उसने कहा–इस समय भगवान् तृप्त हैं, अत: थोड़ा ही खाते हैं । वहाँ के लोगो ने यह सब राजा से कहा । निर्माल्य से ढककर नाली मे धूर्त बच्चे को बैठा दिया । उसने उस योगी को दरवाजा वन्द कर स्वयं ही खाते हुए देखा और राजा से कहा– महाराज ! योगी किसी को भी उतारकर भोजन नहीं कराते हैं, किन्तु दरवाजा बन्द कर स्वय ही खा जाते हैं । यह सुनकर रुष्ट राजा ने कहा– हे योगी ! तुम झूठे हो । किसी देव को उतारकर भोजन नहीं कराते हो । किन्तु दरवाजा बन्द कर स्वयं ही खा जाते हो तथा देव को

देवस्य नमस्कारं च किमिति न करोषीति । एतदाकर्ण्य योगिनोक्तम्– मदीयनमस्कारमसौ सोढु न शक्नोति । यो हि वीतरागोऽष्टादशदोषविवर्जितः स एव मदीयनमस्कारं सोढु शक्नोति तेनाहमस्मै नमस्कार न करोमि । यदि करोमि तदा स्फुटत्यसौ देवः । एतछ्रुत्वा राज्ञोक्तम्-यदि स्फुटत्यसौ तदा स्फुटतु कुरु नमस्कारम् त्वदीय सामर्थ्यं पश्यामः । ततो योगिनोक्तम् – प्रभाते सामर्थ्यमात्मीय भवतां दर्शयिष्यामः । ततो राज्ञा एवमस्त्वित्युक्त्वा योगिनं देवगृहमध्ये प्रक्षिप्य शतगुणपरिपाट्या सुभटैः हस्तिघटादिभिश्च देवगृहे महता यत्नेन रक्षितः । योगिनश्च अतिरभसान्मया अपरिभाव्योक्त न विद्मः किमप्यत्र भविष्यतीत्याकुलितान्तःकरणस्य चिन्तयतो रात्रिप्रहरद्वये शासनदेवता अम्बिका आसनकम्पात्समागत्य प्रत्यक्षीभूता । ततस्तयोक्तम्–भगवन्मा चित्तमाकुलितं कुरु । यत्त्वयोक्त तत्सर्व 'स्वयभुवा भूतहितेन भूतले' इत्यादिकं चतुर्विंशतितीर्थकरदेवाना स्तुति कुर्वत तत्सस्फुरिष्यतीत्युक्त्वा भगवन्तं समुद्धीय अदृश्या सजाता । भगवांश्च देवतादर्शनात्सजातपरमसतोषश्चतुर्विंशतितीर्थकृतां स्तुति कृत्वा समुल्लसितचित्तो विकसितवदनकमल. परमानन्देन स्थित. । प्रभाते च राज्ञा कौतूहलेन समस्तलोकसहितेन आगत्य देवगृहद्वारमुद्घाट्य योगी बहिराकारितः । आगच्छश्च प्रहृष्टचितो विकसित वदनकमल प्रभाभार समन्वितो महाप्रतापवाश्च दृष्ट । ततो राज्ञा चिन्तितम् – योगिनो अद्या पूर्वा मूर्तिर्वर्तते । ध्रुव निर्वाहयिष्यति आत्मीयां प्रतिज्ञामिति । ततो राज्ञा भणितम् – भो भो योगीन्द्र, कुरु देवस्य नमस्कार, पश्यामस्त्वदीयं सामर्थ्यमिति । ततो भगवता 'स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले' इत्यादिका स्तुतिः कर्तुमारब्धा । तां च कुर्वतो अष्टमतीर्थंकरस्य श्रीचन्द्रप्रभदेवस्य 'तमस्तमोऽरेरिव रश्मिभिन्नम्' इति स्तुतिवचनमुच्चारयत. स्फुटित लिङ्ग निर्गता चतुर्मुखप्रतिमा जयकारश्च महान्संपन्नः । ततो राज्ञः सकललोकानां च महत्याश्चर्ये संजाते राज्ञोक्तम् – भो योगिन्, अत्यद्भुतसामर्थ्य समन्वितो अव्यक्तलिङ्गिकः कस्त्वमिति । ततो भगवतोक्तम् –

नमस्कार क्यों नहीं करते हो। यह सुनकर योगी ने कहा– मेरे नमस्कार को यह सहन करने में समर्थ नहीं है। जो वीतराग है तथा अठारह दोषों से रहित है, वही मेरे नमस्कार को सहन कर सकता है, अतः मैं इसे नमस्कार नहीं करता हूँ। यदि करूँगा तो देव फट जायगा यह सुनकर राजा ने कहा–यदि फटता है तो फटने दो, नमस्कार करो। तुम्हारी सामर्थ्य देखता हूँ। अनन्तर योगी ने कहा–प्रभात में अपनी सामर्थ्य आपको दिखलायेंगे। तदनन्तर राजा ने यही हो, ऐसा कहकर योगी को देवगृह के मध्य में डालकर सैकड़ों सुभटों और हथियारों इत्यादि से देवगृह में बड़े यत्न से रक्षा की। अत्यन्त वेग के कारण मैंने बिना विचार किए कह दिया, नहीं जानता हूँ, यहाँ क्या होगा? इस प्रकार जब योगी व्याकुलित मन से सोच रहा था तब रात के दूसरे प्रहर में अम्बिका नामक शासन देवता आसन के कम्पायमान होने से प्रत्यक्ष हो गई। अनन्तर उस शासनदेवता ने कहा–भगवन्! चित्त को आकुलित मत करो। जो तुमने कहा है वह सब 'स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले' इत्यादिक चौबीस तीर्थंकर देवों की स्तुति करते हुए भली भाँति व्यक्त हो जायगा, ऐसा कहकर भगवान् को धैर्य बंधाकर अदृश्य हो गई। भगवान् देवी के दर्शन से परम सन्तुष्ट हो चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति कर समुल्लसित चित्त तथा खिले हुए मुखकमल वाले होकर परमानन्द से स्थित रहे। प्रातःकाल राजा ने कौतूहल सहित समस्त लोगों सहित आकर देवगृह के द्वार को खोलकर योगी को बाहर बुलाया और हर्षित चित्त, विकसित मुख कमल, प्रभाभार से युक्त तथा महाप्रतापवान् योगी को देखा। अनन्तर राजा ने सोचा योगी की आज अपूर्व मूर्ति है। निश्चित रूप से अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करेगा। अनन्तर राजा ने कहा– हे हे योगीन्द्र! देव को नमस्कार करो, तुम्हारी सामर्थ्य देखता हूँ। अनन्तर भगवान् ने 'स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले' इत्यादिक स्तुति करना आरम्भ किया। स्तुति करते समय अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभदेव की स्तुति वचनों का उच्चारण करते हुए लिङ्ग फट गया, चतुर्मुख प्रतिमा निकली और महान् जयकार हुआ। तब राजा के तथा समस्त लोगों के महान् आश्चर्य उत्पन्न होने पर राजा ने कहा– हे योगी! अत्यद्भुत सामर्थ्य से समन्वित, अव्यक्त वेष वाले तुम कौन हो! तब भगवान ने कहा– ....

काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्डः
पुण्ड्रोड्रे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मृष्टभोजी परिव्राट् ।
वाणारस्यामभूव शशधरधवलः पाण्डुराङ्गस्तपस्वी
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥१॥
पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालवसिन्धुठक्कविषये काञ्चीपुरे वैडुषे (वैदिशे) ।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटैर्विद्योत्कटैः संकट
वादार्थी विचराम्यहं नरपतेः शार्दूलवत्क्रीडितम् ॥२॥

इत्युक्त्वा कुलघोषवेषं परित्यज्य निर्ग्रन्थजैनलिङ्गं लघुपिञ्छिकासमन्वितं प्रकाश्य एकान्तवादिनः सर्वाननेकान्तवादेन विनिर्जित्य जिनशासनप्रभावना कृता । अत्र च कुदेवानां नमस्काराकरणात्सम्यग् दर्शनमुद्द्योतितम् । सकलैकान्तवादिनिराकरणात्सम्यग्ज्ञानमिति । एतन्महाश्चर्यं दृष्ट्वा शिवकोटिमहाराजस्य अन्येषां च तत्रस्थलोकानां जैनदर्शने महती श्रद्धा परमविवेकः [च] संपन्नः । चारित्रमोहक्षयोपशमविशेषवशाच्च परमवैराग्यसंपत्तौ राज्यं परित्यज्य तपो गृहीत्वा सकलश्रुतमवगाह्य लोहाचार्यविरचितां चतुरशीतिसहस्रसंख्यामाराधनां मन्दमत्यल्पायुःप्राण्याशयवशाद्ग्रन्थतः संक्षिप्य अथतोऽर्हे लिङ्गे इत्यादिचत्वारिंशत्सूत्रैः परिपूर्णामर्धतृतीयसहस्रसंख्यां मूलाराधनां कृतवानिति ॥

[५] अथ तपउद्द्योतकथा ।

यथा जम्बूद्वीपेऽपरविदेहे गन्धमालिनीविषये वीतशोकपुरे राजा वैजयन्तो, रानी भव्यश्रीः, पुत्रौ संजयन्तजयन्तौ ।

मैं काञ्ची का मल से मलिन शरीर नग्न दिगम्बर लाम्बुश में श्वेत शरीरवाला, पुण्ड्रोड्र में बौद्धभिक्षु, दशपुर नगर में स्वादिष्ट भोजी परिव्राजक तथा वाराणसी में चन्द्रमा के समान सफेद पाण्डुर अङ्गवाला तपस्वी हुआ। हे राजन् ! जिसकी शक्ति हो वह मेरे सामने वाद करे. मैं जैन निर्ग्रंथवादी हूँ।

पहले मैंने पार्टलिपुत्र के मध्य नगर में (शास्त्रार्थ की भेरी बज-वाई। अनन्तर मालव, सिन्धु, ठक्क (ढक्क), काञ्चीपुर तथा विदिशा में भेरी बजवाई। (ऐसा करता हुआ)। मैं विद्याओं से उत्कट बहुत से योद्धाओं से व्याप्त करहाटक देश को प्राप्त हुआ हूँ। हे राजन् ! मैं वाद (शास्त्रार्थ) के लिए विचरण कर रहा हूँ। मेरी क्रीडायें सिंह के समान हैं।

ऐसा कहकर कुल घोष के वेष को छोड़कर छोटी पिच्छिका से युक्त निर्ग्रन्थ जैन वेष का प्रकाशन कर समस्त एकान्तवादियों को अनेकान्तवाद से जीतकर जिनशासन की प्रभावना की और यहाँ पर कुदेवों का नमस्कार न कर सम्यग्दर्शन का उद्योत किया (तथा) समस्त एकान्तवादियों का निराकरण कर सम्यग्ज्ञान का उद्योत किया।

इस महान् आश्चर्य को देखकर शिवकोटि महाराज की तथा वहाँ उपस्थित अन्य लोगों की जैनदर्शन पर बड़ी श्रद्धा हुई और परमविवेक प्राप्त हुआ। चारित्र मोह के विशेष क्षयोपशम के वश परम वैराग्य की प्राप्ति होने पर राज्य का परित्याग कर तप ग्रहण कर समस्त श्रुत का अवगाहन कर लोहाचार्यरचित चौरासी हजार संख्या वाली आराधना को मन्दगति तथा अल्प आयु वाले प्राणियों के अभिप्राय के वश ग्रन्थत: संक्षिप्त कर अर्थत: 'अर्हं लिङ्गे' इत्यादि चालीस सूत्रों में परिपूर्णकर साढ़े तीन हजार संख्या वाली मूलाराधना की रचना की।

[तप का प्रभाव]

(५) अथ तपउद्योत कथा

जम्बूद्वीप के अपरविदेह क्षेत्र के गन्धमालिनी देश में वीतशोकपुर राजा वैजयन्त तथा रानी भव्यश्री रहती थी। उन दोनों के संजयन्त और जयन्त दो पुत्र थे।

एकदा वैजयन्तः पट्टहस्तिनो विद्युत्पातान्मरणमालोक्य वैराग्यं गत्वा पुत्राभ्यां राज्यं ददानस्ताभ्यां भणितः—तात, यदीदं सुन्दरं भवति तदा त्वया किमिति त्यज्यते । ततस्त्याज्यस्य राज्यस्यावयोर्विधाननिवृत्ति-रस्तीत्युक्ते संजयन्तपुत्राय वैजयन्तनाम्ने राज्य दत्त्वा त्रिभिरपि तपो गृहीतम् । पिता च विशिष्टं तपः कुर्वता घातिकर्मक्षय कृत्वा केवल-मुत्पादितम् । देवागमने जाते धरणेन्द्ररूप विभूतिं च पश्यता जयन्त-मुनिना निदानबन्धः कृतः । ईदृशं रूप विभूतिश्च तपोमाहात्म्यान्मे भूया-दिति । ततः कतिपयदिनैर्निदानवशाद्धरणेन्द्रो जातः । संजयन्तमुनिश्च दुर्धरतपसा पक्षमासोपवासादिना क्षुत्पिपासादिपरीषहैरातापनादिकाय-क्लेशेन क्षीणशरीरो महाटव्यामेकदा सूर्यप्रतिमायोगेन स्थितः । एतस्मि-न्प्रस्तावे विद्युद्दंष्ट्रनाम्नो विद्याधरस्य मुनेरुपरि गच्छतो विमानं स्खलि-तम् । ततस्तेन विमानस्खलने किं कारणमिति संचिन्त्याधो अवलोकयता मुनिर्दृष्टः । तद्दर्शनात्संजातकोपेन मुनेरनेकप्रकार-उपसर्गे कृतेऽपि मुनि-र्ध्यानान्न चलितः । ततो अतीव रुष्टेन विद्यासामर्थ्येनोच्चाल्य भरतक्षेत्र-पूर्वदिग्विभागे सिंहवती करवती चामीकरवती कुसुमवती चन्द्रवेगा चेति पञ्चनदीसंगमे प्रक्षिप्तः । तद्देशवर्तिनश्च लोकाः सर्वेऽप्याकार्य भणिताः अय च राक्षसो भवतो भक्षयितुमायात इति मत्वा मार्यताम् । ततस्तै-र्मिलित्वा दण्डपाषाणादिभिः कुट्यमानोऽपि शत्रुमित्रसमचित्तेन दुःसहो-पसर्गं जित्वा घातिकर्मक्षयं च कृत्वा केवलमुत्पाद्य शेषकर्मक्षय च कृत्वा मोक्षं गतः । निर्वाणपूजार्थं देवागमने जाते यो जयन्तमुनिर्धरणेन्द्रो जातस्तेनागतेन निजबन्धुशरीरं दृष्ट्वा मदीयबन्धोरेतैरुपसर्गः कृत इति ज्ञात्वा कुपितेन सर्वे लोका नागपाशैर्बद्धाः । तैश्चोक्तम्-देव वयं न किंचिज्जानीम एतत्सर्वं विद्युद्दंष्ट्रविजृम्भितमित्याकर्ण्य कुपितो नागपाशेन

एक बार वैजयन्त मुख्य हाथी का बिजली गिरने से मरण देखकर वैराग्य को प्राप्त होकर जब दोनों पुत्रों को राज्य दे रहा था तो पुत्रों ने कहा--पिता जी ! यदि राज्य सुन्दर होता तो तुम्हें परित्याग क्यों करते ? अतः त्याग करने योग्य राज्य की हम दोनों की नवृत्ति है, ऐसा कहने पर संजयन्त ने वैजयन्त नामक पुत्र के लिए राज्य देकर तीनों ने तप ग्रहण कर लिया । पिता ने विशिष्ट तप करके घातिकर्म का क्षय करके केवल ज्ञान की उत्पत्ति कर ली । देवों के आगमन होने पर धरणेन्द्र के रूप तथा विभूति को देखकर जयन्तमुनि ने निदानबन्ध कर लिया-- ":तप के माहात्म्य से इस प्रकार का रूप और विभूति मेरी भी हो ।" अनन्तर कुछ दिनों में निदान के वश धरणेन्द्र हुआ । सजयन्त मुनि एक बार दुर्धर तप से पक्ष तथा मासोपवास आदि सहित क्षुधा, प्यास आदि परीषहों तथा आतापन आदि कायक्लेश से क्षीणशरीर हो महावन में सूर्यप्रतिमायोग से स्थित हुए । इसी अवसर पर विद्युद्‌दंष्ट्र नामक विद्याधर का मुनि के ऊपर जाता विमान लड़खड़ा गया । अनन्तर 'विमान लड़खड़ाने का क्या कारण है ? ऐसा विचार करते हुए उसने मुनि को देखा । मुनि के दर्शन से जिसे कोप उत्पन्न हो गया है ऐसे विद्याधर ने मुनि के ऊपर अनेक उपसर्ग किए तो भी मुनि ध्यान से चलित नहीं हुए । अनन्तर अत्यन्त रुष्ट होकर विद्या की सामर्थ्य से चलाकर भरत क्षेत्र की पूर्व दिशा में सिंहवती, करवती, चामीकरवती, कुसुमवती तथा चन्द्रवेगा इन पाँच नदियों के संगम पर डाल दिया तथा उस देश में रहने वाले सभी लोगों को बुलाकर कहा--यह राक्षस आप लोगों को खाने के लिए आया है, ऐसा मानकर मारो । अनन्तर उन सब ने मिलकर डण्डा, पत्थर आदि से कूटा तथापि शत्रु मित्र के प्रति समभाव वाले संजयन्त मुनि दुःसह उपसर्ग को जीतकर घातिकर्मों का क्षयकर केवल ज्ञान उत्पन्न कर शेष कर्मों का क्षय कर मोक्ष चले गए । निर्वाणपूजा के लिए देवों का आगमन होने पर जो जयन्त मुनि धरणेन्द्र हो गए थे, उन्होंने अपने बन्धु के शरीर को देखकर मेरे बन्धु के ऊपर इन्होंने उपसर्ग किया है, यह जानकर कुपित हो समस्त लोगों को नागपाश से बाँध लिया । उन लोगों ने कहा--देव ! हम कुछ नहीं

तं बद्ध्वा समुद्रे निक्षिप्य मारयन् धरणेन्द्रोऽपि दिवाकरदेवनाम्ना महर्द्धिकदेवेन भणितः – किमनेन वराकेण मारितेन । चत्वारि भवान्तराणि । पूर्ववैरविरोधादनेनायं मारितः । धरणेन्द्रेणोक्तम् –पूर्ववैरविरोधमनयोर्मे कथय । ततो दिवाकरदेवः प्राह–जम्बूद्वीपभरतक्षेत्रे सिंहपुरनगरे राजा सिंहसेनो, राज्ञी रामदत्ता, मन्त्री श्रीभूतिः, सुघोषश्च । पद्मखण्डनगरे श्रेष्ठी सुमित्रो, भार्या सुमित्रा, पुत्रः [समुद्रदत्तः ।] समुद्रदत्तो वाणिज्येन सिंहपुरे गतोऽनर्घ्यपञ्चरत्नानि श्रीभूतिमन्त्रिणः पार्श्वे धृत्वा परतीरं गतः । आगच्छतः स्फुटिते प्रोहणे निर्धनेन तेनागत्य रत्नानि श्रीभूतिर्याचितो रत्नलोभाद्ग्रहिलोऽयमित्युक्त्वा स्थितः । यत्कुर्वतः षण्मासेषु गतेषु रामदत्तयाराज्ञ्या द्यूते श्रीभूतेर्मुद्रिकायज्ञोपवीते जिते । ततस्ते एवं साभिज्ञाने कृत्वा श्रीभूतिभार्यायाः श्रीदत्तायाः पार्श्वादानीय बहुरत्नमध्ये प्रक्षिप्य समुद्रदत्तस्य दर्शितानि । तेन चात्मीयेषु परिज्ञाय गृहीतेषु चोरनिग्रहेण श्रीभूतिर्निगृहीतो, मृत्वा भाण्डागारे सर्पो जातः । समुद्रदत्तश्च सुधर्माचार्यपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः । सुमित्रा च तन्माता तदीयार्तेन मृत्वा व्याघ्री जाता । तया च स मुनिर्भक्षितो मृत्वा सिंहसेनराज्ञः सिंहचन्द्रनामा पुत्रो जातः । सिंहसेनराजा च भाण्डागारं द्रष्टुमागतः श्रीभूतिचरसर्पेण भक्षितो मृत्वा-शल्लकीवने हस्ती जातस्तेन सुघोषमन्त्रिणा च प्रभुमरणात्संजातकोपेन मन्त्राज्ञासामर्थ्यात्सर्पाकृष्टिं कृत्वा सर्वे सर्पा भणिताः । अग्निकुण्डे प्रवेशं कृत्वा अकृतापराधा गच्छन्तु । तं कृत्वा येऽकृतापराधास्ते सर्वे गताः । कृतापराधे श्रीभूतिचरसर्पे स्थिते ततः सुघोषमन्त्रिणोक्तम्–विषं मुच्यतामग्निप्रवेशो वा क्रियतामिति । अगन्धनकुलोद्भूतोऽहं न विषं मुञ्चामीति

जानते हैं, यह सब विद्युद्दंष्ट्र का कार्य है। यह सुनकर कुपित होकर नागपाश से बाँधकर जब धरणेन्द्र विद्युद्दंष्ट्र को समुद्र में फेंककर मार रहा था तब उससे भी दिवाकर देव नामक महर्द्धिक देव ने कहा- इस बेचारे को मारने से क्या लाभ है ? चार भवान्तर हैं। पहले के वैर विरोध के कारण इसने इन्हें मारा। धरणेन्द्र ने कहा– इन दोनों का पहले का वैर विरोध मुझसे कहिए। अनन्तर दिवाकर देव ने कहा जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के सिंहपुर नगर में राजा सिंहसेन, रानी रामदत्ता तथा मन्त्री श्रीभूति और सुघोष रहते थे। पद्मखण्डनगर में श्रेष्ठी सुमित्र, पत्नी सुमित्रा तथा पुत्र समुद्रदत्त रहते थे। समुद्रदत्त व्यापार के लिए सिंहपुर गया। वह बहुमूल्य पाँच रत्न श्रीभूति मन्त्री के पास रखकर दूसरे किनारे पर गया। आते हुए जहाज टूट जाने पर उस निर्धन ने आकर रत्न श्रीभूति से माँगे। श्रीभूति 'रत्न के लोभ से यह पागल हो गया है' ऐसा कहकर स्थित रहा (अर्थात् उसने समुद्रदत्त के रत्न नहीं दिए। ऐसा कहते हुए छः मास बीत जाने पर रामदत्ता रानी ने जुए में श्रीभूति की अँगूठी और यज्ञोपवीत जीत लिए। अनन्तर उन वस्तुओं की पहिचान कराके श्रीभूति की भार्या श्रीदत्ता के पास से लाकर उन रत्नों को अनेक रत्नों के मध्य डालकर समुद्रदत्त का दिखलाए। समुद्रदत्त ने अपने रत्न पहिचान कर ले लिए। चोरी के दण्ड से श्रीभूति दण्डित हुआ, मरकर भण्डार में साँप हुआ। समुद्रदत्त सुधर्माचार्य के पास धर्म सुनकर मुनि हो गया। उसकी माता सुमित्रा इससे दुःखी ह कर मरकर व्याघ्री हुई। उस व्याघ्री के द्वारा खाया जाकर वह मुनि मरकर सिंहसेन राजा का सिंहचन्द्र नामक पुत्र हुआ। सिंहसेन राजा जब भण्डार देखने के लिए आया हुआ था तो श्रीभूति के जीव साँप ने काट लिया, वह मरकर शल्लकी वन में हाथी हुआ। प्रभु के मरण से उत्पन्न क्रोध वाले सुघोष मन्त्री ने मन्त्र की आज्ञा के सामर्थ्य से सर्पों को आकृष्ट कर समस्त सर्पों से कहा– जिन्होंने अपराध नहीं किया है वे अग्निकुण्ड में प्रवेश कर चले जाँय अग्निकुण्ड में प्रवेश कर जिन्होंने अपराध नहीं किया था, वे सब चले गए। अपराध करने वाले श्रीभूति के जीव सर्प के ठहरने पर सुघोष मन्त्री ने कहा– विष को छुड़ाओ या अग्निप्रवेश करो। मैं अगन्धन

तथा अग्निप्रवेशः कृतो मृत्वा शल्लकीवने कुर्कुटसर्पो जातः । रामदत्तया
नरनथा च निजपतिवियोगात्कनकश्रीक्षान्तिकापार्श्वे तपो गृहीतम् । सिंह-
चन्द्रेणापि निजपितृदुःखात्पूर्णचन्द्रस्य लघुभ्रातुः राज्यं दत्त्वा सुव्रतमुनेः
पार्श्वे तपो गृहीतं च तपोमाहात्म्यान्मनःपर्ययज्ञानी चारणश्च जातः ।
रामदत्तया च तं तथाविधं मुनिं दृष्ट्वा प्रणम्य पृष्टम् — भगवन्मदीय
एव कुक्षिसंभवो येन त्वं मृतोऽसीत्युक्त्वा पुनः पूर्णचन्द्रस्त्वदीयो भ्राता कदा
धर्मं ग्रहीष्यतीति । भगवानाह — पश्य मातः संसार वैचित्र्यम् । सिंहसेनो
राजा सर्पदष्टो मृत्वा शल्लकीवने हस्ती जातो मां दृष्ट्वा स मारयितुं
धावन्मया भणितः । भो सिंहसेनराजाहं सिंहचन्द्रः पुत्रं तव प्राणवल्लभः
पुत्रोऽभूवमिदानीं मारयसि मम इत्युक्ते जातिस्मरो जातो मम पादमूले-
प्रणम्याश्रुपातं कुर्वाणः स्थितः । केसरवतीनदीतीरे मया च विशिष्टं धर्म-
श्रवणं कृत्वा सम्यक्त्वं ग्राहितोऽणुव्रतानि च दत्तानि प्रतिपालयन् प्रासुक-
माहारं पानीयं च गृह्णन्नवमोदर्यादिना कृशशरीरः केसरवतीनदीतीरे कर्दमे
निमग्नः श्रीभूतिचरकुक्कुटसर्पेण तत्कुम्भस्थलारोहणं कृत्वा स खाद्यमानः
संन्यासं कृत्वा पञ्चनमस्कारान् स्मरन्मृतः सहस्रारे श्रीधरनामा देवो
जातः । कुर्कुटसर्पश्च पङ्कप्रभानरके गतः । हस्तिनो दन्तौ मुक्ताफलानि
च सार्थवाहधनमित्रस्य वनराजभिल्लेन दत्तानि, तेन पूर्णचन्द्रराजस्य
नीत्वा समर्पितानि । तेन दन्ताभ्यां निजपल्यङ्कस्य पादाः कारिताः मुक्ता-
फलैर्निजराज्ञीहारः कारितः । एवंविधा संसारस्थितिः मातः पूर्णचन्द्रस्य
गत्वा कथय येनासौ जिनधर्मं गृह्णातीत्युक्ते निजनाथस्य दुःखपरंपरां श्रुत्वा
गद्गदितहृदया गद्गदवचना अश्रुपातं कुर्वती निजपुत्रपार्श्वे गता ।

के कुल में उत्पन्न हूँ, विष नहीं छोड़ूँगा, ऐसा कहकर अग्निप्रवेश कर मरकर शल्लकी वन में कुक्कुटसर्प हुआ। रामदत्ता रानी ने अपने पति के वियोग के कारण कनकश्री क्षान्तिका (आर्यिका) के समीप तप ग्रहण कर लिया। सिंहचन्द्र ने भी अपने पिता के दुःख से पूर्णचन्द्र के छोटे भाई को राज्य देकर सुव्रत मुनि के समीप तप ग्रहणकर लिया और तप के माहात्म्य से मनः पर्यय ज्ञानी तथा चारण ऋद्धि का धारी हो गया। रामदत्ता ने उस प्रकार के उन मुनि को देखकर प्रणाम कर कहा– भगवन्! मेरी ही कुक्षि धन्य है, जिसने तुम्हें धारण किया, ऐसा कहकर पूछा–तुम्हारा भाई पूर्णचन्द्र कब धर्म ग्रहण करेगा ? भगवान् ने कहा– हे माता! संसार की विचित्रता को देखो। सिंहसेन राजा सर्प के द्वारा डसा जाकर मरकर शल्लकीवन में हाथी हुआ मुझे देखकर वह मारने के लिए दौड़ा। मैंने कहा- हे राजन्! सिंह सेन! पहले मैं तुम्हारा प्राणप्रिय पुत्र था, अब मारने लगे हो, ऐसा कहने पर उसे जाति स्मरण हो गया। वह मेरे चरणों मे प्रणाम कर अश्रुपात करता हुआ ठहरा। केसरवती नदी के किनारे मेरे द्वारा विशिष्ट धर्मश्रवण कर, सम्यक्त्व ग्रहण कराया जाकर और दिए हुए अणुव्रतों का पालन करता हुआ प्रासुक आहार और पानी को ग्रहण करता हुआ अवमोदर्य आदि तप से दुर्बल शरीर होकर के सरवती नदी के किनारे कीचड़ में फँस गया। श्रीभूति का जीव कुक्कुट सर्प उसके कुम्भस्थल पर चढ़कर उसे खाने लगा। ऐसी स्थिति वाला वह संन्यास धारणकर पञ्च नमस्कार मन्त्र का स्मरण करता हुआ मरकर सहस्रार स्वर्ग में श्रीधर नामक देव हुआ। कुक्कट सर्प पङ्कप्रभानरक मे चला गया। हाथी के दो दाँत और मोती वन के राजा भील ने सार्थवाह धनमित्र को दिए। धनमित्र सार्थवाह ने लाकर पूर्णचन्द्र राजा को समर्पित कर दिये।

पूर्णचन्द्र राजा ने दोनों दांतों से अपने पलङ्ग के दो पाये बनवाए और मोतियों से अपनी रानी का हार बनवाया। संसार की ऐसी स्थिति को हे माता पूर्णचन्द्र के समीप जाकर कहो, जिससे वह जैनधर्म को धारण करे, ऐसा कहने पर अपने नाथ की दुःखपरम्परा को सुनकर गहरे हृदय वाली गद्‌गद् वचन से युक्त तथा अश्रुपात करती हुई

पूर्णचन्द्रस्य निजमातरं दृष्ट्वा पल्यङ्कादुत्थाय प्रणामं कुर्वतो मात्रा सर्वं कथितम्—यथा त्वत्पिता सर्वदष्टो मृत्वा हस्ती जातः । सर्पोऽपि मृत्वा कुर्कुटसर्पो जातः । तेन च स हस्ती कर्दमे निमग्नः पुनर्मारितः । तदीयदन्तौ मुक्ताफलानि चानीय धनमित्रश्रेष्ठिना ते समर्पितानि । एते पल्यङ्कपादास्तदीयदन्तमयाः । अयं च हारस्तदीयमुक्ताफलमय इत्याकर्ण्योत्पन्नदुःखसंजातशोकः पल्यङ्कपादमालिङ्ग्य फूत्कारं कृत्वा शिरो विहत्य तेन समस्तान्तःपुरेण परिजनेन च रोदनं कृतम् । पुष्पधूपैः पूजां कृत्वा मुक्ताफलानां पल्यङ्कपादानां च संस्कारः कृतः । पूर्णचन्द्रोऽप्युत्पन्नवैराग्यो विशिष्टं सागारधर्मं प्रतिपाल्य महाशुक्रे देवो जातः । रामदत्तार्यिकापि तत्रैव देवो जातः । सिंहचन्द्रोऽप्युग्रोग्रं तपः कृत्वा उपरिमग्रैवेयके देवो जातः । जम्बूद्वीपे भरते विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां धरणितिलकपुरेऽतिवेगो राजा, राज्ञी सुलक्ष्मणा, रामदत्ता चरो देवस्तयोः पुत्री श्रीधरानामा जाता । अलकानगर्यां विद्याधराधिपतेरादर्शनाम्नः सा दत्ता । पूर्णचन्द्रः स्वर्गादवतीर्य श्रीधरायाः पुत्री यशोधरा जाता । सा सूर्याभपुरे सुरावर्तराजस्य दत्ता । सिंहसेनराजापि गजो भूत्वा यो देवो जातः स तयोः पुत्रो रश्मिवेगनामा जातः कतिपयदिनैस्तस्मै राज्यं दत्त्वा सुरावर्तराजो मुनिर्जातो यशोधराप्यार्यिका जाता श्रीधरापि पुत्रस्नेहादार्यिका जाता । रश्मिवेगोऽप्येकदा सिद्धकूटचैत्यालये वन्दनाभक्त्यर्थं गतस्तत्र हरिचन्द्रभट्टारकपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः । स एकदा वनगुहायां कार्योत्सर्गेण स्थितो दुर्धरतपोऽनुष्ठानेनातीव कृशशरीरो यशोधराश्रीधरार्यिकाभ्यां दृष्टः । पुत्रदौहित्रस्नेहाद्भक्तिवशाच्च तत्समीपे ते उपविष्टे । एतस्मिन्प्रस्तावे यः कुक्कुटसर्पो मृत्वा नरके गतः स तत्र वने महानजगरो जातो । विषाग्निना काननं प्रज्वालयन्तं रौद्रं फूत्कारं

वह अपने पुत्र के पास गई। पूर्णचन्द्र ने अपनी माता को देखकर पलङ्ग से उठकर प्रणाम किया। माता ने सब कह दिया कि तुम्हारे पिता साँप से डसे जाकर हाथी हुए। सर्प भी मरकर कुर्कुट सर्प हुआ। उसने उस हाथी को, जो कि कीचड़ में फँस गया था, पुनः मार डाला। उसके दोनों दाँत और मोती लाकर धनमित्र सेठ ने तुम्हें समर्पित किए। ये पलङ्ग के पाये उसके दाँतों से बनाए गए हैं। यह हार उसके मोतियों से बनाया गया है। यह सुनकर जिसे शोक और दुःख उत्पन्न हुआ है, ऐसे उसके समस्त अन्तःपुर और परिजनों ने पलङ्ग के पाये का आलिङ्गन कर जोर जोर से शब्द करके, सिर पीटकर रुदन किया। फूल और धूपों से पूजाकर मोतियों तथा पलङ्ग के पायों का सत्कार किया। जिसे वैराग्य उत्पन्न हो गया है, ऐसा पूर्णचन्द्र भी विशिष्ट सागार धर्म का पालन कर महाशुक्र विमान में देव हुआ। रामदत्ता आर्यिका भी वहीं देव हुई। सिंहचन्द्र भी अत्यधिक उग्र तप करके उपरिमग्रैवेयक में देव हुआ।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में अतिवेग राजा तथा उसकी रानी सुलक्ष्मणा थी। रामदत्ता का जीव देव उन दोनों की श्रीधरा नामक पुत्री हुई। वह अलका नगरी के आदर्शक नामक विद्याधराधिपति को दी गई। पूर्णचन्द्र स्वर्ग से अवतीर्ण होकर श्रीधरा की पुत्री यशोधरा हुई। वह सूर्याभपुर के सुरावर्त नामक राजा को दी गई। जो सिंहासेन राजा हाथी होकर देव उत्पन्न हुआ था, वह उन दोनों का रश्मिवेग नामक पुत्र हुआ। कुछ दिनों में उसे राज्य देकर सुरावर्त राजा मुनि हो गया। यशोधरा भी आर्यिका हो गई। श्रीधरा भी पुत्री के प्रति स्नेह के कारण आर्यिका हो गई। रश्मिवेग भी एक बार सिद्धकूट चैत्यालय में वन्दना भक्ति के लिए गया हुआ था। वहाँ पर वह हरिचन्द्र भट्टारक के समीप धर्म सुनकर मुनि हो गया। वह एक बार वन की गुफा में कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित हुआ दुर्धर तप के अनुष्ठान से अत्यधिक दुर्बल शरीर वाला होकर यशोधरा और श्रीधरा आर्यिकाओं को दिखाई दिया। पुत्र और दौहित्र के स्नेह तथा भक्ति के वश वे उसके समीप में बैठ गईं।

इसी अवसर पर जो कुक्कुट सर्प मरकर नरक गया था वह उस

मुञ्चन्तं गुहाभिमुखमागच्छन्तं तं दृष्ट्वा संन्यासं गृहीत्वा ते अपि कायोत्सर्गेण स्थिते । तेन चागत्य मुनिस्ते च भक्षिते च मृत्वा कापिष्ठस्वर्गे रश्मिवेगो मुनिरादित्यप्रभो नाम देवो जातः । श्रीधरा चन्द्रचूलदेवो यशोधरा रत्नचूलदेवस्तत्रैव जातः । अजगरश्चतुर्थनरके गतः । चक्रपुरे राजा अपराजितो, राज्ञी सुन्दरी, सिंहचन्द्र उपरिमग्रैवेयकादवतीर्ण तयोः पुत्रश्चक्रायुधनामा जातः तस्मै राज्यं दत्वा अपराजितो मुनिर्जातः । तस्य राज्यं कुर्वतश्चित्रमाला राज्ञी कापिष्ठस्वर्गादवतीर्य आदित्यप्रभदेवो वज्रायुधनामा पुत्रो जातः । भूतिलकनगरे राजा आदित्यप्रभो, राज्ञी प्रियकारिणी, कापिष्ठस्वर्गादवतीर्य चन्द्रचूलदेवो रत्नमाला पुत्री तयोर्जाता । वज्रायुधेन परिणीता । रत्नचूलदेवः कापिष्ठस्वर्गादवतीर्य रत्नायुधनामा तस्याः पुत्रो जात । तस्मै राज्य दत्त्वा वज्रायुधोऽपि निजपितुरपाजितस्य पादमूले मुनिर्जातः । रत्नायुधोऽपि कतिपयदिनैर्मुनिर्जातो रत्नमालया पुत्रस्नेहात्तपो गृहीतम् । तप कृत्वा माता पुत्रश्चाच्युते देवो जातः (देवौ जातौ) । अजगरः पङ्कप्रभानरकान्निःसृत्य दारुणनाम्नो भिल्लस्य मृगीभार्यायामतिदारुणनामा पुत्रो जातः । तेन च प्रियङ्गुपर्वते कायोत्सर्गेण स्थितो बाणेन विद्धो वज्रायुधमुनिर्मारितः सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नः । अतिदारुणभिल्लोऽपि मृत्वा सप्तमनरकं गतः । धातकीषण्डे पूर्वविदेहे गन्धिलाविषये अवध्यानगर्यां राजा अर्हद्दासो, राज्ञी जिनदत्ता सुव्रता च, रत्नमाल देवोऽच्युतादागत्य सुव्रतायां विजयो नामा बलभद्रः पुत्रो जातः । रत्नायुध देवोऽप्यच्युतादागत्य जिनदत्तायां विभीषणो नाम वासुदेवः पुत्रो जातः । विभीषणः शर्कराप्रभायां गतः । विजयो लान्तवेऽह्नमादित्याभो देवो जातः । जम्बूद्वीपे ऐरावतेऽवध्यायां राजा श्रीवर्मा, राज्ञी सीमा

वन में महान अजगर हुआ विषाग्नि से जंगल को प्रज्ज्वलित करते हुए रौद्र फूत्कार छोड़ते हुए गुहा की ओर आते हुए उसे देखकर संन्यास धारण कर वे दोनों भी कायोत्सर्ग पूर्वक खड़ी हो गईं। उस अजगर ने आकर मुनि को और उन दोनों को खा लिया। रश्मिवेग मुनि मरकर आदित्यप्रभ नामक देव हुए। श्रीधरा वहीं चन्द्रचूल देव और यशोधरा रत्नचूल देव हुई। अजगर चतुर्थनरक में गया। चक्रपुर में अपराजित नाम का राजा था। उसकी सुन्दरी नामक रानी थी। सिंहचन्द्र उपरिम ग्रैवेयक से अवतीर्ण होकर उन दोनों का चक्रायुध नामक पुत्र हुआ। उसे राज्य देकर अपराजित मुनि हो गए। चक्रायुध के राज्य करते हुए चित्रमाला रानी थी। कापिष्ठ स्वर्ग से अवतीर्ण होकर आदित्यप्रभ देव वज्रायुध नामक पुत्र हुआ। भूतिलक नगर में राजा आदित्यप्रभ था (उसकी रानी प्रियकारिणी थी। कापिष्ठ स्वर्ग से अवतीर्ण होकर चन्द्रचूल देव उन दोनों की रत्नमाला पुत्री हुई। उसे वज्रायुध ने विवाहा। रत्नचूलदेव कापिष्ठ स्वर्ग से अवतीर्ण होकर उसका रत्नायुध नाम का पुत्र हुआ। उसे राज्य देकर वज्रायुध भी अपने पिता अपराजित के पादमूल में मुनि हो गया। रत्नायुध भी कुछ दिनो मे मुनि हो गया। रत्नमाला ने पुत्र के प्रति स्नेह के कारण तप ग्रहण कर लिया। तप करके माता और पुत्र दोनों देव हुए। अजगर पङ्कप्रभा नरक से निकलकर दारुण नामक भील की मृगी नामक भार्या का अतिदारुण नामक पुत्र हुआ। अतिदारुण के द्वारा प्रियङ्गु पर्वत पर कायोत्सर्ग पूर्वक खड़े हुए वज्रायुध मुनि बाण से मारे गये और सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए अतिदारुण भील भी मरकर सातवें नरक गया। धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में गन्धिला देश में अवध्यानगरी में राजा अर्हद्दास था और उसकी जिनदत्ता और सुव्रता रानियाँ थी। रत्नमाल देव अच्युत स्वर्ग से आकर सुव्रता से विजय नामक बलभद्र पुत्र हुए। रत्नायुध देव भी अच्युत स्वर्ग से आकर जिनदत्ता के विभीषण नामक वासुदेव पुत्र हुआ। विभीषण शर्कराप्रभा में गया। विजय लान्तव में आदित्याभ देव हुआ।

जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में अवध्या नगरी में राजा श्रीवर्मा था

विभीषणस्तयोर्लक्ष्मीधामनामा पुत्रो जातो मया संबोधितः । तपः कृत्वा ब्रह्मस्वर्गे देवो जातः । वज्रायुधः सर्वार्थसिद्धेश्च्युत्वा संजयन्तमुनिर्जातः । ब्रह्मस्वर्गाच्च्युत्वा जयन्तमुनिर्निदानाद्धरणेन्द्रो जातः । अतिदारुणभिल्लोऽपि नरकान्निःसृत्य बहुदुःखानि सहमानस्तिर्यग्योनौ परिभ्रम्य ऐरावतक्षेत्रे वेगवतीनदीतीरे भूतरमणकानने गोशृङ्गतापसेन शङ्खिनीतापस्यां हरिणशृङ्गनामा पुत्रो जातः । पञ्चाग्निसाधनादिकं कृत्वा मृत्वा नभस्तलवल्लभपुरे राजा वज्रदंष्ट्रो राज्ञी विद्युत्प्रभा तयोः पुत्रो विद्युद्दंष्ट्रनामा जातः । तेन पूर्ववैरविरोधात्कृतोपसर्गः संजयन्तमुनिस्तपस उद्द्योतनादिकं कृत्वा मोक्षं गतः । एवंविधां संसारस्थितिं ज्ञात्वास्योपरि कोपं परित्यज्य नागपाशबन्धनं मुच्यताम् । एतदाकर्ण्य धरणेन्द्रेणोक्तम्-भो आदित्याभ, यद्यपि मुच्यते लग्नोऽस्य तथाप्यस्य महामुनेरुपसर्गकारिणो दर्पशातनः शापो दीयते । अस्य कुले विद्यासिद्धिः पुरुषाणां माभूत्, स्त्रीणां तु संजयन्तप्रतिमाग्रे आराधनं कुर्वाणानां स्यादिति ॥

(६) सम्यक्त्वमध्ये प्रथम-अङ्गस्य कथा ।

इहैव भरतक्षेत्रे भूमितिलकनगरे नरपालो नाम राजा, गुणमाला महादेवी, श्रेष्ठी सुनन्दो, भार्या अग्निला, तयोः सप्तमः पुत्रो विश्वानुलोमनामा । तौ द्वावपि बाल्यवयसौ सप्तव्यसनाभिभूतौ बहुशः परद्रव्यं हृतवन्तौ । अतो अन्यदा राज्ञा निजदेशान्निस्सारितौ । ततः कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे वीरमतिवीरनरेश्वरराज्ये कृतवन्तौ स्थितिम् ।

और (उसकी) श्रीमा रानी थी। विभीषण उन दोनों के लक्ष्मीधाम नामक पुत्र हुआ, उसे मैंने संबोधित किया। देव तपकर ब्रह्मस्वर्ग में उत्पन्न हुआ। वज्रायुध सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर संजयन्त मुनि हुआ ब्रह्मस्वर्ग से च्युत होकर जयन्त मुनि निदान से धरणेन्द्र हुआ। अति दारुण भील भी नरक से निकलकर अनेक दुःखों को सहन करता हुआ तिर्यंच योनि में परिभ्रमण कर ऐरावत क्षेत्र में वेगवती नदी के किनारे भूतरमण नामक जंगल में गोशृङ्ग. तापस से शङ्खिनी तापसी में हरिणशृङ्ग. नामक पुत्र हुआ। पञ्चाग्नि साधनादिक करके मर कर नभस्थल वल्लभपुर में राजा वज्रदंष्ट्र था, (उसकी) रानी विद्यु-त्प्रभा थीं, उन दोनों के विद्युद्दंष्ट्र नामक पुत्र हुआ। पूर्व वैर विरोध से उसने उपसर्ग किया। संजयन्त मुनि तपस्या का उद्योतन आदि कर मोक्ष चले गये। इस प्रकार की संसार की स्थिति को जानकर इसके ऊपर कोप छोड़कर नागपाश बन्धन को छोड़ दो। यह सुनकर धरणेन्द्र ने कहा— हे आदित्याभ, यद्यपि (यह) छोड़ा जाता है तथापि महामुनि के ऊपर उपसर्ग करने वाले इसके दर्प को नष्ट करने वाला शापदिया जाता है। इसके कुल में पुरुषों को विद्या सिद्ध नहीं होगी, स्त्रियाँ जब संजयन्त की प्रतिमा के आगे आराधन करेंगीं, तब उन्हें विद्यासिद्ध होगी।

(६) सम्यक्त्व के मध्य प्रथम अङ्ग की कथा

इसी भरतक्षेत्र के भूमितिलक नगर में नरपाल नाम का राजा था, उसकी) गुणमाला महादेवी, थी (राजा का) सेठ सुनन्द तथा उस (सेठ) की भार्या सुनन्दा थी। इनका सातवाँ पुत्र धन्वन्तरि था तथा उसी का पुरोहित सोमशर्मा था। (पुरोहित की) भार्या अग्निला थी। उन दोनों का विश्वानुलोम नामक पुत्र था। उन दोनों ने बाल्या-वस्था। सात व्यसनों से अभिभूत होकर अनेक बार परद्रव्य का हरण किया। अतः एक बार राजा ने दोनों को अपने देश से निकाल दिया अनन्तर वे दोनों कुरुजाङ्गल देश के हस्तिनागपुर नगर में वीरमति

एकदापराह्णवेलायां नीलगिरिनाम्नो राजकुञ्जराद् निरङ्कुशात् सम्मुख-मागच्छतो व्यावृत्य मण्डितजिनालये प्रविष्टौ। तत्र श्रीधर्माचार्यं दूरतो विलोक्य सूरिमभिमुखं गच्छन्तं धन्वतरिं निवार्य पटखण्डगाढपिहितकर्ण कुहरो विश्वानुलोमो निद्रामकार्षीत् । धन्वन्तरिस्तु सूरिं धर्मो [मंमु] पदिशन्तमाकर्ण्योपासकलोकमवग्रहान् गृह्णन्तमवलोक्य चोपशान्ताशुभ-संचयः श्रीधर्माचार्यचरणाम्भोजयुगं नमस्कृत्य नियममग्रहीत् । खलति विलोकनात् प्रातर्मया भोक्तव्यमिति व्रतेन कुम्भकारात्प्राप्तो निधिम् । तथा पायसपूर्णपिष्टरथपरिहारात् विगतविषमविषानुषङ्गितमरणसंनिधिः। अकलिताभिधानानोकहफलाकवलनात् वञ्चितफलोपजनितक्षयसंगतिः । रभसान्न किमपि कार्यमाचर्यमिति स्वीकृतनियमस्यैकदा नटनर्तनावलो-कनादर्धरात्रे निजगृहमनुसृत्य मन्दमन्दमुद्घाटितकपाटसंपुटः निजजनन्या पुरुषवेषया गाढाश्लिष्टां भार्यां निद्रावशामवलोक्य झटिति साञ्जसम् उत्खातखड्ग. स्वचेतसि यावदनुचिन्तयति प्रहारय, खड्ग पुन पुनरुत्-क्षपति तावन्निशितासिधाराविकर्तितजिक्यस्थलीपतनादुन्निद्रयोस्तयोः स्वरं ययौ । धन्वन्तरिरित जातवैराग्यः व्रतातिशयं प्रशसन् यद्यहमिमं नियममद्य नाकार्षीदि [षंमि] मां जननी प्रियकलत्रं च निहत्य महा-पापायशसां निधिः स्यामिति संपन्ननिर्वेदो ज्ञातिजनं यथायथमवस्थाप्य श्रीधर्माचार्यादेशात् धरणिभूषणपर्वतोपकण्ठे वरधर्माचार्यपादमूले दीक्षां गृहीत्वा तापनयोगस्थितो यावदास्ते स्म तावत्परिभ्रमन्परिज्ञातप्रव्रजन-

वीरनरेश्वर के राज्य में ठहरे। एक बार अपराह्न समय में नीलगिरि नामक निरङ्कुश राजहस्ती के सामने आने पर दोनों मुड़कर मण्डित जिनालय में प्रविष्ट हो गए। वहाँ पर श्रीधर्माचार्य को दूर से देखकर आचार्य की ओर जाते हुए धन्वन्तरि को रोककर वस्त्र के खण्ड से गाढ़ रूप से कानों के छेद ढककर विश्वानुलोम गीत सेने लगा। सूरि को धर्मोपदेश देते हुए सुनकर उपासक लोगों को नियम ग्रहण करते हुए देखकर जिसके अशुभकर्मों का संचय उपशान्त हो गया है ऐसे धन्वन्तरि ने श्रीधर्माचार्य के चरणकमल युगल को नमस्कार कर नियम ग्रहण कर लिया। प्रातः गंजे को देखकर मैं भोजन करूँगा, इस प्रकार के व्रत से कुम्भकार से निधि प्राप्त कर ली। तथा खीर भरे हुए आटे के रथ का परिहार करने के कारण विषम विष के सम्बन्ध से मरण का सामीप्य नष्ट हो गया। अप्राप्त नाम वाले वृक्ष का फल न खाने के फल से उपजनित विनाश की सङ्गति से वञ्चित हो गया। जल्दी में किसी कार्य का आचरण नहीं करना चाहिए, इस प्रकार नियम स्वीकृत कर एक बार नट के नृत्य को देखने से आधी रात में अपने घर जाकर धीरे-धीरे किवाड़ खोलकर पुरुष वेष वाली अपनी माता से गाढ़ आलिङ्गन की हुई मन में दुष्ट भार्या को निद्रा के वश देखकर शीघ्र ही सिपाई से जिसने तलवार को उठा ली है (ऐसा धन्वन्तरि) अब अपने मन में यह विचार करने लगा, कि प्रहार करो तथा तलवार को पुनः पुनः उठाने लगा, तभी तीक्ष्ण तलवार की धारा से कटे हुए सीके के टुकड़े के गिरने से उनींदी उन दोनों के स्वर को उसने जान लिया। इस प्रकार जिसे वैराग्य उत्पन्न हो गया है ऐसे धन्वन्तरि ने व्रत की अतिशयता की प्रशंसा करते हुए यदि आज मैं यह व्रत न लेता तो इस माता और प्रियपत्नी को मारकर महान् पाप और अयश की निधि होता इस प्रकार जिसे वैराग्य उत्पन्न हो गया है,

परिवारजनों को जिस किसी प्रकार ठहराकर श्रीधर्माचार्य के आदेश से धरणिभूषण पर्वत के समीप वरधर्म आचार्य के पादमूल में दीक्षा ग्रहण कर आतापन योग में स्थित उन सभी परिजनों से प्रवचन का

वृत्तान्तो भन्मित्रस्य धन्वन्तरेर्या गतिः सा ममापीति प्रतिज्ञापरो विश्वानुलोमः समागत्य भो वयस्य चिरान्मिलितोऽसि किमिति न मां गाढमाश्लिष्यसि किमिति नातिकोमलया गिरालापयसीत्यादिसरनेहमाभाष्य निश्चशरीरेऽपि निःस्पृहे धन्वन्तरियतीश्वरे प्रकुप्य सहस्रजटस्य जटिनोऽन्तिके शतजटाभिधानो विश्वानुलोमो बभूव । धन्वन्तरिरप्यातापनयोगान्ते तस्य समीपमुपगत्य विश्वानुलोमो निजधर्ममजानन् किमिति दुश्चरित्रे प्रवृत्तः संजातः स्वमितो विमुच्येमं दुर्मार्गं सहैव जिनोक्तं रत्नत्रयमाश्रयाव इति बहुशः प्रतिबोध्यमानं कोपावेशाद्विहितमूकभावं परिहृत्य सद्गुरूपदिष्टरत्नत्रयमाराध्य कालेनाच्युतस्वर्गेऽमितप्रभो नाम महर्द्धिकदेवोऽवातरत् । विश्वानुलोमोऽपि जीवितान्ते विपद्य व्यन्तरेषु विद्युत्प्रभाभिधो वाहनदेवो बभूव । अथैकदा नन्दीश्वरयात्रां कृत्वा गच्छतीन्द्रेऽमितप्रभो भवान्तरस्नेहोत्कण्ठितमना विद्युत्प्रभमवलोक्यावधिबोधं प्रयुज्यावगतवृत्तान्तो मित्र किं स्मरसि जन्मान्तरोदन्तमित्यवोचत् वयस्य अहं स्मरामि, परं मया स्वल्पं तपः कृतं मन्मतेऽपि विशिष्टानुष्ठानं तन्निष्ठा जमदग्न्यादयः स्वतोऽप्यधिकाः सन्ति सम्यक्त्वातीचारा इत्यादिशङ्कादयो हि सम्यक्त्वस्य दोषाः निश्शङ्कितत्वादयस्तु गुणाः ।

तत्र शङ्कितनिश्शङ्कितयोरेकैव कथा—धन्वन्तरिविश्वानुलोमौ स्वकृतकर्मवशादमितप्रभविद्युत्प्रभौ देवौ संजातौ । तौ चान्योन्यस्य धर्मपरीक्षणार्थमत्रायातौ । ततो जमदग्निस्ताभ्यां तपसश्चालितः । मगधदेशे राजगृहनगरे जिनदत्तश्रेष्ठी स्वीकृतोपवासः कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ श्मशाने कायोत्सर्गेण स्थितो दृष्टः । ततोऽमितप्रभदेवेनोक्तम् दूरे तिष्ठन्तु मदीया मुनयोऽमुं गृहस्थं ध्यानाच्चालयेति ।

वृत्तान्त ज्ञातकर—मेरे मित्र धन्वन्तरि की जो गति है, वह मेरी भी हो, इस प्रकार प्रतिज्ञापरायण हुए विश्वानुलोम ने वहाँ आकर हे मित्र बहुत समय बाद में मिले हो ? गाढ़ आलिङ्गन क्यों नहीं करते हो ? अत्यन्त कोमल वाणी में वार्तालाप क्यों नहीं करते हो ? इत्यादि स्नेह पूर्वक कहकर निज शरीर के प्रति भी निःस्नेह धन्वन्तरि यतीश्वर पर कुपित होकर सहस्र जटाओं वाले जटी के समीप विश्वानुलोम शत-जटी नाम वाला हो गया। आतापन योग के अन्त में धन्वन्तरि भी उसके समीप जाकर विश्वानुलोम जिनधर्म को न जानता हुआ कुच्च-रित्र में क्यों प्रवृत्त हो गया। अपने आपको इस दुर्मग से छुड़ाकर हम दोनों एक साथ ही सन्मार्ग का आश्रय करें, इस प्रकार बार-बार प्रति-बोधित किए जाने पर भी कोप के आवेश में जिसने मूकभाव को धारण कर लिया है ऐसे विश्वानुलोम का परित्याग कर सद्गुरु के द्वारा उप-दिष्ट रत्नत्रय धर्म की आराधना कर समय आने पर अच्युत स्वर्ग में अमितप्रभ नामक महान् ऋद्धि वाले देव के रूप में उत्पन्न हुआ। विश्वानुलोम भी आयु के अन्त में मरकर व्यन्तरों में विद्युत्प्रभ नामक वाहनदेव हुआ। एक बार इन्द्र नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा कर आ रहा था तब दूसरे भव के स्नेह से उत्कण्ठित मन वाले अमितप्रभ ने विद्यु त्प्रभ को देखकर अवधि ज्ञान का प्रयोग कर वृत्तान्त ज्ञात कर। मित्र! क्या दूसरे जन्म का वृत्तान्त याद है ? ऐसा कहा— मित्र ! मुझे स्म-रण है, किन्तु मैंने थोड़ा तप किया। मेरे मत में भी विशिष्ट अनु-ष्ठान को करके उसके प्रति निष्ठा रखने वाले जमदग्न्यादि मुझसे भी अधिक है। शङ्कादिक सम्यक्त्व के अतीचार—सम्यक्त्व के दोष हैं, निश्शङ्कितत्वादि तो गुण हैं।

उनमें से शङ्कित और निश्शङ्कित दोनों की एक ही कथा—है धन्वन्तरि और विश्वानुलोम अपने कर्म केवश अमितप्रभ और विद्यु-त्प्रभ देव हुए। वे दोनों एक दूसरे के धर्म की परीक्षा के लिए यहाँ आए। अनन्तर जमदग्नि ने दोनों को तपस्या से चलित कर दिया। मगधदेश के राजगृह नगर में जिनदत्त श्रेष्ठी उपवास स्वीकृत कर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन रात्रि में श्मशान में कोयात्सर्ग पर स्थित हुआ दिखाई दिया। अनन्तर अमितप्रभ देव ने कहा— मेरे मुनि तो दूर रहें, इस गृहस्थ को ही ध्यान से विचलित कीजिए।

रात्रौ विद्युत्प्रभदेवेनानेकधा कृतोपसर्गोऽपि न चलितो ध्यानात्ततः प्रभाते मायामुपसंहृत्य प्रशस्य च आकाशगामिनी विद्या दत्ता । तस्येयं सिद्धा, अन्यस्य च नमस्कारविधिना सिध्यतीति । ततः स सानन्देनाकृत्रिमचैत्यालये सर्वदा पूजाकरणार्थं गमनं करोति । सोमदत्तपुष्पबटुकेन चैकदा जिनदत्तश्रेष्ठी पृष्टः—क्व भवान् प्रातरेवोत्थाय व्रजतीति । तेन चोक्तम-कृत्रिमचैत्यालयं वन्दनाभक्तिं कर्तुं व्रजामि, मम इत्थं विद्यालाभः संजात इति कथितम् । तेनोक्तम्—मम विद्यां देहि, येन त्वया सह पुष्पादिकं गृहीत्वा वन्दनाभक्तिं करोमि । ततः श्रेष्ठिना तस्योपदेशो दत्तः । तेन च कृष्णचतुर्दश्यां श्मशानवटवृक्षपूर्वशाखायामष्टोत्तरशतपादं च दर्भसिक्यं बन्धयित्वा तस्य तले तीक्ष्णसर्वशस्त्राण्यूर्ध्वमुखानि धृत्वा गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा सिक्यमध्ये प्रविश्य षष्ठोपवासेन पञ्चनमस्कारानुच्चार्य क्षुरिकयै-कैकपादं छिन्दताधो जाज्वल्यमानप्रहरणसमूहमालोक्य भीतेन संचिन्ति-तम् । यदि श्रेष्ठिनो वचनमसत्य भवति तदा मरण भवतीति शङ्कित-मनाः वारंवारं चटनोत्तरणं करोति । एतस्मिन्प्रस्तावे प्रजापालराज्ञः कनकाराज्ञीहारं दृष्ट्वा अञ्जनसुन्दरीविलासिन्या रात्रावागतोऽञ्जनचोरो भणितो—यदि मे कनकाया हारं ददासि तदा भर्ता त्वं नान्यथेति । ततो गत्वा रात्रौ हारं चोरयित्वा अञ्जनचोरोऽप्यागच्छन् हारोद्योतेन ज्ञात्वा अङ्गरक्षैः कोट्टपालैश्च ध्रियमाणो हारं त्यक्त्वा प्रणश्य गतो वटतले बटुकं दृष्ट्वा पृष्ट्वा तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा निःशङ्कितेन तेन विधिना एकवारेण सर्वं शिक्यं छिन्नं शस्त्रोपरि पतितः । सिद्धया विद्यया भणित-मादेशं देहीति । तेनोक्तम्—जिनदत्तश्रेष्ठिपार्श्वे मां नयेति । सुदर्शनमेरु-चैत्यालये जिनदत्तस्याग्रे नीत्वा धृतः पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा तेन भणितम

अनन्तर विद्युत्प्रभ देव ने अनेक प्रकार से उपसर्ग किया, फिर भी सेठ ध्यान से चलित नहीं हुआ। अनन्तर प्रातःकाल माया समेटकर तथा प्रशंसाकर विद्युत्प्रभ देव ने उसे आकाशगामिनी विद्या दी। तुम्हारे लिए यह सिद्ध है, दूसरे लोगों को नमस्कार मन्त्र की विधिपूर्वक सिद्ध होती है। अनन्तर वह आनन्दपूर्वक अकृत्रिम चैत्यालय में प्रतिदिन पूजा करने के लिए गमन करने लगा। सोमदत्त नामक माली के लड़के ने एक बार जिनदत्त सेठ से पूछा—आप प्रातःकाल ही उठकर कहाँ जाते हैं? उसने कहा अकृत्रिम चैत्यालय की वन्दना भक्ति करने के लिए जाता हूँ। मुझे इस प्रकार विद्यालाभ हुआ है, यह भी कहा। उसने कहा—मुझे विद्या दो, जिससे कि तुम्हारे साथ फूलादि ग्रहण कर वन्दना, भक्ति करूँ। अनन्तर सेठ ने उसे उपदेश दिया। वह कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी के दिन श्मशान में वटवृक्ष की अग्रशाखा में एक सौ आठ शाखाओं और कुशनिर्मित सींके को बाँधकर उसके नीचे नुकीले समस्त शस्त्रों का मुँह ऊपर की ओर करके, धरकर गन्ध पुष्पादि देकर सींके के मध्य में प्रविष्ट होकर षष्ठोपवास पूर्वक पञ्चनमस्कार मन्त्र का उच्चारण कर छुरी से एक एक शाखा को तोड़ते हुए, नीचे जाज्वल्यमान अस्त्रों के समूह को देखकर भयपूर्वक सोचने लगा। यदि सेठ के वचन असत्य होंगे तो मरण हो जायगा, इस प्रकार शङ्कित मन वाला होकर वह बार बार चढ़ने उतरने लगा। इसी अवसर पर प्रजापाल राजा की कनका नामक रानी के हार को देखकर अञ्जना सुन्दरी नामक वेश्या ने रात्रि में आए हुए अञ्जन चोर से कहा—यदि तुम मुझे कनका नामक हार देते हो तो तुम भर्ता हो, अन्यथा नहीं। अनन्तर जाकर हार चुराकर अञ्जन चोर भी आते हुए हार के उद्योत से जाना जाकर अङ्गरक्षकों तथा नगर रक्षकों के द्वारा पकड़ा जाता हुआ हार त्याग कर भाग गया। वट वृक्ष के नीचे लड़के को देखकर, पूछकर, उससे मन्त्र ग्रहण कर निःशंकित रूप से उस विधि से एक ही बार समस्त सींके को तोड़कर शस्त्रों के ऊपर गिरा। सिद्ध हुई विद्या ने कहा—आदेश दो। अञ्जन चोर ने कहा—मुझे जिनदत्त सेठ के पास ले चलो अनन्तर सुदर्शन मेरु के चैत्यालय में जिनदत्त के सामने ले जाकर रखे हुए अञ्जन चोर ने पूर्ववृत्तान्त कहकर कहा कि यह विद्या आपके

अंथैवं सिद्धा विद्या भवदुपदेशेन तथा परलोकसिद्धावप्युपदेशं देहीति ।
ततश्चारणमुनिसंनिधौ तपो गृहीत्वा कैलासे केवलमुत्पाद्य मोक्षं गतः ॥
आकाङ्क्षिताख्यानक यथा पिण्याकगन्धस्य, तस्यग्रे कथयिष्यते॥

[७] निःकाङ्क्षताख्यानकथा ।

अङ्गदेशे चम्पानगर्यां राजा वसुवर्धनो, राज्ञी लक्ष्मीमती, श्रेष्ठो प्रियदत्तो, भार्या अङ्गवती, पुत्री अनन्तमती। नन्दीश्वराष्टम्यां श्रेष्ठिना धर्मकीर्त्याचार्यपादमूले अष्टदिनानि ब्रह्मचर्यं गृहीतं क्रीडया अनन्तमती च ग्राहिता। अन्यदा संप्रदानकाले अनन्तमत्योक्तम्तात मम त्वया ब्रह्मचर्यं दापितं तत्किं विवाहेन। श्रेष्ठिनोक्तम्क्रीडया मया ते ब्रह्मचर्यं दापितम्। ननु तात धर्मे व्रते च का क्रीडा। ननु पुत्रि नन्दीश्वराष्टदिनान्येव व्रतं तदा ते दत्तम्। न तथा भट्टारकैरप्यविवक्षितत्वादिति, इह जन्मनि परिणयने मम निवृत्तिरस्तीत्युक्त्वा सकलकलाविज्ञानशिक्षां कुर्वती स्थिता, यौवनभरे चैत्रे निजोद्याने आन्दोलयन्ती दक्षिणश्रेणिकिन्नरपुरविद्याधरराजेन कुण्डलमण्डितनाम्ना सुकेशीनिजभार्यया सह गगनतले गच्छता दृष्टा। किमनया विना जीवितेनेति संचिन्त्य भार्यां गृहे धृत्वा शीघ्रमागत्य विलपन्ती तेन सा नीता। आकाशे आगच्छन्तीं भार्यां दृष्ट्वा भीतेन पर्णलघ्व्या विद्यायाः समर्प्य महाटव्यां मुक्ता। तत्र च तां रुदन्तीमालोक्य भीमनाम्ना भिल्लराजेन निजपल्लिकां नीत्वा प्रधानराज्ञीपदं तव ददामि मामिच्छेति भणित्वा रात्रौ अनिच्छन्तीं भोक्तुमारब्धा। व्रतमाहात्म्येन वनदेवतया तस्य ताडनाद्युपसर्गः कृतः देवता काचिदियमिति

उपदेश से सिद्ध हुई है अतः उसी प्रकार परलोक की सिद्धि का भी उपदेश दीजिए। अनन्तर अंजन चोर चारणमुनि के समीप तप ग्रहणकर कैलाशपर्वत पर केवलज्ञान उत्पन्न कर मोक्ष चला गया।

आकाङ्क्षित की कथा का उदाहरण पिण्याकगन्ध की कथा है, वह आगे कही जायगी।

[७] निःकाङ्क्षित आख्यान कथा

अङ्गदेश की चम्पा नगरी में राजा वसुवर्द्धन, रानी लक्ष्मीमती, श्रेष्ठी प्रियदत्त, भार्या अङ्गवती तथा पुत्री अनन्तमती थे। नन्दीश्वर पर्व की अष्टमी तिथि पर श्रेष्ठी ने धर्मकीर्ति आचार्य के पादमूल में आठ दिन का ब्रह्मचर्य ग्रहण किया, क्रीडा हेतु अनन्तमती को ग्रहण करा दिया। एक बार सगाई के समय अनन्तमती ने कहा—पिताजी! मुझे आपने ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, अतः विवाह से क्या प्रयोजन है? श्रेष्ठी ने कहा क्रीडा के कारण मैंने तुम्हें ब्रह्मचर्य दिलवाया था। पिता जी! धर्म में और व्रत में क्या क्रीडा? पुत्री। नन्दीश्वर पर्व के आठ दिन ही व्रत के थे तब तक के लिए तुम्हें व्रत दिलाया था। वैसा भट्टारक को भी विवक्षित नहीं था ऐसा नहीं है। इस जन्म में विवाह की मुझे नि-ृत्ति है, ऐसा कहकर समस्त कला, विज्ञान की शिक्षा धारण करती हुई स्थित रही। भरपूर यौवन में चैत्र मास में अपने उद्यान में जब वह झूला झूल रही थी तभी दक्षिण श्रेणी के किन्नरपुर विद्याधर राज को जिसका कि नाम कुण्डलमण्डित था तथा जो अपनी सुन्दर केशों वाली निज भार्या के साथ आकाशमार्ग से जा रहा था, दिखाई पड़ी। "इसके बिना जीने से क्या लाभ?" ऐसा सोचकर भार्या को घर में छोड़कर शीघ्र आकर विलाप करती हुई उसे वह ले गया। आकाश में आती हुई भार्या को देखकर भयभीत हो पर्णलघ्वी विद्या देकर महाटवी में छोड़ दिया। वहीं पर उसे रोती हुई देखकर भीम नामक भिल्लराज ने अपनी पल्ली में ले जाकर तुम्हें प्रधान रानी का पद देता हूँ, मुझे चाहो ऐसा कहकर रात्रि में इच्छा न करती हुई अनन्तमती को भोगना प्रारम्भ किया। व्रत के माहात्म्य से वन देवी ने उसके ऊपर ताड़ना आदि उपसर्ग किए। वह कोई देवी है,

भीतेन तेन आवासितसार्थस्य पुष्पकरनाम्नः सार्थवाहस्य समर्पिता । सार्थवाहो लोभं दर्शयित्वा परिणेतुकामो न वाञ्छितः । तेन चानीय अयोध्यायां कामसेनाकुट्टिन्याः समर्पिता । कथमपि वेश्या न जाता । ततः सिंहराजस्य दर्शिता । तेनैव च रात्रौ बलात्सेवितुमारब्धा । नगर-देवतया तद्व्रतमाहात्म्येन तस्योपसर्गः कृतः । तेन च भीतेन गृहान्निस्-सारिता रुदन्ती सखेदा कमलश्रीक्षान्तिकया श्राविकेति मत्वा अतिगौर-वेण धृता । अथानन्तमतीशोकविस्मरणार्थं प्रियदत्तश्रेष्ठी बहुसहायो वन्दना-भक्तिं कुर्वन्नयोध्यायां गतो निजश्यालकजिनदत्तश्रेष्ठिनो गृहे सन्ध्या-समये प्रविष्टः । रात्रौ पुत्रीहरणवार्तां कथितवान् प्रभाते तस्मिन्वन्दना-भक्तिं गते अतिगौरवितः प्राघूर्णकनिमित्तं रसवतीं कर्तुं गृहे च चतुष्कं दातुं कुशला कमलश्रीक्षान्तिकाया श्राविका जिनदत्तभार्यया आकारिता । सा च सर्वं कृत्वा वसतिकां गता । वन्दनाभक्तिं कृत्वा आगतेन प्रिय-दत्तश्रेष्ठिना चतुष्कमवलोक्य अनन्तमतीं स्मृत्वा गह्वरितहृदयेन गद्गद-वचनेन अश्रुपातं कुर्वता भणितम्—यया गृहमण्डनं कृतं तां मे दर्शयेति । ततः सा ततो नीता, मेलापको जातो, जिनदत्तश्रेष्ठिना महोत्सवः कृतः। अनन्तमत्या चोक्तम्—तात, इदानीं मे तपो दापय, दृष्टमेकस्मिन्नेव भवे संसारवैचित्र्यमिति । ततः कमलश्रीक्षान्तिकापार्श्वे तपो गृहीत्वा बहुना कालेन विधिना मृत्वा सहस्रारे देवो जातः ॥

विचिकित्सास्थानं यथा लक्ष्मीमत्याख्याने कथयिष्यते ॥

इस प्रकार भयभीत होकर उसने डेरा डाले हुए व्यापारियों के काफिले के पुष्कर नामक व्यापारी को सौंप दिया। सार्थवाह ने लोभ दिखलाकर विवाह की इच्छा नहीं की। उसने अयोध्या में लाकर कामसेना नामक वेश्या को समर्पित कर दिया। किसी प्रकार भी वेश्या नहीं हुई। अनन्तर सिंहराज को दिखलाई गई। उसने रात्रि में हठात् सेवन करना आरम्भ किया। नगरदेवी ने उसके व्रत के माहात्म्य से उसके ऊपर उपसर्ग किया। उसने भयभीत होकर घर से निकाल दिया। जब वह खेदपूर्वक रो रही थी, तो कमल श्री नामक क्षान्तिका (आर्यिका) ने 'श्राविका' ऐसा मानकर अत्यन्त गौरवपूर्वक अपने पास रख लिया अनन्तर अनन्तमती के शोक को भुलाने के लिए प्रियदत्त सेठ बहुत सहायकों के साथ वन्दना, भक्ति करता हुआ अयोध्या में गया और अपने साले जिनदत्त सेठ के घर सध्या के समय प्रविष्ट हुआ। रात्रि में पुत्री के हरण की वार्ता को कहा– प्रातः काल जब वह वन्दना भक्ति के लिए गया हुआ था तब अत्यन्त गौरव युक्त हो पाहुने के निमित्त रसोई बनाने के लिए तथा घर में चौक पूरने के लिए कुशल कमलश्री क्षान्तिका की श्राविका जिनदत्त की भार्या ने बुलाई। वह [श्राविका] सब करके वसतिका में चली गई। वन्दना भक्ति करके आए हुए प्रियदत्त ने चौक देखकर अनन्तमती का स्मरण कर गहरे मन से गद्गद् वचन सहित अश्रुपात करते हुए कहा– जिसने घर मण्डन किया, उसे मुझे दिखलाओ। अनन्तर अनन्तमती वहाँ से लाई गई, मिलन हुआ, जिनदत्त सेठ ने महोत्सव किया। अनन्तमती ने कहा– पिता जी ! इस समय मुझे तपस्या दिलवाओ, मैंने एक ही भव में संसार की विचित्रता देखली। अनन्तर अनन्तमती कमलश्री क्षान्तिका के समीप तप ग्रहणकर बहुत काल बाद विधिपूर्वक मरणकर सहस्रार स्वर्ग में देव हुई।

विचिकित्सा के आख्यान का उदाहरण लक्ष्मीमती का है, जो कि आगे कहा जाएगा।

[८] निर्विचिकित्साख्यानकम् ।

यथा—सौधर्मेन्द्रेण निजसभायां सम्यक्त्वगुणं वर्णयता भरते कच्छदेशे रौरकपुरे उद्दायनमहाराजस्य निर्विचिकित्सागुणः प्रशंसितः। त परीक्षितुं वासवदेव उदुम्बरकुथित मुनिरूप विकृत्य तस्यैव हस्तेन विधिना स्थित्वा सर्वमाहार जल च मायया भक्षित्वा अतिदुर्गन्ध बहुवमन कृतवान् । दुर्गन्धभयान्नष्टे परिजने प्रतीच्छतो राज्ञस्तद्देव्याश्च प्रभावत्या उपरि छर्दितम् । हा हा विरुद्ध आहारो दत्तो मयेत्यात्मान निन्दितः । तं च प्रक्षालयतो मायां परिहृत्य प्रकटीभूय पूर्ववृत्तान्त कथयित्वा प्रशस्य च स्वर्गं गतः । उद्दायनमहाराजो वर्धमानस्वामिपादमूले तपो गृहीत्वा मुक्ति गतः प्रभावती तपसा ब्रह्मस्वर्गे देवो बभूव ॥

मूढदृष्ट्याख्यानक यथा ब्रह्मदत्तस्य द्वादशचक्रवर्तिनः । तच्चाग्रे कथयिष्यते ॥

[९] अमूढदृष्ट्याख्यानकम् ।

यथा—विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां मेघकूटनगरे राजा चन्द्रप्रभः, चन्द्रशेखरपुत्राय राज्यं दत्त्वा परोपकारार्थं वन्दनाभक्त्यर्थं च कियती विद्या दधानो दक्षिणमथुरायां मुनिं गत्वा गुप्ताचार्यसमीपे क्षुल्लको जातः। तेनैकदा वन्दनाभक्त्यर्थमुत्तरमथुराया चलितेन गुप्ताचार्यः पृष्टः। कि कस्य कथ्यते । भगवतोक्तम्—सुव्रतमुनेर्वन्दना, वरुणराजमहाराज्ञ्या रेवत्या आशीर्वादश्च कथनीयः, त्रिःपृष्टेनापि तेन तदेवोक्तम् : ततः क्षुल्लकेनोक्तम्—भव्यसेनाचार्यस्यैकादशाङ्गधारिणोऽन्येषां च नामापि भगवान्न गृह्णाति । तत्र किंचित्कारणं भविष्यतीति सम्प्रधार्य तत्र गत्वा सुव्रतमुनेर्भट्टारकाय वन्दनां कथयित्वा तदीयं च विशिष्ट वात्सल्यं

[८] निर्विचिकित्साख्यानकम्

सौधर्मेन्द्र ने अपनी सभा में सम्यक्त्व के गुणों का वर्णन करते हुए भरत क्षेत्र के कच्छदेश के रौरकपुर नगर में उद्दायन महाराज के निर्विचिकित्सा गुण की प्रशंसा की। उसकी परीक्षा करने के लिए गूलर के पेड़ के कंधे से युक्त मुनिरूप को विकृत कर उसी [राजा] के हाथ से विधिपूर्वक स्थित होकर समस्त आहार और जल को मायापूर्वक भक्षण कर (उस देव ने) अत्यन्त दुर्गन्ध बहुवमन किया। दुर्गन्ध के भय से परिजनो के भाग जाने पर दान देने वाले राजा तथा उसकी महारानी प्रभावती के ऊपर कर दी। हाय, हाय, मैंने विरुद्ध आहार दे दिया, इस प्रकार अपने आप की निन्दा करते हुए तथा उन मुनि को धोते हुए राजा के सामने माया समेट कर प्रकट होकर पूर्ववृत्तान्त कहकर तथा प्रशंसाकर देव चला गया। उद्दायन महाराज वर्द्धमान स्वामि के पादमूल में तप ग्रहण कर मुक्ति को प्राप्त हो गए प्रभावती तप के कारण ब्रह्मस्वर्ग में देव हुई।

मूढदृष्टि के आख्यानक का उदाहरण बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त का है, वह आगे कहा जायगा।

(९) अमूढद्रष्टि आख्यानक

विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के मेघकूट नगर में राजा चन्द्रप्रभ चन्द्रशेखर नामक पुत्र को राज्य देकर परोपकार तथा वन्दना भक्ति के लिए कितनी ही विद्याओं को धारण करता हुआ दक्षिण मथुरा में मुनि के समीप जाकर गुप्ताचार्य के समीप क्षुल्लक हो गया। उसने वन्दना तथा भक्ति के लिए उत्तर मथुरा का ओर प्रस्थान करते हुए गुप्ताचार्य से पूछा— किससे क्या कहना है ? भगवान् ने कहा— सुव्रत मुनि से वन्दना तथा वरुणराज की महारानी रेवती से आशीर्वाद कहना। त्रिपृष्ट ने भी उससे यही कहा- अनन्तर क्षुल्लक ने कहा— भव्यसेन आचार्य जो कि ग्यारह अङ्ग के धारी हैं तथा अन्य भी लोगों का भगवान् नाम भी नहीं लेते हैं। उसमें कुछ कारण होना चाहिए, सा निश्चय कर वहां जाकर सुव्रत मुनि भट्टारक के लिए वन्दना

दृष्ट्वा अभव्यसेनवसतिकां गतस्तत्र गतस्य भव्यसेनेन संभाषणमपि न कृतम् । कुण्डिकां गृहीत्वा भव्यसेनेन सह बहिर्भूमिं गत्वा विकुर्वणया हरितकोमलतृणाङ्कुरच्छन्नो मार्गोऽग्रे दर्शित. । तं दृष्ट्वा आगमे कि ते जीवाः कथ्यन्ते इति भणित्वा तृणोपरि गत. । शौचसमये कुण्डिकाजल शोषयित्वा क्षुल्लकेनोक्तम्–भगवन्, कुण्डिकायां जल नास्ति तथा विकृ–तिश्च क्वापि न दृश्यते । अतोऽत्र स्वच्छसरोवरे प्रशस्तमृत्तिकया शौच कुरु । तत्रापि तथा भणित्वा शौच कृतवान् । ततस्त मिथ्यादृष्टिं ज्ञात्वा भव्यसेनस्याभव्यसेन इति नाम कृतम् । ततोऽन्यस्मिन्दिने पूर्वस्या दिशि पद्मासनस्थ चतुर्मुख यज्ञोपवीतायुपेत देवासुरवन्द्यमानं ब्रह्मरूप दर्शितम् । तत्र राजादयोऽभव्यसेनादयश्च सर्वे गता । रेवती तु कोऽय ब्रह्मा नाम देव इति भणित्वा लोकै. प्रेर्यमाणापि न गता । एव दक्षिण-स्यां दिशि गरुडारूढ चतुर्भुजं चक्रगदाशङ्खासिधारक वासुदेवरूपम् । पश्चिमस्यां दिशि वृषभारूढं सार्धचन्द्रजटाजूटगौरीगणोपेतं शङ्कररूपम् । उत्तरस्यां दिशि समवसरणमध्ये प्रातिहार्याष्टकोपेतं सुरनरविद्याधर–मुनिवृन्दवन्द्यमानं पर्यङ्कस्थं तीर्थकरदेव–रूपं दर्शितम् । तत्र च सर्वे लोका गताः । रेवती तु लोकैः प्रेर्यमाणापि न गता । नवैव वासुदेवाः एकादशैव रुद्राः चतुर्विंशतिरेव तीर्थकराः जिनागमे कथिताः ते चातीताः । कोऽप्ययं मायावीत्युक्त्वा स्थिता । अन्यदिने चर्यावेलायां व्याधिक्षीणशरीरक्षुल्लक-रूपेण रेवतीगृहप्रतोलीसमीपमार्गे मायामूर्च्छया पतित. । रेवत्या तमाकर्ण्य भक्त्योत्थाय नीत्वोपचारं कृत्वा पथ्य कारयितुम् आरब्धा । तेन च सर्व-माहारं भुक्त्वा दुर्गन्धवमनं कृतम् । तदपनीय हा हा विरूपक मया पथ्यं दत्तमिति रेवत्या वचनमाकर्ण्य तोषान्मायामुपसंहृत्य तां देवीं वन्दयित्वा

कहकर, उसके विशिष्ट वात्सल्य को देखकर अभव्यसेन की वसतिका में गया। वहाँ जाने पर भव्यसेन के साथ बातचीत भी नहीं की। कुण्डी को ग्रहणकर भव्यसेन के साथ बाहरी भूमि में आकर विक्रिया के द्वारा हरे कोमल तृणों के अङ्कुरों से व्याप्त मार्ग को आगे दिख-लाया। उसे देखकर आगम में ये जीव कहलाते है, ऐसा कहकर तृणों के ऊपर गया। शौच के समय कुण्डी के जल को सुखाकर क्षुल्लक ने कहा– भगवन् ! कुण्डी में जल नही है विक्रिया भी कही नही दिखाई देती है, अत यहाँ स्वच्छ सरोवर में प्रशस्त मिट्टी से शौच करो। उसने भी वैसा ही कहकर शौच किया। अनन्तर उसे मिथ्या-दृष्टि जानकर भव्यसेन का अभव्यसेन यह नाम रख दिया।

अनन्तर दूसरे दिन पूर्व दिशा में पद्मासनपर स्थित चार मुख वाले यज्ञोपवीत आदि से युक्त देव और असुरों के द्वारा वन्दन किए जाते हुए ब्रह्मरूप को दिखलाया। वहाँ पर राजादिक तथा अभव्यसेनादिक सब चले गए। रेवती, यह ब्रह्मा नामक देव कौन है ? ऐसा कहकर लोगों के द्वारा प्रेरणा दिए जाने पर भी नहीं गई। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में गरुड पर आरूढ चतुर्मुख चक्र, गदा, शङ्ख तथा तलवार धारक वासुदेव रूप दिखाया। पश्चिम दिशा में वृषभ पर आरूढ़ अर्द्ध चन्द्रमा जटाजूट, गौरी तथा गणों से युक्त शङ्कर का रूप दिखाया। उत्तर दिशा में समवसरण के मध्य अष्ट प्रातिहार्य से युक्त सुर, नर, विद्याधर तथा मुनियों के समूह से वन्दना किए जाते हुए पर्यङ्कासन से स्थित तीर्थंकर देव का रूप दिखाया। वहाँ पर सभी लोग गए। रेवती लोगों के द्वारा प्रेरणा दिए जाने पर भी नहीं गई। जिनागम में नौ ही वासुदेव, ग्यारह ही रुद्र तथा चौबीस ही तीर्थंकर कहे गये हैं। वे हो चुके है। यह कोई मायावी है, यह कहकर स्थित रही। दूसरे दिन चर्या के समय रोग से क्षीण शरीर वाले क्षुल्लक रेवती के घर की गली के समीप मार्ग में मायामयी मूर्च्छा के कारण गिर गया रेवती उसके विषय में सुनकर भक्ति पूर्वक उठकर ले आकर पथ्य कराने लगी। उसने सब आहार खाकर दुर्गन्धवमन किया। उसे दूर कर हाय, हाय ! मैंने बुरा पथ्य दिया, इस प्रकार रेवती के वचनों को सुनकर सन्तोष पूर्वक माया समेट कर उस देवी की वन्दना कर

गुरोराशीर्वादं पूर्ववृत्तान्तं च सर्वं कथयित्वा लोकमध्ये अमूढदृष्टित्वं तस्या उच्चैः प्रशस्य स्वस्थाने गतः। वरुणो राजा शिवकीर्तिपुत्राय राज्यं दत्त्वा तपो गृहीत्वा महेन्द्रस्वर्गे देवो जातः। रेवत्यपि तपः कृत्वा ब्रह्म स्वर्गे देवो बभूव ॥

(१०) उपगूहनाख्यानकम् ।

सौराष्ट्रदेशे पाटलिपुत्रनगरे राजा यशोध्वजो, राज्ञी सुसीमा, पुत्रः सुवीरः सप्तव्यसनाभिभूतस्ताभूतभूरिपुरुषसेवितः : पूर्वदेशे गौडविषये ताम्रलिप्तिनगर्यां जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठिनः सप्ततलप्रासादोपरि बहुरक्षावृता पार्श्वनाथप्रतिमा छत्रत्रयोपरि विशिष्टतरानर्घ्यवैडूर्यमणिं पारम्पर्येणाकर्ण्य लोभात्सुवीरेण निजपुरुषाः पृष्टास्तं मणिं किं कोऽप्यानेतुं शक्नोतीति । इन्द्रमुकुटमणिमप्यहमानयामीति गलगर्जितं कृत्वा सूर्यनामा चोरः कपटेन क्षुल्लको भूत्वा अतिकायक्लेशेन ग्रामनगरेषु क्षोभं कुर्वाणः क्रमेण ताम्रलिप्तिनगरीं गतः। तमाकर्ण्य गत्वा लोकवन्द्यत्वात् संभाष्य प्रशस्य क्षुभितेन जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठिना नीत्वा श्रीपार्श्वनाथदेवं दर्शयित्वा माययानिच्छन्नपि गृहीत्वा स तत्र मणिरक्षको धृतः। एकदा क्षुल्लकं पृष्ट्वा श्रेष्ठी समुद्रयात्रायां चलितो नगराद् बहिर्निर्गत्य स्थितः। स चौरक्षुल्लको गृहजनमुपकरणनयनव्यग्रं ज्ञात्वार्धरात्रे तं मणिं गृहीत्वा चलितः। मणितेजसा मार्गे कोट्टपालैर्दृष्टो धर्तुमारब्धः। तेभ्यः पलायितुमसमर्थः श्रेष्ठिन एव शरणं प्रविष्टो मां रक्ष रक्षेति चोक्तवान्। कोट्टपालानां कलकलमाकर्ण्य पर्यालोच्य तं चौरं ज्ञात्वा दर्शनोद्वाहप्रच्छादनार्थं भणितं श्रेष्ठिना मम वचनेन रत्नमनेनानीतं रे भवद्भिर्विरूपकं कृतं यदस्य महातपस्विनश्चौरोद्घोषणा कृता। ततस्ते तस्य प्रणामं कृत्वा गताः। स च श्रेष्ठिना रात्रौ निर्घाटितः।

गुरु का आशीर्वाद और पूर्व समस्त वृत्तान्त कहकर लोगों के बीच उसकी अमूढदृष्टिपने की ओर से प्रशंसा कर अपने स्थान को चला गया। वरुण राजा शिवकीर्ति पुत्र के लिए राज्य देकर तप ग्रहण कर महेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ। रेवती भी तप कर ब्रह्मस्वर्ग में देव हुई।

(१०) उपगूहन अङ्ग की कथा

सौराष्ट्र देश के पाटलिपुत्र नगर में राजा यशोध्वज, रानी सुसीमा, तथा पुत्र सुवीर था जो कि सात व्यसनों से अभिभूत था एवं उसी प्रकार के अनेक पुरुषों से सेवित था। पूर्वदेश के गौड प्रदेश में ताम्र लिप्ति नगरी में जिनेन्द्रभक्त सेठ के सप्तखण्ड प्रासाद के ऊपर अनेक प्रकार की रक्षा से युक्त तथा उसके तीन छत्रों के ऊपर विशिष्टतर बहुमूल्य वैडूर्यमणि को परम्परा से सुनकर लोभ से सुवीर ने अपने पुरुषों से पूछा —क्या कोई उस मणि को ला सकता है? इन्द्र का मुकुट मणि भी मैं लाता हूँ, इस प्रकार गलगर्जना कर सूर्य नामक चोर कपट पूर्वक क्षुल्लक होकर अत्यन्त काय क्लेश से ग्राम और नगरों में क्षोभ उत्पन्न करता हुआ क्रम से ताम्रलिप्ति नगरी को गया। उसके विषय में सुनकर जाकर लोक वन्दनीय होने के कारण बात-चीत कर, प्रशंसा कर क्षुभित जिनेन्द्रभक्त सेठ के साथ ले जाकर श्री पार्श्वनाथ देव को दिखलाकर माया के कारण इच्छा न करते हुए उसे पकड़कर वहाँ मणिरक्षक नियुक्त कर दिया। एक बार क्षुल्लक से पूछकर सेठ समुद्र यात्रा के लिए गया हुआ नगर के बाहर निकल कर ठहर गया। वह चोर क्षुल्लक घर के लोगों को उपकरण ले जाने में व्यग्र जानकर आधी रात में उस मणि को लेकर चला गया। मणि के तेज से मार्ग में कोट्टपालो ने देखा और पकड़ना आरम्भ किया उनसे भागकर जाने में असमर्थ हो सेठ के ही शरण में प्रविष्ट हुआ, मेरी रक्षा करो-मेरी रक्षा करो, इस प्रकार कहा-कोट्टपालों के कोलाहल को सुनकर विचारकर उसे चोर जानकर दर्शन की सँभाल के लिए दोष ढकने हेतु सेठ ने कहा—मेरे वचनों के अनुसार यह रत्न लाया है, आप लोगों ने बुरा किया जो कि इस महातपस्वी को चोर घोषित किया। अनन्तर वे उसे प्रणाम कर चले गए। उस व्यक्ति को सेठ ने रात में निकाल दिया

एवमन्येनापि सम्यग्दृष्टिनाभवतासमर्थाज्ञानपुरुषादागतदर्शनदोषस्य प्रच्छादनं कर्तव्यम् ।।

(११) उपस्थितिकरणाख्यानकम् ।

यथा— मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको, राज्ञी चेलनी, पुत्रो वारिषेण उत्तमश्रावकश्चतुर्दश्यां रात्रौ कृतोपवासः श्मसाने कायोत्सर्गेण स्थितः। तस्मिन्नेव दिने उद्यानक्रीडागतमगधसुन्दरीविलासिन्या श्रीकीर्तिश्रेष्ठिना परिहितो दिव्यो हारो दृष्टः। ततस्तं दृष्ट्वा किमनेनालंकारेण बिना जीवितेनेति संचिन्त्य शय्यायां पतित्वा सा स्थिता। तावद्रात्रौ समागतेन तदासक्तेन विद्युच्चोरेणोक्तम् —प्रिये, किमेवं स्थितासीति। तयोक्तम् श्रीकीर्तिश्रेष्ठिनो हारं यदि मे ददासि तदा जीवामि। त्वं च मे भर्ता नान्य थेति श्रुत्वा तां समुद्धार्य अर्धरात्रौ गत्वा निजकौशल्येन हारं चोरयित्वा निर्गतस्तदुद्योतेन चौरोऽयमिति ज्ञात्वा गृहरक्षकैः कोट्टपालैश्च ध्रियमाणः पलायितुमसमर्थो वारिषेणकुमारस्याग्रे तं हारं धृत्वाऽदृश्यो भूत्वा स्थितः। कोट्टपालैश्च तं तथा आलोक्य श्रेणिकस्य कथितम् देव वारिषेणश्चोर इति श्रुत्वा तेनोक्तम् मोषकस्यास्य मस्तकं गृह्यतामिति। मातङ्गेन च योऽसिः शिरोग्रहणार्थं वाहितः स कण्ठे तस्य पुष्पमाला बभूव। तमतिशयमाकर्ण्य श्रेणिकेन गत्वा वारिषेणक्षमां कारितो लब्धाभयप्रदानेन विद्युच्चोरेण राज्ञो निजवृत्तान्ते कथिते वारिषेणो गृहे नेतुमारब्धः। तेन चोक्तम्—मया पाणिपात्रे भोक्तव्यमिति। ततोऽसौ सूरदेवमुनिसमीपे मुनिरभूत्। एकदा राजगृहसमीपे पलाशकूटग्रामे चर्यां स प्रविष्टः। तत्र श्रेणिकस्य योऽग्निभूतिः मन्त्री तत्पुत्रेण पुष्पडालेन दृष्ट्वा स्थापितश्चर्यां कारयित्वा स सोमिल्लां निजभार्यां पृष्ट्वा प्रभुपुत्रत्वाद् बालसखित्वाच्च स्तोकमार्गानुव्रजनं कर्तुं वारिषेणेन सह निर्गतः।

इसी प्रकार दूसरे भी सम्यग्दृष्टिको अशक्त, असमर्थ, अज्ञानी पुरुष द्वारा आगत सम्यग्दर्शन के दोष को ढकना चाहिए।

[११] स्थितिकरण अङ्ग की कथा

मगधदेश के राजगृहनगर में राजा श्रेणिक, रानी चेलनी तथा पुत्र वारिषेण थे। उत्तम श्रावक वारिषेण चतुर्दशी के दिन रात्रि में उपवास कर श्मसान में कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित हो गया। उसी दिन उद्यानक्रीडा के लिए आई हुई मगधसुन्दरी नामक वेश्या ने श्री कीर्ति सेठ के द्वारा पहिने हुए दिव्य हार को देखा। अनन्तर उसे देख कर इस अलंकार के बिना जीने से क्या लाभ ? ऐसा सोचकर शय्या पर पड़ गई। रात्रि में आए हुए, उसके प्रति आसक्त विद्युच्चोर ने कहा– प्रिये, इस प्रकार क्यों स्थित हो। उसने कहा– यदि मेरे लिए श्रीकीर्ति सेठ के हार को देते हो तो जीवित रहूँगी। तभी तुम मेरे भर्ता हो, अन्यथा नहीं यह सुनकर उसे धैर्य बँधाकर अर्द्धरात्रि में जाकर अपने कौशल से हार चुराकर जब निकला था तब उसके उद्योत से, यह चोर है, ऐसा जानकर गृहरक्षक तथा कोट्टपालों के द्वारा पकड़ा गया वह भागने में असमर्थ हो उस हार को वारिषेण कुमार के आगे रखकर अदृश्य हो खड़ा गया। कोट्टपालों ने उसे वैसा देख-कर श्रेणिक से कहा– महाराज ! वारिषेण चोर है। यह सुनकर श्रेणिक ने कहा– चोर इसके मस्तक को काट डालो। चाण्डाल ने जो तलवार सिर काटने के लिए चलाई, वह उसके कण्ठ में पुष्पमाला हो गई। उस अतिशय को सुनकर श्रेणिक ने जाकर वारिषेण से क्षमा कराई। अभयदान पाए हुए विद्युच्चोर द्वारा राजा से अपना वृत्तान्त कहे जाने पर (राजा ने) वारिषेण को घर ले जाना प्रारम्भ किया। वारिषेण ने कहा– मैं पाणिपात्र में आहार करूँगा। अनन्तर वारिषेण सूरदेव मुनि के समीप मुनि हो गया। एक बार राजगृह के समीप पलाशकूट ग्राम में वह चर्या के लिए प्रविष्ट हुआ। वहाँ पर श्रेणिक राजा को जो अग्निभूतिमन्त्री थे उसके पुत्र पुष्पडाल ने देखकर ठहरा कर चर्या कराई। पुष्पडाल अपनी भार्या सोमिल्ला से पूछकर प्रभु का पुत्र होने के कारण तथा बाल्यावस्था की मैत्री के कारण थोड़ी

आत्मनो व्याघुटनार्थं क्षीरवृक्षादिकं दर्शयन् मुहुर्मुहुर्वन्दनां कुर्वन् हस्ते धृत्वानीतो विशिष्टधर्मश्रवणं कृत्वा वैराग्यं नीत्वा तपो ग्राहितोऽपि सोमिल्लां न विस्मरति । तौ द्वावपि द्वादशवर्षाणि तीर्थयात्रां कृत्वा वर्धमानस्वामिसमवसरणं गतौ । तत्र वर्धमानस्वामिनः पृथिव्याश्च संबन्धिगीतं देवैर्गीयमानं पुष्पडालेन श्रुतं यथा–

मइल कुचेली दुम्मणी णाहें पवसियएण ।
कह जीवेसइ धणिय घर डज्झते हियएण ॥

एतदात्मनः सोमिल्लायाश्च सयोज्य तस्यामुत्कण्ठितश्चलितः । स वारिषेणेन ज्ञात्वा स्थिरीकरणार्थं निजनगरं नीतः । चेलिन्यासौ दृष्ट्वा वारिषेणः किं चारित्राच्चलितः आगच्छतीति संचिन्त्य परीक्षार्थं सरागवीतरागे द्वे आसने दत्ते । वीतरागासने वारिषेणेनोपविश्योक्तम्– मदीयमन्तःपुरमानीयताम् । ततश्चेलिनीमहादेव्या वत्सपालककथा वारिषेणेन अगन्धनसर्पकथा । ततश्चेलिनीमहादेव्या द्वात्रिंशद्भार्याः सालंकारा आनीताः । ततः पुष्पडालो वारिषेणेन भणितः । इदं मदीयं युवराजपदं त्वं गृहाण । तच्छ्रुत्वा पुष्पडालोऽतीव लज्जितः परमवैराग्यं गतः परमार्थेन तपः कर्तुं लग्न इति ॥

[१२] वात्सल्याख्यानकम् ।

यथा–अवन्तीदेशे उज्जयिन्यां राजा श्रीवर्मा, राज्ञी श्रीमती, बलिर्बृहस्पतिः प्रह्लादो नमुचिश्चेति चत्वारो मन्त्रिणः । तत्रैकदा समस्तश्रुतधरा दिव्यज्ञानिनः सप्तशतमुनिसमन्विता अकम्पनाचार्या आगत्योद्यानवने स्थिताः । समस्तसंघश्च वारितो राजादिकेऽप्यायाते केनापि जल्पनं न कर्तव्यमन्यथा समस्तसंघस्य नाशो भविष्यतीति । राज्ञा च धवलगृहस्थितेन पूजाहस्तं नगरीजनं गच्छन्तं

दूर चलने के लिए वारिषेण के साथ निकल गया। अपने लौटने के लिए और वृक्षादिक दिखलाता हुआ बार-बार वन्दना करता हुआ वह हाथ पकड़कर वारिषेण द्वारा लाया गया। विशिष्ट धर्म श्रवण-कर वैराग्य मार्ग पर ले आकर उसे तप ग्रहण करा दिया गया तो भी वह सोमिल्ला को नहीं भूलता था। वे दोनों बारह वर्ष तीर्थ-यात्रा कर वर्द्धमानस्वामि के समवसरण में गए। वहाँ पर वर्द्धमान-स्वामि और पृथ्वी सम्बन्धी गीत को देवों के द्वारा गाए जाने पर पुष्पडाल ने उसे सुना -

नाथ के प्रवास पर जाने पर मैली! कुवस्त्रधारिणी दुर्मना धनवानों के द्वारा धारण की हुई पृथ्वी जलते हुए हृदय से कैसे जीवित रहेगी?

इस गीत को अपने और सोमिल्ला के साथ जोड़कर उसके प्रति उत्कण्ठा से युक्त हो पुष्पडाल विचलित हो गया। वारिषेण को जब यह पता चला तो उसे वह स्थिरीकरण के लिए अपने नगर लाया। चेलनी ने उसे देखकर वारिषेण क्या चारित्र से च्युत होकर आ रहा है, ऐसा विचारकर परीक्षा के लिए सराग और वीतराग दो आसन दे दीं। वारिषेण ने वीतराग आसन पर बैठकर कहा- मेरे अन्त:पुर को ले आओ। अनन्तर चेलनी महादेवी ने वत्सपालक की कथा और वारिषेण ने अगन्धन सर्प की कथा कही। अनन्तर चेलिनी महारानी के द्वारा वारिषेण की सालंकार बत्तीस रानियों को लाया गया। अनन्तर पुष्पडाल से वारिषेण ने कहा- यह मेरा युवराज पद तुम ग्रहण करो। उसे सुनकर अत्यन्त लज्जित हुआ पुष्पडाल परम वैराग्य को प्राप्त हो परमार्थ रूप से तप करने लगा।

[१२] वात्सल्य अङ्ग की कथा

अवन्ती देश की उज्जयिनी नगरी में राजा श्रीवर्मा, रानी श्रीमती तथा बालि, बृहस्पति प्रह्लाद और नमुचि ये चार मन्त्री थे। एक बार समस्त श्रुत को धारण करने वाले दिव्यज्ञानी सात सौ मुनियों से युक्त अकम्पनाचार्य आकर उपवन में ठहर गए। समस्त संघ को निषेध कर दिया गया कि राजादिक के आने पर भी किसी

दृष्ट्वा मन्त्रिणः पृष्टा । क्वायं लोको अकालयात्रायां गच्छतीति । तैरुक्तम्—क्षपणका बहवो बहिरुद्याने आयातास्तत्रायं जनो याति । वयमपि तान् द्रष्टुं गच्छामः इति भणित्वा राजापि चतुर्मन्त्रिभिः समन्वितो गतः । प्रत्येकं सर्वे वन्दिता न केनाप्याशीर्वादो दत्तः । दिव्यानुष्ठानेनातिनिःस्पृहास्तिष्ठन्तीति संचिन्त्य व्याघुटिते राज्ञि मन्त्रिभिर्दुष्टाभिप्रायैरुपहासः कृतः । बलीवर्दा एते किंचिदपि न जानन्ति मूर्खा दम्भमौनेन स्थिताः । एवं ब्रुवाणैर्गच्छद्भिरग्रे चर्यां कृत्वा श्रुतसागरमुनिमागच्छन्तमालोक्य उक्तमयं तरुणबलीवर्दः पूर्णकुक्षिरागच्छति । एतदाकर्ण्य तेन राज्ञोऽग्रेऽनेकान्तवादेन जिताः । अकम्पनाचार्यस्य चागत्य वार्ता कथिता । तेन चोक्तम्—सर्वसंघस्त्वया मारितो यदि वादस्थाने गत्वा रात्रौ त्वमेकाकी तिष्ठसि तदा संघस्य जीवितव्यं तव शुद्धिश्च भवति । ततोऽसौ तत्र गत्वा कायोत्सर्गेण स्थितः । मन्त्रिभिश्चातिलज्जितैः क्रुद्धै रात्रौ संघ मारयितुं गच्छद्भिस्तमेकं मुनिमालोक्य येन परिभवः कृतः स एव हन्तव्य इति पर्यालोच्य तद्वधार्थं युगपच्चतुर्भिः खड्गा उद्गीर्णाः । कम्पितनगरदेवतया तथैव ते कीलिताः । प्रभाते तथैव सर्वलोकैर्द्रष्टाः रुष्टेन राज्ञा क्रमागता इति न मारिता, गर्दभारोहणादिकं कारयित्वा देशान्निर्घाटिताः । अथ कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे राजा महापद्मो, राज्ञी लक्ष्मीमती, पुत्रो पद्मोऽन्यो विष्णुश्च । एकदा पद्माय राज्यं दत्त्वा महापद्मो विष्णुना सह श्रुतसागरचन्द्राचार्यसमीपे मुनिर्जातः । ते च बलिप्रभृतय आगत्य पद्मराजस्य मन्त्रिणो जाताः ।

से बातचीत नहीं करना है, नहीं तो समस्त संघ का नाश होगा। धवलगृह पर स्थित राजा ने हाथ में पूजा की सामग्री लिए नगरी के लोगों को आते हुए देखकर मन्त्रियों से पूछा — यह लोग असमय में यात्रा के लिए कहाँ जा रहे हैं। उन मन्त्रियों ने कहा—बहुत से दिगम्बर मुनि बाहर उद्यान में आए हैं वहाँ पर यह लोग जा रहे हैं। हम भी उनके दर्शन के लिए जायेंगे, ऐसा कहकर राजा भी चार मन्त्रियों के साथ गया। प्रत्येक की सभी ने वन्दना की, किसी ने भी आशीर्वाद नहीं दिया। दिव्य अनुष्ठान के कारण अत्यन्त निःस्पृह हो विराजमान हैं, यह सोचकर राजा के लौटने पर दुष्ट अभिप्राय वाले मन्त्रियों ने उपहास किया। ये मूर्ख बैल कुछ भी नहीं जानते हैं अतः दम्भ से मौनपूर्वक बैठे हैं। इस प्रकार बोलते हुए जब वे आगे जा रहे थे तब आगे चर्या कर आते हुए श्रुतसागर मुनि को देखकर कहा- यह तरुण बैल पूरा पेट भरे हुए आ रहा है। यह सुनकर उन मुनि ने राजा के आगे मन्त्रियों को अनेकान्तवाद से जीत लिया और आकर अकम्पनाचार्य से बात कही। अकम्पनाचार्य ने कहा— तुमने समस्त संघ को मार डाला। यदि शास्त्रार्थ के स्थान पर जाकर रात्रि में तुम एकाकी ठहरते हो तब संघ का जीना और तुम्हारी शुद्धि होती है। अनन्तर श्रुतसागर मुनि वहाँ जाकर कायोत्सर्गपूर्वक खड़े हो गए। अत्यन्त लज्जित कुछ मन्त्रियों ने रात्रि में संघ को मारने के लिए जाते हुए उन एक मुनि को देखकर, जिसने तिरस्कार किया, उसे मारना चाहिए, ऐसा विचार कर उसके वध के लिए एक साथ चारों ने तल-वार निकाल ली। जिसका आसन कम्पायमान हुआ था ऐसी नगर देवी ने उसी प्रकार उनको कीलित कर दिया। प्रातः काल उन्हें उसी स्थिति में सब लोगों ने देखा। रुष्ट हुए राजा ने कुल परम्परा से आगत है, ऐसा सोचकर नहीं मारा, गधे पर चढ़ाना आदि कराकर देश से निकाल दिया।

कुरुजाङ्गल देश के हस्तिनापुर नगर में राजा पद्मरथ, रानी लक्ष्मी मती तथा एक पुत्र पद्म और दूसरा पुत्र विष्णु था। एक बार पद्म को राज्य देकर महापद्म विष्णु के साथ श्रुतसागरचन्द्राचार्य के समीप मुनि हो गए। वे बलि प्रभृति आकर पद्मराज के मन्त्री हो गए।

कुम्भपुरेनगरे च सिंहबलो राजा दुर्गबलात्पद्ममण्डलस्यो पद्रवं करोति । तद्ग्रहणचिन्तया पद्मं दुर्बलमालोक्य बलिनोक्तम् —किं देव दौर्बल्यस्य कारणमिति । कथितं च राज्ञा । तत् श्रुत्वा आदेशं याच-यित्वा तत्र गत्वा बुद्धिमाहात्म्येन दुर्गं भङ्क्त्वा सिंहबलं गृहीत्वा व्याघु-ट्यागतेन पद्मस्यासौ समर्पितः, देव, सोऽयं सिंहबल इति । तुष्ट्वा तेनो-क्तम्- वाञ्छितं वरं प्रार्थयेति । बलिनोक्तम्, यदा प्रार्थयिष्यामि तदा दीयतामिति । अथ कतिपयदिनेषु विहरन्तस्ते अकम्पनाचार्यादयः सप्तशत मुनयस्तत्रागताः । पुरक्षोभाद्बलिप्रभृतिभिर्भीत्या परिचिन्तितम् । राजा एतभ्दक्त इति पर्यालोच्य भयात्तन्मारणार्थं पद्मः पूर्वं प्रार्थितः । सप्तदि नान्यस्माकं राज्यं देहीति । ततोऽसौ सप्तदिनानि राज्यं दत्त्वा अन्तःपुरे प्रविश्य स्थितः । बलिना च आतापनगिरौ कायोत्सर्गेण स्थितान्मुनीन् वृत्यावेष्ट्य मण्डपं कृत्वा यज्ञः कर्तुमारब्धः । उत्सृष्टशरावच्छागादिजीव कलेवरैर्धूमैश्च मुनीनां मारणार्थमुपसर्गः कृतः । मुनयश्च द्विविधसंन्यासेन स्थिताः अथ मिथिलानगर्यामर्धरात्रे बहिर्विनिर्गतश्रुतसागरचन्द्राचार्येणा काशे श्रवणनक्षत्रं कम्पमानमालोक्यावधिज्ञानेन ज्ञात्वा भणितम्—महा-मुनीनां महानुपसर्गो वर्तते । तच्छ्रुत्वा पुष्पदन्तनाम्ना विद्याधरक्षुल्लकेन पृष्टम्- भगवन्, क्व केषां मुनीनाम् । हस्तिनागपुरे अकम्पनाचार्यादीनाम् । स उपसर्गः कथं नश्यति । धरणिभूषणगिरौ विष्णुकुमारमुनिर्विक्रियर्द्धिसं-पन्नस्तिष्ठति, स नाशयति । एतदाकर्ण्य तत्समीपे गत्वा क्षुल्लकेन विष्णु-कुमारस्य सर्वस्मिन् वृत्तान्ते कथिते मम किं विक्रिया-ऋद्धिरस्तीति संचिन्त्य तत्परीक्षणार्थं हस्तः प्रसारितः । स गिरिं भित्त्वा दूरे गतः । ततस्तां निर्णीय तत्र गत्वा पद्मराजो भणितः— किं त्वया मुनीनामुपसर्गः कारितः । भवत्कुले केनापीदृशं न कृतम् । तेनोक्तम्—किं करोमि, पूर्व मस्य वरो दत्त इति । ततो विष्णुकुमारमुनिना वामनब्राह्मणरूपं धृत्वा

कुम्भपुर नगर का राजा सिंहबल दुर्ग के बल से पद्म के मण्डल पर उपद्रव करता था। उसे पकड़ने की चिन्ता से पद्म को दुर्बल देखकर बलि ने कहा– देव! दुर्बलता का क्या कारण है? राजा ने कहा– उसे सुनकर आदेश माँगकर वहाँ आकर बुद्धि के माहात्म्य से दुर्ग तोड़कर सिंहबल को पकड़कर वापिस आकर इसे पद्म को समर्पित कर दिया, देव! वह सिंहबल यह है। उसने सन्तुष्ट होकर कहा– वाञ्छित वर माँगिए। बलि ने कहा- जब प्रार्थना करूँगा, तब दीजिए। अनन्तर कुछ दिनों में विहार करते हुए वे अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनि वहाँ आए। नगर में क्षोभ होने से बलि प्रभृति मन्त्रियों ने भय के कारण सोचा। राजा इनका भक्त है, ऐसा विचार कर भय के कारण उनको मारने के लिए पद्म से पहले ही प्रार्थना की हम लोगों को सात दिन के लिए राज्य दीजिए। अनन्तर वह सात दिनों के लिए राज्य देकर अन्तःपुर में प्रवेश कर स्थित हुआ। बलि ने आतापन गिरि पर कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित मुनियों को चारों ओर से घेरकर मण्डल बना कर यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। छोड़े हुए सकोरे बकरे आदि जीवों के कलेवरों तथा धुयें से मुनियों को मारने के लिए उपसर्ग किया। मुनि आभ्यन्तर और बाह्य दो प्रकार के सन्यास पूर्वक स्थित हो गए अनन्तर मिथिला नगरी में आधी रात में बाहर निकले हुए श्रुतसागर चन्द्र आचार्य ने आकाश में श्रवण नक्षत्र को काँपते हुए देखकर अवधि ज्ञान से जानकर कहा– महामुनियों के ऊपर बहुत बड़ा उपसर्ग है, उसे सुनकर पुष्पदन्त नामक विद्याधर क्षुल्लक ने पूछा– भगवान! कहाँ किन मुनियों के ऊपर उपसर्ग है? हस्तिनापुर में अकम्पनाचार्यादि मुनियों पर उपसर्ग है। वह उपसर्ग कैसे नष्ट होगा? धरणिभूषण पर्वत पर विष्णुकुमार मुनि विक्रिया ऋद्धि से सम्पन्न होकर बैठे हैं, वह नाश करेंगे। यह सुनकर उनके समीप जाकर क्षुल्लक ने विष्णुकुमार को जब सारा वृत्तान्त कहा– तब मुझे क्या विक्रिया ऋद्धि है? ऐसा सोचकर उसकी परीक्षा के लिए हाथ फैला दिया। वह हाथ पर्वत को भेदकर दूर चला गया। अनन्तर उसका निर्णयकर वहाँ आकर पद्मराज से कहा– क्या तुमने मुनियों के ऊपर उपसर्ग कराया है, आपके कुल में किसी ने भी ऐसा नहीं किया। उसने कहा– क्या करूँ? पहले इसे वर दिया था।

दिव्यध्वनिना प्रार्थनं कृतम् । बलिनोक्तम्–किं तुभ्यं दीयते । तेनोक्तम्–भूमेः पादत्रयं देहि । ग्रहिलब्राह्मण, बहुतरमन्यत्प्रार्थयेति वारंवारं लोकैर्भण्यमानोऽपि तावदेव च याचते । हस्तोदकादिविधिना भूमिपादत्रये दत्ते तेनैकपादो मेरौ दत्तो, द्वितीयपादो मानुषोत्तरगिरौ, तृतीयपादेन देवविमानादीनां क्षोभं कृत्वा बलिपृष्ठे तं पादं दत्त्वा बलिं बन्धयित्वा मुनीनामुपसर्गो निवारितः ततस्ते चत्वारो मन्त्रिणः पप्रच्छ भयादागत्य विष्णुकुमारमुनेरकम्पनाचार्यादीनां च पादेषु लग्नाः । ते मन्त्रिणः श्रावकाश्च जाता इति व्यन्तरदेवैः सुघोषवीणात्रय दत्तं विष्णुकुमारपादपूजार्थम् ॥

[१३] प्रभावनाख्यानकम् ।

यथा–हस्तिनापुरे बलराजस्य पुरोहितो गरुडस्तत्पुत्रः सोमदत्तः [तेन] सकलशास्त्राणि पठित्वा अहिच्छत्रनगरे निजमातुलसुभूतिपार्श्वे गत्वा भणितम्–माम मां दुर्मुखराजस्य दर्शयेति । तेन गर्वितेन न स दर्शितः । ततो ग्रहिलो भूत्वा भूपसभायां स्वमेव तं दृष्ट्वा आशीर्वादं दत्त्वा सर्वशास्त्रकुशलत्वं प्रकाश्य मन्त्रिपदं लब्धवान् । तं तथाभूतमालोक्य सुभूतिमामो यज्ञदत्तां पुत्रीं परिणेतुं दत्तवान् । एकदा तस्या गुर्विण्या वर्षाकाले आम्रफलभक्षणे दोहलको जातः । सोमदत्तेन तान्याम्रवने अन्वेषयता यत्राम्रवृक्षे सुमित्राचार्यो योगं गृहीत्वाऽऽस्ते नानाफलैः फलितं दृष्ट्वा तस्मात्तान्यादाय पुरुषहस्ते प्रेषितवान्, स्वयं च धर्मं श्रुत्वा निर्विण्णस्तपो गृहीत्वा आगममधीत्य परिणतो भूत्वा नाभिगिरावातापनेन स्थितः । यज्ञदत्ता च पुत्रं प्रसूता । तं वृत्तान्तं श्रुत्वा बन्धुसमीपं गता तस्य च शुद्धिं ज्ञात्वा बन्धुभिः सह नाभिगिरिं गत्वा तमातापनस्थमालोक्यातिकोपात्तत्पादोपरि बालकं धृत्वा दुर्वचनानि दत्त्वा गृहं गता । अत्र प्रस्तावे दिवाकरदेवनामा

अनन्तर विष्णुकुमार मुनि ने बौने ब्राह्मण का रूप धारण कर दिव्यध्वनि से प्रार्थना की । बलि ने कहा— तुम्हें क्या दें ? विष्णु कुमार मुनि ने कहा— तीन पग भूमि दीजिए । भूताविष्ट ब्राह्मण ! अन्य कुछ बहुत माँगो, इस प्रकार लोगों के द्वारा बार-बार कहे जाने पर भी वही माँगने लगे । हाथ में जल लेकर देने की विधि से तीन पैर भूमि देने पर विष्णकुमार ने एक पैर मेरु पर रखा, दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत पर, तीसरे पैर से देवविमान आदि को क्षुभित कर बलि की पीठ पर वह पैर रखकर बलि को बाँधकर मुनियों का उपसर्ग निवारण कर दिया अनन्तर वे चारो मन्त्री और पद्म भय से आकर विष्णु कुमार मुनि और अकम्पनाचार्यादि के पैरों में गिर गए । वे मन्त्री श्रावक हो गए व्यन्तरदेवों ने विष्णुकुमार के चरणों की पूजा के लिए सुघोष नामक तीन वीणायें दी ।

[१३] प्रभावना अङ्ग की कथा

हस्तिनागपुर नगर में बलराज का पुरोहित गरुड था । उसका पुत्र सोमदत्त था । उसने समस्त शास्त्र पढकर अहिच्छत्र नगर में अपने मामा सुभूति के समीप जाकर कहा— मामा ! मुझे दुर्मुख राजा को दिखाओ । उसने गर्व के कारण उसके दर्शन नही कराए अनन्तर हठी होकर सोमदत्त राजा की सभा में स्वयं उसके दर्शनकर आशीर्वाद देकर समस्त शास्त्रों में कुशलता का प्रकाशन कर मन्त्रिपद प्राप्त कर लिया उसे वैसा देखकर सुभूति मामा ने अपनी यज्ञदत्ता पुत्री को विवाहने के लिए दे दी । एक बार गर्भिणी उस यज्ञदत्ता को वर्षाकाल में आम के फल खाने की अभिलाषा हुई । सोमदत्त ने आम को आम्रवन में खोजते हुए जिस आम के वृक्ष के नीचे सुमित्राचार्य योग ग्रहण कर बैठे थे, उसे नाना फलों से फलित देखकर उस वृक्ष से वे आम लेकर पुरुष के हाथ से भिजवा दिए तथा स्वयं धर्म सुनकर खिन्न हो तप ग्रहण कर आगम पढ़कर परिणत होकर नाभिगिरि पर आतापन योग से स्थित हो गया । यज्ञदत्ता ने पुत्र प्रसव किया । उस वृत्तान्त को सुनकर वह बन्धु के समीप गई । उसकी शुद्धि जानकर बन्धुओं के साथ नाभिगिरि पर जाकर सोमदत्त को आतापन योग में स्थित देखकर अत्य-

विद्याधरोऽमरवतीपुर्याः पुरन्दरदेवनाम्ना लघुभ्रात्रा राज्यान्निर्धाटितः सकलत्रो मुनिं वन्दितुमायात्तस्तं बालं गृहीत्वा निजभार्यायाः समर्प्य वज्रकुमार इति नाम कृत्वा गतः। स च वज्रकुमारः कनकनगरे विमलवाहननिजमैथुनकसमीपे सर्वविद्यापारगो युवा च क्रमेण जातः। अथ गरुडवेगाङ्गवत्योः पुत्री पवनवेगा ह्रीमन्तपर्वते प्रज्ञप्तिविद्यां महाश्रमेण साधयन्ती पवनाकम्पितबदरीचक्रकण्टकेन लोचने विद्धा। ततस्तत्पीडया चलचित्ताया विद्या न सिध्यति। वज्रकुमारेण च तां तथा दृष्ट्वा विज्ञानेन कण्टकमुद्धृत्य [तम्।] ततः स्थिरचित्तायास्तस्या विद्या सिद्धा। उक्तं च तया—भवत्प्रसादेनैषा विद्या मे सिद्धा, त्वमेव भर्तेत्युक्त्या परिणीता। वज्रकुमारेण च तद्विद्यां गृहीत्वा अमरावतीं गत्वा पितृव्यं संग्रामे जीत्वा निर्धाटय दिवाकरदेवो राज्ये धृतः। एकदा जयश्रीजनन्या निजपुत्रराज्यनिमित्तमसहत्यान्येन जातोऽन्यं संतापयतीत्युक्तम्। तत्श्रुत्वा वज्रकुमारेणोक्तम्- तात, अहं कस्य पुत्र इति सत्यं कथय। तस्मिन् कथिते मे भोजनादौ प्रवृत्तिरिति। ततस्तेन पूर्ववृत्तान्तः सर्वः सत्य एव कथितः। तमाकर्ण्य स निजगुरुं द्रष्टुं बन्धुभिः। सह मथुरायां क्षत्रियगुहायां गतः। तत्र च सोमदत्तगुरोर्दिवाकरदेवेन वन्दनां कृत्वा वृत्तान्तः कथितः। ततः समस्तबन्धून्महता कष्टेन विसृज्य वज्रकुमारो मुनिर्जातः॥ अत्रान्तरे मथुरायामन्या कथा।

राजा पूतिगन्धो, राज्ञी उर्विला, सा च सम्यग्दृष्टिरतीव जिनधर्मप्रभावनायां रता नन्दीश्वराष्टदिनानि प्रतिवर्षं जिनेन्द्ररथयात्रां त्रिवारान् कारयति। तत्रैव नगर्यां श्रेष्ठी सागरदत्तः, श्रेष्ठिनी समुद्रदत्ता, पुत्री दरिद्रा। मृते सागरे दरिद्रां चैकदा परगृहे निक्षिप्तसिक्थानि

न्त कोप पूर्वक उसके पैर के ऊपर बालक को धरकर दुर्वचन कहकर घर चली गई। इसी अवसर पर दिवाकर देव नामक विद्याधर अमरावती पुरी के पुरन्दरदेव नामक छोटे भाई के द्वारा राज्य से निकाला जाकर स्त्री सहित मुनि की बन्दना के लिए आया। उस बालक को ग्रहण कर अपनी भार्या को समर्पितकर वज्रकुमार यह नाम रख गया। वह वज्रकुमार कनकनगर में विमलवाहन नामक अपने बहनोई के समीप क्रमशः समस्त विद्याओं का पारगामी युवा हो गया। अनन्तर गरुड-वेग और अङ्गवती की पुत्री पवनवेगा ह्रीमन्त पर्वत पर प्रज्ञप्ति विद्या को अत्यधिक श्रम सहित साध रही थी तभी वायु से कम्पित बेर का काँटा उसकी आँख में बिंध गया। अनन्तर उसकी पीडा से जिसका चित्त चंचल हो गया था ऐसी अङ्गवती को विद्या सिद्ध नहीं हो रही थी वज्रकुमार ने उसे उस प्रकार देखकर बुद्धि पूर्वक काँटा उखाड़ दिया। उससे स्थिर चित्तवाली अङ्गवती की विद्या सिद्ध हो गई और उसने कहा– आपकी कृपा से यह विद्या मुझे सिद्ध हो गई, तुम्हीं मेरे स्वामी हो ऐसा कहने पर उसके द्वारा ब्याही गई, वज्रकुमार ने उस विद्या को ग्रहण कर अमरावती मे आकर चाचा को संग्राम में जीतकर, बाहर निकालकर दिवाकर देव को राज्य पर अधिष्ठित किया। एक बार जयश्री माता ने अपने पुत्र के राज्य के लिए इसे न सहन करते हुए दूसरे से उत्पन्न हुआ, दूसरे को सन्ताप दे रहा है, ऐसा कहा– वह सुनकर वज्रकुमार ने कहा– पिता जी ! मैं किसका पुत्र हूँ, सत्य कहो उसे कहने पर मेरी भोजनादि मे प्रवृत्ति होगी। अनन्तर उसने समस्त पूर्ववृत्तान्त को सत्य रूप में ही कह दिया। उसे सुनकर वह अपने पिता के दर्शन के लिए बन्धुओं के साथ मथुरा में क्षत्रिय गुफा में गया। वहाँ पर सोमदत्त गुरु की बन्दनाकर दिवाकर देव ने वृत्तान्त कह दिया। अनन्तर समस्त बन्धुओं को अत्यधिक कष्ट से छोड़कर वज्रकुमार मुनि हो गया। इसी बीच मथुरा में अन्य कथा घटित हुई –

राजा पूतिगन्ध था (उसकी) रानी उर्विला थी। सम्यग्द्रष्टि वह जिनधर्म की प्रभावना में अत्यधिक रत रहती हुई नन्दीश्वर पर्व के आठ दिनों में प्रतिवर्ष जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा को तीनबार कराती थी उसी नगरी में सेठ सागरदत्त, श्रेष्ठिनी समुद्रदत्ता तथा पुत्री दरिद्रा थी

भक्षयन्ती चर्यायां प्रविष्टेन मुनिद्वयेन दृष्टा । ततो लघुमुनिनोक्तम्–हा वराकी महता कष्टेन जीवत्येतदाकर्ण्य ज्येष्ठमुनिनोक्तमस्यैवास्य राज्ञः पट्टराज्ञी वल्लभा भविष्यतीति । भिक्षां भ्रमता धर्मश्रीवन्दकेन तद्वचनमाकर्ण्य नान्यथा मुनिभाषितमिति संचिन्त्य स्वविहारे नीत्वा मृष्टाहारैः पोषिता । एकदा यौवनभरे चैत्रमासे आन्दोलयन्तीं राजा दृष्ट्वा ऽतीव विरहावस्थां गतः । ततो मन्त्रिभिर्वन्दकस्तां तदर्थं याचितः तेन चोक्तम्–यदि मदीयं धर्मं राजा गृह्णाति तदा ददामिति । तत्सर्वं कृत्वा परिणीता । पट्टमहादेवी तस्य सातिवल्लभा जाता । फाल्गुननन्दीश्वरयात्रायां उर्विलारथयात्रामहाटोपं दृष्ट्वा तया भणितम् । देव मदीयो बुद्धरथोऽधुनापुर्यां प्रथमं भ्रमतु । राज्ञा चोक्तमेवमस्त्विति । तत उर्विला मदीयो रथो यदि प्रथमं भ्रमति तदा ममाहारे प्रवृत्तिरिति प्रतिज्ञां गृहीत्वा क्षत्रियगुहायां सोमदत्ताचार्यपार्श्वे गता । तस्मिन्प्रस्तावे वज्रकुमारमुनेर्वन्दनाभक्त्यर्थमायाता दिवाकरदेवादयो विद्याधरास्तदीय–वार्तां श्रुत्वा वज्रकुमारमुनिना ते भणिताः । उर्विलायाः प्रतिज्ञापूरणार्थं रथयात्रा भवद्भिः कर्तव्येति । ततस्तैर्बुद्धदासीरथं भङ्क्त्वा नाना–विभूत्या उर्विलाया रथयात्रा कारिता । तमतिशयं दृष्ट्वा पूतिमुखा बुद्धदासी अन्ये च जना जिनधर्मरता जाताः ॥

[१४] भगिनीं विडम्बमानामित्यादि ।

[भयणीए विधम्मि [डंबि] ज्जंतीए एयत्तभावणाए जहा ।
जिणकप्पिओ ण मूढो खवओ वि ण मुज्झइ तधेव ॥२०१॥]

समयदत्त के मर जाने पर दरिद्रा को एक बार दूसरे के घर में पड़े हुए सीथों को खाती हुई चर्या के लिए प्रविष्ट दो मुनियों ने देखा अनन्तर छोटे मुनि ने कहा—हाय, बेचारी बड़ी कष्ट से जी रही है। यह सुनकर ज्येष्ठ मुनि ने कहा— यही इस राजा की प्रिय पट्टरानी होगी। भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए धर्मश्री नामक बौद्धभिक्षु ने उस वचन को सुनकर मुनि के कहे हुए वाक्य अन्यथा नहीं होते हैं, विचार कर ले जाकर स्वाद युक्त आहारों से पोषण किया। एक बार यौवनावस्था में चैत्र मास में झूला झूलती हुई उसे देखकर राजा अत्यधिक विरह की अवस्था को प्राप्त हो गया। अनन्तर मन्त्रियों ने बौद्धभिक्षु से राजा के लिए वह कन्या माँगी। बौद्धभिक्षु ने कहा— यदि राजा मेरा धर्म ग्रहण करता है तो दे दूँगा। वह सब कर राजा ने विवाह ली। वह उसकी यन्त ि य पट्टरानी हो गई। फाल्गुन मास मे नन्दीश्वर की याता के समय उर्विला के रथ की यात्रा को बड़ी धूमधाम से देखकर उसने कहा— महाराज! मेरा बुद्धरथ इस समय नगर में पहले भ्रमण करे। राजा ने कहा— ऐसा ही हो। अनन्तर उर्विला— मेरा रथ यदि पहले भ्रमण करेगा तो मैं आहार ग्रहण करूँगी, इस प्रकार प्रतिज्ञा लेकर क्षत्रिय गुहा में सोमदत्त आचार्य के पास गई। उस अवसर पर वज्रकुमार मुनि की वन्दना भक्ति के लिए दिवाकर देवादिक विद्याधर आए हुए थे, उसकी बात सुनकर वज्रकुमार मुनि ने उनसे कहा— उर्विला की प्रतिज्ञा पूरी करने लिए आप लोगों को रथयात्रा करना चाहिए। अनन्तर उन्होंने बुद्धदासी के रथ को तोड़कर नाना विभूति से उर्विला की रथयात्रा कराई। उस अतिशय को देखकर पवित्र मुख वाली बुद्धदासी और अन्यजन जिनधर्मरत हो गए।

[१४] एकत्व भावना का बल

जैसे जिनकल्पी जिनलिंग धारी नागदत्त नामक मुनि अयोग्य धर्म धर्म को धारण कराती हुई बहिन की बातों के प्रति भावना के बल से मूढ़ता को प्राप्त नहीं हुआ, उसी प्रकार अन्य मुनि भी एकत्व भावना के बल से मूढता को प्राप्त नहीं होते हैं। २०१॥ इसकी कथा यह है—

अत्र कथा—मगधदेशे राजगृहनगरे राजा प्रजापालो, राज्ञी प्रियधर्मा, तत्पुत्रौ प्रियधर्मप्रियमित्रौ । तौ तपः कृत्वाच्युतस्वर्गं गतौ । तत्र प्रियधर्मणा उक्तम्—आवयोर्मध्ये यो मनुष्यलोके प्रथममुत्पद्यते तेन स प्रबोधयित्वा तपो ग्राहितव्य इति । उज्जयिनीनगर्यां राजा नागधर्मो, राज्ञी नागदत्ता, तयोः प्रियमित्रदेवो नागदत्तनामा पुत्रो जातः । समस्तकलाभिज्ञः सर्पक्रीडायामतीव रतः । एकदा प्रियधर्मदेवः तत्संबोधनार्थं डोम्बवेषं कृत्वा पिट्टारके सर्पद्वयं गृहीत्वा गलगर्जं कुर्वन्नुज्जयिन्यां प्रविष्टो नागदत्तेन धृतः त्वदीयसर्पक्रीडामहं करोमि तेनोक्तम्—राजपुत्रैः सह नाहं वादं करोमि । राजा रुष्टो मां मारयतीति । ततो नागदत्तेन राज्ञाऽग्रे नीत्वाभयप्रदानं दापयित्वा नानाविधक्रीडायामेकः सर्पो जितः । ततस्तुष्टेन नागदत्तेनोक्तं, द्वितीयमपि सर्पं मुञ्चेति । डोम्बेनोक्तम् अयं सर्पो दुष्टो, यदि खादति तदास्य न किंचित्प्रतिविधानमस्तीति । ततः रुष्टेन नागदत्तेनोक्तम्—मन्त्रमुद्रामण्डलधारणाभिज्ञस्य किमसौ वराकः कर्तुं शक्त इति । ततो डोम्बेन राजादीन् साक्षिणः कृत्वा मम दोषो नास्तीत्युक्त्वा मुक्तः सर्पः । तेन च गत्वासौ खादितस्ततो निश्चलोऽसौ भूमौ पतितः । राज्ञा च सर्वे मन्त्रवादिन आकारितास्तैश्च कालदष्टोऽयं न जीवतीत्युक्त्वा अर्धराज्यं भणित्वा राज्ञा तस्यैव डोम्बस्य समर्पितः । तेनोक्तम्—ममाज्ञा समस्ति तया कालदष्टोऽपि जीवति, यद्युत्थितस्तपो गृह्णाति । राज्ञोक्तमेवमस्त्विति । ततस्तेनासावुत्थापितो दमधरमुनिपादमूले यतिर्जातः । ततो डोम्बरूपं परित्यज्य देवः प्रकटीभूय पूर्वं वृत्तान्तं कथयित्वा स्वर्गं गतः । नागदत्तमुनिश्च जिनकल्पेनाचरणाविशेषेण चरतीति जिनकल्पिको भूत्वा नानातीर्थवन्दनां कृत्वा महाटव्यामागच्छन्नवरुद्धमार्गैः सूरदत्तचरैर्धर्तुमारब्धो ऽयमात्मीयानग्रे गत्वा कथयिष्यतीति । सूरदत्तेनोक्तम्—न किमपि वदत्ययं परमवीतरागः पश्यन्नपि न पश्यतीति मुच्यताम् ।

मगधदेश के राजगृह नगर में राजा प्रजापाल, रानी प्रियधर्मा तथा (उन दोनों के) प्रिय धर्म और प्रियमित्र पुत्र थे। वे दोनों तप करके अच्युत स्वर्ग में चले गए। प्रियधर्म ने कहा– हम दोनों के मध्य में जो मनुष्य लोक में प्रथम उत्पन्न होगा उसे प्रबोधित कर वह (दूसरा) तप ग्रहण कराएगा उज्जयिनी नगरी में राजा नागधर्म, रानी नागदत्ता थी। उन दोनों के प्रियमित्र देव नागदत्त नामक पुत्र हुआ। समस्त कलाओं को जानता हुआ वह सर्पक्रीडा में अत्यन्त रत रहता था। एक बार प्रियधर्म देव उसे सम्बोधित करने के लिए सपेरे का वेष बनाकर पिटारे में दो सर्प पकड़कर गलगर्जना करता हुआ उज्जयिनी में प्रविष्ट होकर नागदत्त के द्वारा रोक लिया गया – तुम्हारे सर्प से मैं क्रीडा करता हूँ। उसने कहा– मैं राजपुत्रों के साथ विवाद नहीं करता हूँ। रुष्ट होकर राजा मुझे मार डालेगा। तब नागदत्त ने राजा के आगे ले जाकर अभयदान दिलाकर अनेक प्रकार की क्रीडाओं में एक सांप जीत लिया। तब सन्तुष्ट होकर नागदत्त ने कहा– दूसरा भी साँप छोड़ो। सपेरे ने कहा– यह साँप दुष्ट है यदि काट खायगा तो इसका कुछ भी प्रतीकार नहीं है। तब रुष्ट नागदत्त ने कहा– "मन्त्रमुद्रा के मण्डल को धारण करना जानने वाले का यह बेचारा क्या कर सकता है?" अनन्तर सपेरे ने राजादि को साक्षी कर मेरा दोष नहीं है, ऐसा कहकर साँप छोड़ दिया। उस सर्प ने जाकर उसे काट खाया, तब वह निश्चल होकर भूमि पर पड़ गया: राजा ने सारे मन्त्रवादी बुलाए, उनसे काल दष्ट यह जीवित नहीं हुआ, ऐसा कहने पर आधा राज्य दूँगा ऐसा वचन देकर उसी सपेरे को समर्पित कर दिया। सपेरे ने कहा– मेरी आज्ञा की सामर्थ्य से काल के द्वारा डसा हुआ भी जीवित रहेगा, यदि उठकर तप ग्रहण करेगा। राजा ने कहा– यही हो। अनन्तर उसके द्वारा उठाया जाकर वह दमधर मुनि के चरणमूल में यति हो गया। अनन्तर डोम्बरूप का परित्याग कर देव प्रकट होकर पूर्व वृत्तान्त कहकर स्वर्ग चला गया। नागदत्त मुनि जिनकल्प रूप विशेष आचरणपूर्वक विचरण करने लगे। इस प्रकार जिनकल्प होकर नाना तीर्थों की वन्दना कर महान् जंगल में पर्वत के द्वारा व्याप्त होने से रुके हुए मार्गों के कारण सूरदत्त के गुप्तचरों द्वारा पकड़ा गया कि आगे जाकर यह आत्मीय लोगों से कहेगा। सूरदत्त ने कहा– यह वीतराग कुछ भी

अथ सा नागदत्तस्य लघुभगिनी नागश्रीर्वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां जिन पालकुमाराय दत्ता। तां गृहीत्वा बहुभाण्डागारपरिजनेन सह गच्छन्त्या नागदत्तया मुनिर्दृष्ट.। संतोषेण हृष्टया प्रणम्य पृष्टो भगवन्नग्रे मार्ग-शुद्धिरस्ति न वेति। स मौन कृत्वा गतः। ततः सा वन्दनां कृताग्रे गता। चौरैश्च सर्वमर्थमुद्दाल्याग्रे कृत्वा द्वे अपि सूरदत्तस्याग्रे नीते। सूरदत्तेन चोक्तम् - दृष्टं भवद्भिः परमौदासीन्यं मुनेरनयोर्भक्ति कुर्वत्योः पृच्छयो-श्च न किंचित्कथितमिति। तच्छ्रुत्वा नागदत्तयोक्तम्—भो सूरदत्त क्षुरिकां समर्पय। पापिष्ठं निजमुदर नवमासानयमनेन धृतो दुष्टात्मा। ततो विदारयामीति। तदाकर्ण्य तेनोक्तम् —यस्य माता सा ममापि मातेति तां प्रणम्य सर्वमर्थ समर्प्य विसर्जिता। स्वयं नागदत्तचेष्टितं दृष्ट्वा विरक्तो भूत्वा तत्पादमूले तपो गृहीत्वा कर्मक्षयं कृत्वा मोक्षं गतः।

[१५] किलकल्पपालभवने पिबन्निव ब्राह्मणो दुग्धम्।

(दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि सजदो वि दोसेण।
पाणागारे दुद्धं पियंतओ बभणो चेव ॥३४६॥)

अत्र कथा—वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां राजा धनपालः, कल्पपालः पूर्ण-भद्रो, भार्या मणिभद्रा, पुत्री सुमित्रा, तस्या विवाहे समस्त नगरजन भोज यित्वा परममित्र चतुर्वेदवित्पुरोहित. शिवभूतिरामन्त्रितः। (तेन) उक्तम् मित्र, शूद्रान्नं न कल्पेत ऽस्माकम्। पूर्णभद्रेणोक्तम् ब्राह्मणगृहनिष्पन्नया रसवत्योद्याने गोष्ठीभवने भोजनं क्रियतामिति। तत उद्याने पूर्णभद्रं सपरिजनमेकत्रान्यत्र च शिवभूति खण्डं दुग्धं पिबन्तमालोक्य लोकैर्मद्य पानं कृतमिति राज्ञः कथितम्।

नहीं कहता है, देखते हुए भी नहीं देखता है, अतः छोड़ दो। नागदत्त की जो छोटी बहिन नागश्री वत्सदेश की कौशाम्बी नगरी में जिनदत्त और जिनदत्त के पुत्र जिनपाल कुमार के लिए दी गई थी, उसे लेकर बहुत भण्डारी परिजनों के साथ जाती हुई नागदत्ता को मुनि दिखाई दिए सन्तोष से प्रसन्न हो प्रणाम कर पूछा— भगवन् आगे मार्गशुद्धि है या नहीं। वह मौन धारण कर चले गए। अनन्तर वह वन्दना कर आगे चली गई। चोर समस्त धन को लूटकर आगे कर दोनों को सूरदत्त के आगे ले गए। सूरदत्त ने कहा— आप लोगों ने मुनि की परम उदासीनता को देख लिया। इन दोनों ने भक्ति करते हुए पूछा— फिर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। यह सुनकर नागदत्ता ने कहा— हे सूरदत्त ! क्षुरी दो। पापी इस दुष्टात्मा को अपने ऊपर में नवमाह तक धारण किया, अतः इसे विदारण करती हूँ। यह सुनकर सूरदत्त ने कहा— जो इसकी माता है, वह मेरी भी माता है, इस प्रकार उसे प्रणाम कर समस्त धन सौंपकर भेज दिया। स्वयं नागदत्त की चेष्टाओं को देखकर विरक्त होकर उसके पादमूल में तप ग्रहण कर कर्म नष्ट कर मोक्ष चला गया।

(१५) सङ्गति का प्रभाव

गाथार्थ — दुर्जन की संगति से लोक में संयमी के विषय में भी दोषों की शङ्का की जाती है। जैसे कलाल के घर पर दूध पीते हुए भी ब्राह्मण के विषय में लोग शंका करते हैं कि यह मद्यपान कर रहा है ॥३४६॥

कथा — वत्सदेश की कौशाम्ब नगरी में राजा धनपाल, मद्यविक्रेता पूर्णभद्र, भार्या मणिभद्रा तथा पुत्री सुमित्रा थी। सुमित्रा के विवाह मे नगर के समस्त लोगों को भोजन कराकर परम मित्र चतुर्वेद का ज्ञाता पुरोहित शिवभूति आमन्त्रित किया गया। उस शिवभूति ने कहा मित्र, हम लोग शूद्र का अन्न ग्रहण नहीं कर सकते हैं। पूर्णभद्र ने कहा— ब्राह्मण के घर बनी हुई रसोई से उद्यान में गोष्ठीभवन में भोजन करें। अनन्तर उद्यान में पूर्णभद्र को सपरिजन एक जगह और दूसरी जगह शिवभूति को खांड और दूध पीते देखकर लोगों ने मद्यपान

न कृतमिति शिवभूतिब्राह्मणो राजा वमनं कारितो दुर्गन्धवमनाद्दोषशान्तिर्घटितः ॥

[१६] कौशिकविहिते ऽपि यथा दोषे व्यापादितो हंसः ।

[अदिसजदो वि दुज्जणकएण दोसेण पाउणइ दोसं ।
जह घूगकाए दोसे हंसो य हओ अपावो वि ॥३४६॥

अस्य कथा—मगधदेशे पाटलिपुत्रनगरे पूर्वप्रतोलीछिद्रान्निर्गत्य कौशिक एकदा गङ्गायां गतो वृद्धहंसेन स्वागतं कृत्वा पृष्टः कस्त्वम् । उलूकेनोक्तम्—पक्षिराजो ऽहं सर्वे ऽपि राजानो मदीयाज्ञया चलन्ति । ततो मित्रत्वं कृत्वा हंसो घूकेन प्रतोलीमानीतः । गोधूलिसमये प्रजापालो राजा विजययात्रायां चलितः । घूकेन तमालोक्य हंसो भणितः । पश्यायं राजा मद्वचनेन गच्छति तिष्ठति चेति विशिष्टःशब्दं कृत्वा प्रेषितः, पुनर्विरूपकं शब्दं कृत्वा धृतः । एवं बहुवारान् शकुनापशकुनशब्दतो गच्छता तिष्ठता च राज्ञा शब्दवेधेन कोपाद्घूकशब्दस्य बाणो मुक्तस्तमालोक्य घूको बिले प्रविष्टो द्वारस्थो हंसो हतः । तेनोक्तम्—

अकालचर्यां विषमां च गोष्ठीं
कुमित्रसेवां न कदापि कुर्यात् ।
पश्याण्डजं पद्मवने प्रसूतं
धनुर्विमुक्तेन शरेण भिन्नम् ॥

[१७] बालो यथाभिजल्पतीत्यादि ।

जह बालो जंपंतो कज्जमकज्जं व उज्जुगं भणदि ।
तह आलोचेदव्वं मायामोसं च मोत्तूणं ॥५४७॥

अत्र कथा—कौशाम्बीपुर्यां राजा जयपालः, श्रेष्ठी सागरदत्तोऽतीवेश्वरो, भार्या सागरदत्ता, पुत्रः समुद्रदत्तः सकलाभरणभूषितः । अपरो दरिद्रो वणिक् गोपायनः सर्वव्यसनाभिभूतो भार्या सोमा, पुत्रः सोमको बालः

किया, इस प्रकार राजा ने कह दिया। 'मद्यपान नहीं किया',
...र शिवभूति के कहने पर राजा ने वमन कराया। दुर्गन्धवमन करने के कारण देश से निकाल दिया।

[१६] बुरी सङ्गति

गाथार्थ- अतिसंयमी साधु भी दुर्जनों की संगति करने से उत्पन्न दोष से दोष को प्राप्त होते हैं। जैसे निर्दोष हंस भी उल्लू की संगतिकर नाश को प्राप्त हुआ। [३४७]

इसकी कथा- मगधदेश के पाटलीपुत्र नगर में पूर्व की गली के छेद से निकलकर उल्लू एक बार गङ्गा की ओर गया हुआ था। उससे वृद्ध हंस ने स्वागत कर पूछा- तुम कौन हो ? उल्लू ने कहा- मैं पक्षियों का राजा हूँ, समस्त राजा मेरी आज्ञा मे चलते हैं। अनन्तर मित्रता कर हंस उल्लू के द्वारा गली में लाया गया। गोधूलि के समय राजा प्रजापाल विजययात्रा के लिए चला। उल्लू ने उसे देखकर हंस से कहा- देखो, यह राजा मेरे वचनों के अनुसार चलेगा और ठहरेगा, इस प्रकार विशिष्ट शब्द कर भेज दिया, पुनः बुरा शब्द कर ठहरा दिया। इस प्रकार अनेक बार शकुन तथा अपशकुन के शब्द से जाते हुए और ठहरते हुए राजा ने कोप से शब्दवेध से उल्लू के शब्द की ओर बाण छोड़ा, उसे देखकर उल्लू बिल में घुस गया, द्वार पर स्थित हंस मारा गया। हंस ने कहा-

असमय में गमन, विषम गोष्ठी और कुमित्र की सेवा कभी नहीं करना चाहिए। देखो कमल के वन में उत्पन्न अण्डज (हंस) धनुष से छूटे हुए बाण द्वारा नष्ट हो गया।

[१७) सरलता

गाथार्थ- जैसे बोलता हुआ बालक कार्य हो अथवा अकार्य, दोनों ही स्थितियों में सरल ही कहता है, उसी प्रकार [साधु को] मायाचार तथा झूठ का त्याग कर सत्य आलोचना करना चाहिए। (५४७)

कथा- कौशाम्बी नगरी में राजा जयपाल, अत्यन्त ऐश्वर्यवान् सेठ सागरदत्त तथा समस्त आभरणों से विभूषित पुत्र समुद्रदत्त था। दूसरा गरीब वणिक् गोपायन था, जो कि समस्त व्यसनों से अभिभूत था,

समुद्रदत्तः सोमकेन सह क्रीडति । एकदा गोपायनेन द्रव्यलोभान्निज-गृहे सोमकस्याग्रे स समुद्रदत्तं मारयित्वा आभरणं गृहीत्वा गर्तायां संनि-क्षिप्तः । तस्यादर्शने व्याकुलत्व सकलबन्धूनां, सागरदत्तया सोमकः पृष्टः । क्व रे समुद्रदत्तः । तेन चाविकल्पेनात्र गर्तायां तिष्ठतीत्युक्तम् । तया तत्र तं तथा दृष्ट्वा श्रेष्ठिनः कथितम् । तेन च यमदण्डकोट्टपालस्य, तेनापि राज्ञः, राज्ञा दण्डादिकं कृतमिति ॥

(१८) चन्द्रपरिवेषणाद्भुक्तमिति ।

[मिगतण्हादो उदगं इच्छइ चदपरिवेसणे कूरं ।
जो सो इच्छइ सोधी अकहतो अप्पणो दोसे ॥५६६]

अत्र कथा—राजगृहनगरे राजा वसुपाल सदा रात्रौ भुङ्क्ते । तस्य चन्द्रनामा महानसिकः परिवारप्रियः रुष्टेन राज्ञा चन्द्रो निःसारितो न्यो महानसिकः कृतः । तत परिवारेण राजाग्रे भोजन त्यक्तम् । एकदा भोजन समये गगने चन्द्रस्य परिवेषमालोक्य लोकैरुक्तम्-चन्द्रस्याद्य परिवेषो जात इति । तच्छ्रुत्वा परिवारेण चन्द्रसूपकारस्य प्रवेशो जात इति मत्वा भुक्तवाञ्छयागतेन न च भुक्त भोजन तेन विना कृतमिति ॥

(१९) स्फुटिते नयने सङ्घश्रियः ।

(अच्छीणि सघसिरिणो मिच्छत्तणिकाचणेण पडिदाणि ।
कालगदो वि य संतो जादो सो दीहसंसारे ॥०३२॥]

अस्य कथा—अन्ध्रदेशे धान्यकनकनगरे राजा धनदत्तः सद्दृष्टिः, सङ्घश्रीर्मन्त्री । ताभ्यामपराह्णे प्रासादोपरिभूमौ मन्त्रं कुर्वद्भ्यां चारण-मुनी गगनतले गच्छन्तौ दृष्टौ । अभ्युत्थानादिकं कृत्वा समीपमानीतौ ।

उसकी भार्या सोमा थी तथा पुत्र बालक सोमक था। समुद्रदत्त सोमक के साथ क्रीड़ा करता था। एक बार गोपायन ने धन के लोभ से अपने घर में सोमक के आगे उस समुद्रदत्त को मारकर आभरण लेकर गड्ढे में गाड़ दिया। उसे न देखकर समस्त बन्धुओं के व्याकुल हो जाने पर सोमक से सागरदत्त ने पूछा। अरे समुद्रदत्त कहाँ है? उसने बिना किसी विकल्प के इस गड्ढे में है, ऐसा कहा— सागरदत्त ने वहाँ पर उसे वैसा देखकर सेठ से कहा- सेठ ने यमदण्ड कोट्टपाल से, कोट्टपाल ने भी राजा से कहा राजा ने दण्डादिक दिया।

[१८] भ्रान्ति

गाथार्थ— जो (गुरु से) अपने दोष नहीं कहता है तथा स्वयं शुद्ध होना चाहता है, वह मृगतृष्णा से जल चाहता है तथा चन्द्रमा के परिवेष से भोजन चाहता है। [५७६]

कथा— राजगृह नगर में राजा वसुपाल सदा रात्रिभोजन करता था उसका चन्द्र नामक रसोइया परिवार का प्रिय था। [एक बार] रुष्ट राजा ने चन्द्र को निकालकर अन्य को रसोइया बनाया। तब परिवार ने राजा के आगे भोजन त्याग दिया एक बार भोजन के समय आकाश में चन्द्रमा के परिवेष को देखकर लोगों ने कहा— आज चन्द्रमा का परिवेष उत्पन्न हुआ है। उसे सुनकर परिवार ने चन्द्र नामक रसोइये का प्रवेश हुआ है ऐसा मानकर भोजन की इच्छा से आने पर भी भोजन को उसके बिना नहीं किया।

(१९) मिथ्यात्व का प्रभाव

गाथार्थ— संघश्री नामक पुरुष के मिथ्यात्व की तीव्रता के कारण दोनों नेत्र आ पड़े, वह अन्धा हो गया अनन्तर समय बिताता हुआ वह दीर्घसंसार में भ्रमण करने वाला हुआ। (७३२)

इसकी कथा— आन्ध्र देश में धान्य कनक नगर में सम्यग्दृष्टि राजा धनदत्त तथा सङ्घश्री मन्त्री था। जब वे दोनों अपराह्न में महल की ऊपरी भूमि में मन्त्रणा कर रहे थे तब उन्हें दो चरण मुनि आकाशतल में जाते हुए दिखाई दिए। वे दोनों उठकर अगवानी आदि करके उन्हें

वन्दनादिक कृतम् । राज्ञवचनेन सङ्घश्रीः विशिष्टधर्मश्रवणं कृत्वा श्रावकः कृतः । ततो गतौ मुनी सङ्घश्रीः स्वगुरु बुद्धश्रीवन्दकं प्रतिदिनं त्रिसन्ध्यं वन्दितुं गच्छति । तस्मिन् दिने उपरितनवेलायां यावन्न गतस्तावत्तेनाकारयित्वानीतः प्रणाममकुर्वन् वन्दकेन पृष्टः—प्रणामं किमिति न करोषीति । ततस्ते पूर्ववृत्तान्ते कथिते वन्दकेनोक्तम्-हा हा वञ्चितोऽसि । न चारणमुनयः सन्ति । भ्रान्तिरेव तथा जाता । स राजा इन्द्रजालेनेन्द्रजालं तवेदं दर्शितवान् । अतो मा त्वं बुद्धधर्मं त्यज । एवं मिथ्यात्वं सुतरां स नीतो भणितश्च प्रभाते त्वं राजसभायां मा गच्छेर्गतोऽपि दृढमिति मा कथमपि वादीः प्रभाते च राज्ञा सामन्तादीना चारणागमनकथां कथयता संवादार्थं सङ्घश्रीराकारितः । तेन चागतेन पृष्टे न दृष्टमित्युक्तं ततः स्फुटिते नयने सङ्घश्रियः ॥

(२०) दृष्टिभ्रष्टो भ्रष्टः ।

(दंसणभट्ठो भट्ठो ण हु भट्ठो होदि चरणभट्ठो हु ।
दंसणममुयंतस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे ॥७३६॥]

अस्य कथा— काम्पिल्यनगरे राजा ब्रह्मरथो, राज्ञी रामिल्या, तत्पुत्रो द्वादशश्चक्रवर्ती । एकदा विजयसेनसूपकारेण भोक्तुमुपविष्टस्यात्युष्णा क्षैरेयी दत्ता । भोक्तुमशक्तेन कोपात्तया दाहयित्वा मारितः । स च मृत्वा लवणसमुद्रे रत्नद्वीपे व्यन्तरदेवो भूत्वा विभङ्गज्ञानेन वैरं ज्ञात्वा परिव्राजकरूपेण गत्वातिमृष्टकेलकादि फलानि चक्रवर्तिने दत्तवान् । तानि भक्षित्वा स तेन पृष्टः । क्वेदृशानि फलानि सन्ति । समुद्रमध्ये मदीयमठवाटिकायामिति कथयित्वा तेनान्तः पुरादियुक्तं तं समुद्रमध्ये

समीप लाए। वन्दनादि की। राजा के वचन से सङ्घ श्री धर्मश्रवण कर श्रावक बना लिया गया। संघश्री अपने गुरु बुद्ध श्री की नायक बौद्धभिक्षु की वन्दना करने के लिए प्रतिदिन तीन सन्ध्याओं में जाता था। दोनों मुनियों के चले आने पर उस दिन सायंकाल तक जब तक नहीं गया तब बुलवाकर प्रणाम न करने पर उस बौद्धभिक्षु ने पूछा—प्रणाम क्यों नहीं करते हो? अनन्तर उसके द्वारा पूर्ववृत्तान्त कहे जाने पर बौद्ध-भिक्षु ने कहा—हाय, हाय, ठगे गए हो। चारणमुनि नहीं हैं। उस प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न हो गई। उस राजा ने तुम्हें इन्द्रजाल से इन्द्रजाल दिखला दिया। अतः तुम बौद्धधर्म को मत त्यागो। इस प्रकार वह शीघ्र ही मिथ्यात्व की ओर ले जाया गया और उससे कहा गया कि प्रातःकाल राजसभा में मत जाना यदि जाओ भी तो किसी प्रकार दृढता से निषेधकर देना। प्रातःकाल राजा ने सामन्तादि से चारणों के आगमन की कथा कहते हुए सहमति के लिए सङ्घश्री को बुलाया। उसके आने पर पूछे जाने पर उसने (संघ श्री ने) कहा—(चारण मुनि को) नही देखा, तब सङ्घ श्री के दोनों नेत्र फूट गए।

[२०] दर्शन से भ्रष्ट ही भ्रष्ट है

गाथार्थ—जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है, वही भ्रष्ट है, चरित्र से भ्रष्ट भ्रष्ट नही है। जिसका सम्यग्दर्शन नहीं छूटा है, उसका संसार में पतन नहीं होता है। (७३९)

इसकी कथा—काम्पिल्य नगर में राजा ब्रह्मरथ, रानी रामिल्या और असका पुत्र बारहवाँ चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त था। एक बार विजयसेन रसोइए ने भोजन के लिए बैठे हुए उसे अत्यन्त गर्म खीर दे दी। खाने में असमर्थ कोप के कारण उस खीर से जलाकर चक्रवर्ती ने रसोइए को मार दिया। वह मरकर लवण समुद्र में रत्नद्वीप में व्यन्तर-देव हुआ। विभङ्गावधिज्ञान से वैर जानकर परिव्राजक रूप में जाकर उसने अत्यन्त स्वादिष्ट केले आदि फलों को चक्रवर्ती को दिया। उन्हें खाकर चक्रवर्ती ने उस परिव्राजक से पूछा—ऐसे फल कहाँ हैं? समुद्र के मध्य मेरे मठ की वाटिका में, यह कहकर उसने अन्तःपुरादि सहित

नीत्वा मारणार्थमुपसर्गः कृतः । तं च पञ्चनमस्कारान् स्मरन्तं मारयितुं न शक्नोति । ततस्तेन प्रकटीभूय प्रविचार्य भणितो ब्रह्मदत्तः– रे त्वां मारयामि लग्नो यदि जिनशासनं नास्तीति भणित्वा परदर्शनं प्रशस्य पञ्चाक्षर नमस्कारान् लिखित्वा पादेन विनाशयति [सि ?] तदा न मारयामीति । तेनैतस्मिन् कृते जलमध्ये तेन स कारितः सप्तमनरके गतः ॥

[२१] नृपश्रेणिको ऽविरतः ।

[सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि अज्जेदि तित्थयरणामकम्मं ।
जादो खु सेणिगो आगमेसि अरुहो अविरदो वि ॥७४०॥

अस्य कथा– मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको, राज्ञी चेलिनी सम्यग्दृष्टिनी जिनागमे अतीव कुशला । एकदा सा श्रेणिकेन भणिता– विष्णुधर्म एव सर्वधर्मेभ्यः श्रेष्ठस्तत्रैव त्वया रतिः कर्तव्या । एतदाकर्ण्य तया भणितम्–देव, भगवतां भोजनं ददामीति । ततो निमन्त्र्यानीय महामण्डपे गौरवेण धृताः । तत्र च ते ध्यानेन स्थिताः । चेलिन्या पृष्टाः किं भवन्तो ध्याने स्थिताः कुर्वन्तीति । तैरुक्तम्– शरीर त्यक्त्वा आत्मानं विष्णुलोके नीत्वा परमानन्देन तिष्ठाम इति । ततस्तया तेषां ध्याने स्थितानां मण्डपः प्रज्वालितस्ते च नष्टाः । रुष्टेन राज्ञा सा भणिता- यदि भक्तिर्नास्ति तदा किमित्थमेते तव मारयितुं युक्ताः । तयोक्तम् देव, कुत्सितं शरीरं त्यक्त्वा एते विष्णुलोके गताः । एतस्मिन् शरीरे दग्धे तत्रैव तिष्ठन्तीत्युपकारार्थमेतेषां शरीरदाहः कर्तुमस्माभिरारब्धः । अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थं दृष्टान्तत्वेन तत्प्रसिद्धां कथामाह ॥ यथा वत्सदेशे कौशाम्बीनगर्यां प्रजापालो राजा, श्रेष्ठी सागरदत्ता, भार्या वसुमती

उसे समुद्र के बीच ले जाकर मारने के लिए उपसर्ग किया किन्तु पञ्चनमस्कार मन्त्र का स्मरण करते हुए उस चक्रवर्ती को मारने में समर्थ नहीं हुआ। अनन्तर उसने प्रकट होकर विचारकर ब्रह्मदत्त से कहा—रे मैं तुझे मारने में लग गया हूँ। यदि जिनशासन नहीं है, ऐसा कहकर दूसरे दर्शन की प्रशंसा कर पञ्चनमस्कार मन्त्र लिखकर पैर से मिटा दोगे तो नहीं मारूँगा। ब्रह्मदत्त के द्वारा यह किए जाने पर (अर्थात् पञ्चनमस्कार मन्त्र पैर के द्वारा मिटाए जाने पर) जल के बीच में उस (परिव्राजक वेष धारी) व्यन्तर के द्वारा मारा जाकर (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती) सातवें नरक में गया।

[२१] अविरत राजा श्रेणिक

गाथार्थ—सम्यक्त्व के शुद्ध होने पर व्रतरहित भी तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करता है। व्रतरहित भी श्रेणिक राजा सम्यक्त्व के प्रभाव से आगामी काल में अरहन्त होंगे। [७४०]

इसकी कथा—मगध देश के राजगृह नगर में राजा श्रेणिक तथा सम्यग्दष्टिनी रानी चेलनी थी, जो कि जिनशासन में अत्यन्त कुशल थी। एक बार उससे श्रेणिक ने कहा—विष्णुधर्म ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है, उसी में ही तुम्हें अनुराग करना चाहिए। यह सुनकर उसने कहा—देव! भगवानों को भोजन दूँगी। अनन्तर निमन्त्रित कर लाकर महामण्डप में गौरवपूर्वक रखा। वहाँ पर वे ध्यानपूर्वक स्थित हो गए। चेलिनी ने पूछा—आप लोग ध्यान में स्थित होकर क्या करते हैं? उन्होंने कहा—शरीर त्यागकर अपने आपको विष्णुलोक में ले जाकर परम आनन्द से बैठते हैं। अनन्तर रानी ने जब वे साधु ध्यान में स्थित थे, तब मण्डप में आग लगवा दी, वे साधु भाग गए। रुष्ट होकर राजा ने कहा—यदि भक्ति नही है तो क्या इस प्रकार मारना युक्त है? उसने कहा—देव! ये बुरे शरीर को त्यागकर विष्णुलोक में चले गए थे। इस शरीर के जल जाने पर वहीं रहते, अतः उपकार करने के लिए हम लोगों ने शरीर जलाना प्रारम्भ कर दिया। इसी अर्थ के समर्थन के लिए दृष्टान्त के रूप में वह प्रसिद्ध कथा कही—वत्सदेश में कौशाम्बी

। तत्रैवापरः श्रेष्ठी समुद्रदत्तो, भार्या समुद्रदत्ता, द्वयोरपि परमस्नेहेन तिष्ठतोर्वाचा निबन्धो जातः । यथावयोर्यौ पुत्रीपुत्रौ जायेते तयोरन्योन्य विवाहः कर्तव्यो येनावयोः सर्वदा स्नेहेन कालो गच्छतीति । ततः कतिपयदिनैः सागरदत्तेन वसुमत्यां वसुमित्रनामा पुत्रो जातः । स च दिवसे सर्पो रात्रौ दिव्य पुरुषो भवति । तथा समुद्रदत्तेन समुद्रदत्तायां नागदत्ता नाम पुत्री जाता । सा वसुमित्रेण परिणीता । स च रात्रौ दिव्य पुरुषरूप धृत्वा नागदत्तया सह भोगान् भङ्क्ते । एकदा समुद्रदत्तया नागदत्तां यौवनभराक्रान्तामतिशयेन रूपवतीं दृष्ट्वा दीर्घनिःश्वासं मुक्त्वा उक्तम् -हा कष्टतर विधेश्चेष्टितमीदृश्या मत्पुत्र्याः कीदृशो वरो जात इति । एतद्वचः श्रुत्वा नागदत्तयोक्त मा विसूरय [-मा विषाद गच्छ], मद्भर्ता रात्रौ पिट्टारके सर्पशरीर मुक्त्वा दिव्य पुरुषशरीर गृहीत्वा मया सह भोगान् भुङ्क्ते । एतच्छ्रुत्वा समुद्रदत्ता नागदत्तागृहे गत्वा रात्रौ वसुमित्रेण पिट्टारके सर्पशरीर मुक्त्वा दिव्यं पुरुषशरीर धृत्वा निर्गते पिट्टारके दग्धे वसुमित्रो रात्रिदिवमिष्टं कामभोगान् भुञ्जानः सुखेन स्थितः । एवं भगवच्छरीरे कुत्सिते दग्धे भगवन्तो विष्णुलोक एव सतत सुखं भुञ्जानास्तिष्ठन्तीत्यभिप्रायेण देव मया एतच्छरीरदाहः कर्तुमारब्ध इति । एतदाकर्ण्य चित्तस्थकोपे मौनेन स्थितः । एकदा पापर्द्धिगतेनातापनस्थं यशोधरमुनिमालोक्य मम पापर्द्धिविघ्नकारिण मारयामीति संचिन्त्य पञ्चशतकुक्कुरा मुक्ताः । ते च मुनेः प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतोत्तमाङ्गेन स्थिता. । ततोऽतिकोपाद् बाणा मुक्तास्ते पुष्पमाला जाताः । तस्मिन् समये तेन सप्तमनरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्बद्धम् । त चातिशयमालोक्य पूर्णयोगं तं मुनिं प्रणम्य तत्त्वमाकर्ण्य उपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा प्रथमनरके चतुरशीतिवर्षसहस्रमायुः कृतम् । चित्रगुप्तमुनिसमीपे क्षायोपशमिकं वर्धमानस्वामिनः पादमूले क्षायिकं

नगरी में राजा प्रजापाल, श्रेष्ठी सागरदत्त तथा भार्या वसुमती थी। वहीं पर दूसरा सेठ समुद्रदत्त, तथा उसकी भार्या समुद्रदत्ता थी। दोनों सेठ जब बैठे हुए थे तो बातचीत में तय हुआ। हम दोनों में से जिसके पुत्री, पुत्र होंगे, उन दोनों का एक दूसरे से विवाह कर देंगे, जिससे हम दोनों का स्नेहपूर्वक काल बीते। अनन्तर कुछ दिनों में सागरदत्त के वसुमती से वसुमित्र नामक पुत्र हुआ। वसुमित्र दिन में सांप और रात मे दिव्य पुरुष हो जाता थ समुद्रदत्त की समुद्रदत्ता से नागदत्ता नामक पुत्री हुई। उसे वसुमित्र ने विवाहा। वसुमित्र रात्रि में दिव्य पुरुष का रूप धारण कर नागदत्ता के साथ भोगों को भोगता था। एक बार समुद्रदत्ता ने यौवन के समूह से आक्रान्त अत्यधिक रूपवती नागदत्ता को देखकर लम्बी सांस छोड़कर कहा-हाय! विधाता की चेष्टा अत्यधिक कष्टमय है। ऐसी मेरी पुत्री का वर कैसा हुआ? यह वचन सुनकर नागदत्ता ने कहा–विषाद मत करो, मेरा पति रात्रि में पिटारे में सांप का शरीर छोड़कर दिव्य पुरुष के शरीर को धारण कर मेरे साथ भोग भोगता है। यह सुनकर समुद्रदत्ता ने नागदत्ता के घर जाकर रात्रि वसुमित्र के पिटारे में सर्प का शरीर छोड़कर दिव्य पुरुष शरीर धारण कर निकल जाने पर पिटारा जला दिया। वसुमित्र रात दिन मधुर भोगों का भोगता हुआ सुखपूर्वक रहने लगा। इसी प्रकार बुरे भगवच्छरीर के दग्ध हो जाने पर भगवान् विष्णुलोक मे ही निरन्तर सुखों को भोगते हुए रहे, इस अभिप्राय से महाराज! मैंने यह शरीर जलाना आरम्भ किया था। यह सुनकर चित्त में कोप होने के कारण महाराज मौन रहे। एक बार शिकार के लिए गए हुए महाराज ने आतापन योग मे स्थित यशोधर मुनि को देखकर मेरे शिकार में विघ्न डालने वाले को मारता हूँ, ऐसा विचारकर पाँच सौ कुत्ते छोड़े। वे मुनि की प्रदक्षिणा कर सिर झुकाकर स्थित हो गए तब अत्यन्त कोप के कारण राजा ने मुनि पर बाण छोड़े, जो कि पुष्पमाला हो गए। उस समय उन महाराजा श्रेणिक ने सातवें नरक में तेतीस सागर की आयु बाँधी। उस अतिशय को देखकर पूर्ण योग वाले उन मुनि को प्रणाम कर तत्त्व श्रवण कर उपशम सम्यक्त्व ग्रहण कर प्रथम नरक में चौरासी हजार वर्ष आयु कर ली। चित्रगुप्त मुनि के

सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनविशुद्धयादिभावनाभिस्तु तीर्थंकरत्वमुपार्जितम् ॥

(२२) जिनवन्दनादिभक्त्या परद्मरथ इति

[एक्का वि जिणे भत्ती णिद्दिट्ठा दुक्खलक्खणासयरी ।
मोक्खाणमणताण होदि हु सा कारण परमं ॥७३७॥]

अस्य कथा– मगधदेशे मिथिलानगर्यां राजा पद्मरथः पापर्द्धि निर्गतो ऽटव्यां शशकपृष्ठे अश्व वाहयन्नेकाकी कालगुहाभ्यन्तरे प्रविष्टः । तत्र दीप्ततपसं सुधर्ममुनिमालोक्योपशान्तो घोटकादवतीर्य प्रणम्य धर्मं श्रुत्वा सम्यक्त्वाणुव्रतान्यादाय पृष्टवान्– एवंविधं वक्तृत्वादिकं किं क्वाप्यन्यस्यास्ति । कथित मुनिना– चम्पायां वासुपूज्यतीर्थंकरदेवास्तिष्ठन्ति, तस्य मम च मेरुसर्षपयोरिव वक्तृत्वे दीप्तौ च महदन्तरम् । एतदाकर्ण्य परम--भक्त्या प्रभाते वन्दनार्थं तत्र गच्छतस्तस्य धन्वन्तरिविश्वानुलोमचरदेवाभ्यां तद्भक्तिपरीक्षणार्थं सर्पेण मार्गखण्डन छत्रभङ्गं नगरदाहाद्यपशकुनं कृत्वा वातधूलीपाषाणाग्निज्वालायित च कृत्वा हस्ती कर्दमे च मग्नो दर्शितः । ततो मन्त्र्यादिभिर्वार्यमाणो ऽपि न व्याघुटितः । वासुपूज्याय नम इत्युक्त्वा कर्दमे हस्तिनं प्रक्षिप्तवान् ततस्तुष्टाभ्यां ताभ्यां मायामुपसहृत्य प्रशस्य सर्वरुजापहारो योजनघोषा भेरी च दत्ता । स च वासुपूज्य तीर्थंकरदेवं वन्दित्वा गणधरदेवो जातः ॥

(२३) आराध्य नमस्कारमित्यादि ।

[अण्णाणी वि य गोवो आराधित्ता मदो णमोक्कारं ।
चंपाए सेट्ठिकुले जादो पत्तो य सामण्ण ॥७५६॥]

समीप क्षायोपशमिक और वर्द्धमान स्वमी के पादमूल में क्षायिक सम्य-क्त्व ग्रहणकर दर्शन विशुद्धयादि भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर पने का उपार्जन किया।

[२२] जिनेन्द्रभक्ति

गाथार्थ—जिनेन्द्र भगवान के प्रति की गई एक भक्ति भी लाखों दु:खों का नाश करने वाली कही गई है। वह अनन्त सुखों की परम-कारण है। (७३७)

मगधदेश की मिथिला नगरी में शिकार के लिए निकला हुआ राजा पद्मरथ जंगल में खरगोश के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ अकेला काल गुफा के भीतर प्रविष्ट हो गया। वहाँ पर दीप्त तपस्या वाले सुधर्म मुनि को देखकर शान्त हुआ घोड़े से उतरकर प्रणाम कर, धर्म सुनकर सम्यक्त्व तथा अणुव्रतों को ग्रहणकर उसने पूछा—इस प्रकार की वक्तृता आदि क्या किसी अन्य की भी है? मुनि ने कहा—चम्पानगरी में वासु-पूज्य तीर्थंकर देव विद्यमान हैं, उनमे और मुझमें मेरु और सरसों के समान वतृक्त्व और दीप्ति में महान् अन्तर है। यह सुनकर परम भक्ति से प्रातःकाल वन्दना के लिए वहाँ जाते हुए उसे धन्वन्तरि और विश्वा-नुलोम के जीव दो देवों ने उसकी भक्ति की परीक्षा के लिए सर्प के द्वारा मार्ग काटना, छत्र का टूट जाना, नगर दाह आदि अपशकुन कर वायु, धूलि, पत्थर और अग्नि को ज्वालामय (मार्ग को) कर कीचड़ में डूबा हुआ हाथी दिखाया। अनन्तर मन्त्री आदि के द्वारा निषेध किए जाने पर भी नहीं लौटा। वासुपूज्य के लिए नमस्कार हो, ऐसा कह-कर कीचड़ में हाथी को मार डाला। अनन्तर सन्तुष्ट हुए उन देवों ने माया समेटकर प्रशंसा कर समस्त रोगों का अपहरण कर लिया और योजन घोषा नामक भेरी दी। वह राजा वासुपूज्य तीर्थंकर देव की वन्दना कर गणधरदेव हो गया।

[२३] नमस्कार मन्त्र का प्रभाव

गाथार्थ—अज्ञानी ग्वाल ने पंचनमस्कार मन्त्र की आराधना कर मरण प्राप्त किया। पंचनमस्कार मन्त्र के प्रभाव से वह चम्पा में सेठ के कुल में उत्पन्न हुआ। अनन्तर उसने श्रामण्य(मुनिपना)पाया। (७५६)

अस्य कथा— अङ्गदेशे चम्पानगर्यां राजा नृवाहनः, श्रेष्ठी वृषभदासस्त द्गोपालेनैकदा गृहमागच्छता यदास्तमितो भाविकासी चारणमुनिर्दृष्टः । शीतकाले तुषारे पतति शिलातलस्थो निःप्रावरणः कथं रात्री गमयिष्य- तीति सचिन्त्य गृहे गत्वा पश्चिमरात्रौ महिषी गृहीत्वा शीघ्रं गतः । तं मुनिं समाधिस्थमालोक्य शरीरे पतितं तुषारं स्फेटयित्वा हस्तपादादिमर्दनं कृतवान् । आदित्योदये ध्यानमुपसंहृत्य आसनभव्यो ऽयमिति मत्वा 'णमो अरहंताणं' इति मन्त्रः कथित. । त च मन्त्रमुच्चार्य भगवानाकाशे गतस्त- न्मन्त्रस्योपरि तस्य महती श्रद्धा जातेति सर्वक्रियासु प्रथमे तमुच्चारयति । श्रेष्ठिना किमेव रे विप्लव करोषीति निवारितः । तेन च पूर्ववृत्तान्ते कथिते श्रेष्ठिनोक्त त्वमेव धन्यो येन तत्पादा दृष्टा. । एवमेकदा गङ्गा- मुत्तीर्य ता महिष्यो वल्लक्षेत्र भक्षितुं चलिताः । ता निवर्तयितुमुत्सुकेन नमस्कारमुच्चार्य जलमध्ये झम्पा दत्ता । अदृश्यकाष्ठेनोदरे विद्धः निदानेन मृत्वा अर्हद्दास्याः श्रेष्ठिन्याः पुत्रः सुदर्शननामा जातः । अतिरूपवान सकलविद्योपेतः सागरसेनासागरदत्तयो. पुत्री मनोरमा परिणीतवान् । एकदा वृषभदासश्रेष्ठी सुदर्शन निजपदे धृत्वा समाधिगुप्तिमुनिसमीपे मुनिरभूत् । सुदर्शनो राज्ञा पूजितः । सर्वजनप्रसिद्धो जातः । एकदा राज्ञा सहोद्यानक्रीडायां महाविभूत्यागत. । अभयमतिराज्ञ्या दृष्टः । विह्वलीभू- तया धात्री पृष्टा — को ऽयम् । तया कथितम् राजश्रेष्ठी सुदर्शनो ऽयम् । पुनस्तयोक्तम् — यद्यमु मे मेलयसि तदा जीवामि, अन्यथा म्रिये । धात्र्या चावश्य मेलयामीति समुद्धीर्य सा गृह नीता । कुम्भकारपार्श्वे च गत्वा पुरुषप्रमाणो मृत्तिकापुत्तलकः कारितः । वस्त्रेण वेष्टयित्वा राज्ञीपार्श्वे गृहीत्वा गच्छन्ती सा द्वारपालकैर्धृता ।

इसकी कथा– अङ्गदेश में चम्पा नगरी में राजा नृवाहन तथा सेठ वृषभदास था। सेठ के गोपाल ने एक बार घर आते हुए निश्चल, आत्मा को प्रकट करने वाले चरणमुनि देखे। शीतकाल में तुषार के गिरने पर शिलातल पर स्थित हो, बिना आच्छादन के कैसे रात्रि व्यतीत करेंगे, ऐसा सोचकर घर आकर पश्चिम रात्रि में भैंस को लेकर शीघ्र गया। उन मुनि को समाधिस्थ देखकर शरीर पर गिरे हुए तुषार को तितर वितरकर हाथ पैर आदि का मर्दन किया।

सूर्योदय होने पर ध्यान समेट कर [मुनि ने] 'यह आसन्नभव्य है' ऐसा मानकर णमोअरहंताण इत्यादि मन्त्र कहा। उस मन्त्र का उच्चारण कर भगवान आकाश (मार्ग) मे चले गए। मन्त्र के ऊपर उसकी बहुत श्रद्धा हो गई, अतः समस्त क्रियाओं के प्रारम्भ में उस मन्त्र का उच्चारण करने लगा। सेठ ने यह क्या उपद्रव करते हो, इस प्रकार रोका। उस ग्वाले ने जब पूर्ववृत्तान्त कहा तो सेठ ने कहा– तुम्ही धन्य हो जिससे उनके चरणों के दर्शन किये। इस प्रकार एक बार गङ्गा पाकर [उसकी] वे भैंसे एक प्रकार की फसल के खेत (वल्लक्षेत्र) मे भक्षण के लिए चली गईं। उन्हें रोकने को उत्सुक उस ग्वाले ने नमस्कार मन्त्र का उच्चारण कर जल के बीच छलांग लगाई। अदृश्य लकड़ी उसके पेट मे घुस गई। निदान से मर कर अर्हद्दास की सेठानी का सुदर्शन नामक पुत्र हुआ। अतिरूपवान् तथा समस्त विद्याओं से युक्त उसने सागरसेना और सागरदत्त की पुत्री मनोरमा को विवाहा। एक बार वृषभदास सेठ सुदर्शन को अपने पद पर अधिष्ठित कर समाधिगुप्त मुनि के समीप मुनि हो गया।

राजा ने सुदर्शन का सम्मान किया वह समस्त लोगों में प्रसिद्ध हो गया। एक बार राजा के साथ बड़ी विभूति से उद्यान क्रीड़ा के लिए आए। अभयमती रानी ने देखा। विह्वलीभूत होकर धाय से पूछा– यह कौन हैं? उसने कहा– यह राजश्रेष्ठी सुदर्शन है। पुनः रानी ने कहा– यदि इसे मुझसे मिलाओ तो जीवन धारण करूँगी, अन्यथा मरजाऊँगी। धाय अवश्य मिलाऊँगी, इस प्रकार धैर्य बंधाकर रानी को घर लाई तथा कुम्हार के पास जाकर पुरुष प्रमाण मिट्टी का पुतला बनवाया। वस्त्र से वेष्टितकर रानी के समीप ले

कौटिल्येन पुस्तलकं प्रक्षिप्य भग्नमालोक्य तया ते भणिताः- राज्ञी पुरुषविधानं करोति, अद्य बुभुक्षितास्य पूजां कारयिष्यति । अयं च भवद्भिर्भग्न अतो भवतः सर्वान्प्रभाते मारयिष्यामि । ततो भीतैस्तैरुक्तम् क्षमां कुरु । को ऽपि कदाचिदपि त्वां न वारयतीति । एवं द्वाररक्षकान्नियन्त्रित्वा अष्टम्यामर्धरात्रे श्मशाने कायोत्सर्गस्थः सुदर्शन आनीय तस्याः समर्पितः । आलिङ्गनादिविज्ञानैस्तया न क्षोभितः । पाणिपात्रे प्रभाते-निस्तीर्णोपसर्गः पारणं करिष्यामीति प्रतिज्ञामादाय काष्ठीभूय स्थितः । अभयमत्या आत्मानं नखैर्विदार्य श्रेष्ठिना बलाद्विध्वसिताहमिति प्रभाते फूत्कारः कृतः । एतदाकर्ण्य राज्ञा श्रेष्ठी श्मशाने नीत्वा मार्यतामित्युक्तम् तत्र राजपुरुषेण यो ऽसिस्तस्य मुक्तः स तस्य कण्ठे पुष्पमाला बभूव । देवैस्तस्य शीलप्रशंसां कृत्वा पुष्पवृष्ट्यादिकं कृतम् । नगरजनेन राज्ञा च क्षमा कारितः । सुकान्तपुत्रं निजपदे धृत्वा विमलवाहनमुनिपार्श्वे तपो गृहीत्वा केवलमुत्पाद्य मोक्षं गतः ॥

[२४] खण्डश्लोकैरित्यादि ।

[जइ दा खंडसिलोगेण जमो मरणादो फेडिदो राया ।

पत्तो य सुसामण्ण कि पुण जिणउत्तसुत्तेणं ॥७७२॥]

अस्य कथा- औढ्रविषये धर्मनगरे राजा यमः सर्वशास्त्रज्ञो, राज्ञी धनवती, पुत्रो गर्दभः, पुत्री कोणिका, अन्यासां राज्ञीनां पुत्राणां पञ्चशतानि, मन्त्री दीर्घनामा । निमित्तिना आदेशः कृतः-यः कोणिकां परिणेष्यति स सर्वभूमिपतिर्भविष्यति । ततो यमेन कोणिका भूमिगृहे प्रच्छन्ना धृता,

जाकर जाती हुई उसे द्वारपालों ने रोक लिया। कुटिलतापूर्वक पुतले को फेंककर टूटा हुआ देखकर धाय ने द्वारपालों से कहा–रानी पुरुष अनुष्ठान करती है, भूखी आज इसकी पूजा करायगी। इसे आप लोगों ने तोड़ दिया, अतः आप सभी को प्रातकाल मरवा डालूँगी। अनन्तर भयभीत होकर उन्होंने कहा–क्षमा करो। कोई कभी भी तुम्हें नहीं रोकेगा। इस प्रकार द्वार के रक्षकों को नियन्त्रित कर अष्टमी को आधीरात के समय कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित सुदर्शन को लाकर रानी को समर्पित कर दिया। आलिङ्गनादि विज्ञानों से वह क्षुब्ध नहीं कर सकी। उपसर्ग का निवारण हो जाने पर प्रातःकाल पाणिपात्र में आहार करूँगा, इस प्रकार प्रतिज्ञा लेकर काठ की तरह खड़े रहे। अभयमती ने अपने आपको नाखूनों से विदीर्ण कर सेठ ने बलात् मुझे नष्ट कर दिया, इस प्रकार प्रातःकाल जोर जोर से चिल्लाना प्रारम्भ किया। यह सुनकर राजा ने–सेठ को श्मसान में ले जाकर मार डालो, ऐसा कहा। वहाँ पर राजपुरुषों ने उसके ऊपर जो तलवार छोड़ी, वह उसके कण्ठ में फूलों की माला हो गई। देवों ने उसके शील की प्रशंसाकर फूलों की वर्षा आदि की। नगर के जनों तथा राजा ने सुदर्शन से क्षमा कराई। सुकान्त नामक पुत्र को अपने पद पर बैठाकर विमल वाहन मुनि के समीप तप ग्रहण कर, केवलज्ञान उत्पन्न कर सुदर्शन मोक्ष चले गए।

[२४] स्वाध्याय का प्रभाव

गाथार्थ–देखो! जब यम नामक राजा खण्डश्लोक के स्वाध्याय से मरण से भयभीत हो श्रमणपने को प्राप्त हुआ। जब जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित सूत्र का अध्ययन करने पर तो कहना ही क्या?

इसकी कथा–औढ़ देश में धर्म नगर में सब शास्त्रों का जानने वाला राजा यम, रानी धनवती, पुत्र गर्दभ, पुत्री कोणिका, अन्य रानियों के पाँच सौ पुत्र तथा दीर्घ नामक मन्त्री था। निमित्त ज्ञानी ने आदेश दिया कि जो कोणिका को विवाहेगा वह समस्त भूमि का स्वामी होगा। तब यम ने कोणिका को भूमिगृह में छिपाकर रख लिया,

प्रतिचारिका निवारिताः, न कस्यापि कथयन्ति ताम् । एकदा पञ्चशतयतिभिः सहागतस्य सुधर्ममुनेर्वन्दनार्थं जनं गच्छन्तमालोक्य यमो ज्ञानगर्वान्मुनीनां निन्दां कुर्वाणस्तत्समीपे गतः । मुनिज्ञाननिन्दाकरणात्तत्क्षणादेव बुद्धिनाशस्तस्य जातः । ततो निर्मदो मुनीन् प्रणम्य धर्ममाकर्ण्य गर्दभाय राज्यं दत्त्वा पञ्चशतपुत्रैः सह मुनिरभूत् । पुत्राः सर्वे सर्वश्रुतधरा जाताः यममुनेस्तु पञ्चनमस्कारमात्रमपि नायाति । गुरुणा गर्हितो लज्जितो गुरुं पृष्ट्वा तीर्थमेकाकी गतः । तत्र यवक्षेत्रमध्ये गर्दभरथेन गच्छत एकपुरुषस्य गर्दभा यवभक्षणार्थं नयन्ति पुनर्निक्षिपन्ति । तन्नित्थमवलोक्य यममुनिना खण्डश्लोकः कृतः –

कड्ढसि पुणु णिक्खेवसि रे गद्दहा जवं पेच्छसि खादिहु ।

अन्यदा तस्य मार्गे गच्छतो लोकः पुत्राणां क्रीडतां काष्ठकोणिका बिले पतिता । ते चातीव पश्यन्त इतस्ततो धावन्ति । यममुनिना तामवलोक्य खण्डश्लोकः कृतः –

अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे एत्थाणिबुड्डिया च्छिद्दे अच्छइ कं णिया ।

एकदा मण्डूकं भीतं पद्मिनीपत्रतिरोहितसर्पाभिमुखं गच्छन्तमालोक्य खण्डश्लोकः कृतः –

अम्हादो णत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुम्ह ।

एतैस्त्रिभिः खण्डश्लोकैः स्वाध्यायवन्दनादिकं कुर्वन्विहरमाणो धर्मनगरोद्याने कायोत्सर्गेण स्थितः । तमाकर्ण्य दीर्घगर्दभौ शङ्कितौ तं मारयितुं रात्रौ गतौ तत्पृष्ठस्थितौ । दीर्घस्तन्मारणार्थं पुनः पुनरसिमाकर्षति मुनिवधशङ्कितत्वाच्च हन्ति । तथा गर्दभोऽपि तस्मिन्प्रस्तावे मुनिना स्वाध्यायं गृह्णता प्रथमः खण्डश्लोकः पठितः । कड्ढसि पु–। तमाकर्ण्य गर्दभेन दीर्घो भणितः–लक्षितौ मुनिना ।

परिचारिकाओं को रोक दिया कि कोई भी उससे यह बात न कहे। एक बार पाँच सौ मुनियों के साथ आये हुये सुधर्म मुनि की वन्दना के लिये जाते हुये लोगों को देखकर यम ज्ञान के गर्व से मुनियों की निन्दा करता हुआ उसके समीप गया। मुनियों के ज्ञान की निन्दा करने से उसकी तत्क्षणबुद्धि नष्ट हो गयी। तब मदरहित होकर मुनियों को प्रणाम कर धर्म सुनकर गर्दभ को राज्य देकर पाँच सौ पुत्रों के साथ मुनि हो गया। समस्त पुत्र समस्त श्रुत के धारण करने वाले हो गए। यम मुनि को पञ्चनमस्कार मन्त्र भी नहीं आता था। गुरु के द्वारा निन्दित हो, लज्जित होकर गुरु से पूछकर अकेला तीर्थ को गया वहाँ पर जौ के खेत के बीच में गधे के रथ से जाते हुए एक पुरुष के गधे जौ खाने के लिए ले जाए जाते थे, पुनः चला दिये जाते थे उन्हें इस प्रकार देखकर यममुनि ने एक खण्डश्लोक बनाया।

काढ़ दिये जाते हो चला दिये जाते हो,
रे गदहो जौ को देख रहे हो खाओ ॥

एक बार उस मार्ग में जाते हुए लोगों के पुत्रों की खेलते काठ की कौणी बिल में गिर गई। वे अत्यधिक देखते हुए इधर-उधर दौडने लगे। यममुनि ने उन्हें देखकर एक खण्डश्लोक बनाया —

तुम लोग दूसरी जगह क्यों देखते हो,
यहीं देखो कौणी छेद [बिल] में विद्यमान है ॥

एक बार भयभीत मेढक को कमलिनी के पत्र में छिपे हुए साँप के सामने जाते देखकर एक खण्डश्लोक बनाया —

हमारे से भय नहीं है, दीर्घ (साँप से) तुम्हें भय दिखाई दे रहा है।

इन तीन खण्डश्लोकों से स्वाध्याय वन्दनादि कर विहार करते हुए धर्मनगर के उद्यान में कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित हो गए। उसे सुन कर दीर्घ और गर्दभ शङ्कित होकर उसे मारने के लिए रात्रि में गए और उसके पीछे खड़े हो गए। दीर्घ उन्हें मारने के लिए पुनः पुनः तलवार खींचता था, किन्तु मुनि के वध से शङ्कित होकर मारता नहीं था। गर्दभ ने भी उस अवसर पर मुनि से स्वाध्याय ग्रहण करते हुए प्रथम खण्डश्लोक पढ़ा— कड्डसि पु— — — —उसे सुनकर गर्दभ ने दीर्घ

द्वितीयखण्डश्लोकमाकर्ण्य भणित गर्दभेन-भो दीर्घ मुनिर्न राज्यार्थमागतः किं तु कोणिकां कथयितुमागतः । तृतीयश्लोकमाकर्ण्य गर्दभेन चिन्तितम् -दुष्टो ऽयं दीर्घो मां हन्तुमिच्छति । मुनिः स्नेहान्मम बुद्धिं दातुमागतः । ततो द्वावपि तौ मुनिं प्रणम्य धर्ममाकर्ण्य श्रावकौ जातौ । यममुनिरपि च वैराग्यं गतः श्रमणत्व विशिष्टं चारित्रं प्राप्य सर्वार्द्धियुक्तो जातः ॥

[२५] दृढशूर्प इत्यादि ।

[दढसुप्पो सूलहदो पंचणमोक्कारमेत्तसुदणाणे ।
उवजुत्तो कालगदो देवो जादो महड्ढीओ ॥७७३॥]

अस्य कथा- उज्जयिनीनगर्यां राजा धनपालो, राज्ञी धनवती । वसन्तोत्सवे तस्या दिव्यं हारमवलोक्य वसन्तसेनया गणिकया चिन्तितम्-किमनेन विना जीवितेनेति गृहे गत्वा स्थिता । सा रात्रौ दृढशूर्पचौरेणागत्य पृष्टा - किं प्रिये रुष्टासि । तयोक्तम्- तव न रुष्टा किं तु यदि राज्ञीहारं मे देहि तदा जीवामि नान्यथा । तां समुद्धीर्य रात्रौ हारं चोरयित्वा निर्गत । हारोद्द्योतेन यमपाशेन कोट्टपालेन धृतो राजवचनेन शूलेन प्रोतः प्रभाते धनदत्तश्रेष्ठी चैत्यालये गच्छन् तेन भणितः -दयालुस्त्वं तृषितस्य मे जलपानं देहि । तस्योपकारमिच्छता भणितं श्रेष्ठिना-द्वादशवर्षैरद्य मे गुरुणा महाविद्या दत्ता जलमानयतः सा मे विस्मरति । यद्यागतस्य ता मे कथयसि तदा आनयामि जलम् । तेनोक्तमेवं करोति । ततः श्रेष्ठी पञ्च नमस्कारांस्तस्य कथयित्वा गतः । दृढशूर्पस्तानुच्चारयन् स्मरन्मृत्वा सौधर्मे देवो जातः । हेरिकै राज्ञः कथितम्-देव, धनदत्तश्रेष्ठी चोरसमीपं गत्वा किंचिन्मन्त्रितवान् । श्रेष्ठीगृहे तस्य द्रव्यं तिष्ठतीति पर्यालोच्य राज्ञा श्रेष्ठिधरणकं गृहरक्षणं चाज्ञातम् ।

से कहा– हम दोनों को मुनि ने देख लिया। द्वितीय खण्डश्लोक सुनकर गर्दभ ने कहा– हे दीर्घ ! मुनि राज्य के लिए नहीं आए हैं, किन्तु कोणिका के लिए आए हैं। तृतीय श्लोक सुनकर गर्दभ ने सोचा–यह दुष्ट दीर्घ मुझे मारना चाहता है। मुनि स्नेह के कारण मुझे बुद्धि देने के लिए आए हैं। अनन्तर वे दोनों मुनि को प्रणाम कर धर्म सुन कर श्रावक हो गए। यम मुनि भी वैराग्य को प्राप्त होकर श्रमणत्व और विशिष्ट चरित्र को पाकर सात ऋद्धियों से युक्त हो गए।

[२५] पंचनमस्कार मन्त्र का प्रभाव

गाथार्थ– शूली से बेधा गया दृढसूर्प चोर पंचनमस्कारमात्र श्रुत ज्ञान में उपयुक्त हुआ, मृत्यु को प्राप्त होकर (पंच नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से) महान ऋद्धिवाला देव हुआ। [७७३]

इसकी कथा– उज्जयिनी नगरी में राजा धनपाल और रानी धन वती थी। वसन्तोत्सव में उसके दिव्यहार को देखकर वसन्तसेना गणिका ने सोचा- इसके बिना जीने से क्या लाभ ? इस प्रकार घर जाकर पड गई। उससे रात में दृढसूर्प नामक चोर ने आकर पूछा– प्रिये ! रुष्ट क्यों हो ? उसने कहा– तुमसे नहीं रुष्ट हूँ, किन्तु यदि मुझे रानी का हार दो तो मैं जीवित रहूँगी, अन्यथा नहीं। उसे धैर्य बंधा कर रात्रि में हार चुराकर (चोर) निकला। हार के उद्योत से यम-पाल नामक कोट्टपाल के द्वारा पकड़ा गया वह राजा की आज्ञा–नुसार शूली में पिरोया गया। प्रातः काल धनदत्त श्रेष्ठी जब चैत्या-लय में जा रहा था तो उसने कहा– तुम दयालु हो, प्यासे मुझे जलपान दो। उसका उपचार करने की इच्छा करते हुए सेठ ने कहा बारह वर्षों बाद गुरु ने आज मुझे महाविद्या दी है, वह विद्या यदि मैं जल लेने के लिए जाऊँगा तो भूल जाऊँगा। यदि आने पर उस विद्या को मुझसे कह दोगे तो जल लाता हूँ। चोर ने कहा– यही करता हूँ। अनन्तर सेठ उससे पंच नमस्कार मन्त्र कहकर चला गया। गुप्त चरों ने राजा से कहा– महाराज ! धनदत्त सेठ ने चोर के समीप जाकर कुछ कहा है। सेठ के घर में उसका कुछ धन रखा है, ऐसा विचारकर राजा ने श्रेष्ठी को पकड़ने तथा उसके घर की रखवाली

तेन देवेनागत्य प्रातिहार्यकरणार्थं श्रेष्ठिगृहद्वारे लकुटिधरपुरुषरूपं धृत्वा तद्गृहे प्रविशन्तो राजपुरुषाः निवारिताः तेन ते प्रविशन्तो लकुटेन मायया मारिताः । एवं वृत्तान्तमाकर्ण्य राज्ञा ये ऽन्ये बहवः प्रेषितास्ते ऽपि तथा मारिता । बहुलेन कोपाद्राजा स्वयमागतः । बलं समस्तं तथैव मारितम् । राजा नष्टः । तेन भणितो यदि श्रेष्ठिनः शरणं प्रविशसि तथा रक्षामि त्वां नान्यथेति । ततः श्रेष्ठिन्, रक्ष रक्षेति ब्रुवाणो राजा वसतिकायां श्रेष्ठिसमीपं गतः । श्रेष्ठिना च कस्त्वं किमर्थमेतत्कृतमिति पृष्टः । श्रेष्ठिनं प्रणम्य तेन कथितम्-सो ऽहं दृढशूर्पो भवत्प्रसादात् सौधर्मे महर्द्धिकदेवो जातः । तव प्रातिहार्यार्थमेतत्कृतम् ॥

(२६) चाण्डालः सुरपूजामित्यादि ।

[पाणो वि पाडिहेरं पत्तो छूढो वि सुंसुमारहदे ।
एक्केण अप्पकालक्कदेण ऽहिंसावदगुणेण ॥८२२॥]

अस्य कथा-वाराणसीनगर्यां राजा पाकशासनः सकलदेशं मरकं श्रुत्वा कार्तिकशुक्लाष्टम्या प्रभृत्यष्टदिनानि शान्त्यर्थं जीवामारिघोषणां कारितवान् । सप्तव्यसनाभिभूतेन राजश्रेष्ठिपुत्रेण धर्मनाम्ना उद्यानवने चरन् राजकीयमेढ्रको मारयित्वा पिशितोपयोगं कृत्वा अस्थीनि गर्तायां निक्षिप्य मृत्तिकया पिधाय गतः । मेंढ्रकादर्शने राज्ञा सर्वत्र चरा निरूपिताः । रात्रौ चोद्यानपालकेन स्वभार्याया मेंढ्रकमारणवृत्तान्तः कथितः । तं श्रुत्वा चरेण राज्ञः कथितम्-राज्ञा च श्रेष्ठिपुत्रस्य धर्मनाम्ना शूलारोहणं कार्यतामिति यमदण्डकोट्टपालो भणितः । तेन च शूलप्रदेशे तं

करने की आज्ञा दे दी। उस देव ने (चोर के जीव देव ने) आकर द्वारपाल का कार्य करने के लिए सेठ के घर के दरवाजे पर आकर दण्डधारी पुरुष का रूप धारण कर उस सेठ के घर में प्रवेश करते हुए राजपुरुषों को रोक दिया। प्रवेश करते हुए वे राजपुरुष उस दण्डधारी पुरुष द्वारा डण्डे से मायापूर्वक मारे गए। इस वृत्तान्त को सुनकर राजा ने जो दूसरे बहुत से राजपुरुष भेजे वे भी उसी प्रकार मार दिए गए। अत्यधिक क्रोध के कारण राजा स्वयं आया। राजा की समस्त सेना को उसी प्रकार मार दिया। राजा भाग गया। उस दण्डधारी पुरुष ने कहा– यदि सेठ की शरण में जाते हो तो तुम्हारी रक्षा करूँगा, अन्यथा नहीं। अनन्तर सेठ ! रक्षा करो, रक्षा करो, ऐसा कहता हुआ राजा वसतिका (जैन मन्दिर) में सेठ के समीप गया सेठ ने उस दण्ड धारी पुरुष से पूछा– तुम कौन हो ? तुमने ऐसा क्यों किया ? सेठ को प्रणाम कर उसने कहा– मैं वही दृढसूर्य नामक चोर हूँ। आपकी कृपा से सौधर्म स्वर्ग में महान् ऋद्धिवाला देव हूँ। तुम्हे बचाने के लिए यह किया है।

(२६) अहिंसाव्रत का प्रभाव

गाथार्थ– शिशुमार नामक तालाब में मारने के लिए फेका गया चाण्डल भी एक दिन के किए गए अहिंसाव्रत नामक गुण से देवों के द्वारा किए गए सिंहासनादिक प्रतिहार्यों को प्राप्त हुआ। [८२२]

इसकी कथा– वाराणसी नगरी में राजा पाकशासन ने समस्त देश में मरी का रोग सुनकर कार्तिक शुक्ल अष्टमी प्रभृति आठ दिनों में शान्ति के लिए जीवहिंसा के निषेध की घोषणा करा दी। सात-व्यसनों से अभिभूत राजश्रेष्ठी का धर्म नामक पुत्र उद्यान के वन में विचरण करते हुए राजकीय मेंढा मारकर मांस का उपयोग कर हड्डियों को गड्ढे में डालकर मिट्टी के द्वारा गड्ढे को ढककर चला गया। मेंढे के दिखाई न देने पर राजा ने सब जगह गुप्तचर भेजे रात में उद्यानपाल ने अपनी पत्नी से मेंढे के मारने के वृत्तान्त को कहा– उसे सुनकर गुप्तचर ने राजा से कह दिया। राजा ने सेठ के धर्म नामक पुत्र को शूली पर चढ़ा दे, इस प्रकार यमदण्ड नामक कोट्टपाल से कहा कोट्टपाल ने शूली लगने के स्थान में उसे लाकर

नीत्वा यमपालमातङ्गस्तन्मारणार्थमाकारितः । तेन च सर्वौषधीमुनि-समीपे धर्ममाकर्ण्य चतुर्दश्यां जीवं न मारयिष्यामीति व्रतं गृहीतम् । ततो ग्रामं गत इति कथय त्वमिति भार्यां भणित्वा गृहकोणे संलग्य स्थितः । तया तथा कथिते बहुसुवर्णयुक्तचोरमारणे स पापोऽद्य गत इति यमदण्डवचनात्तया हस्तसंज्ञया दर्शितः । निःसारितो ऽपि वदत्यद्य न मारयामि । राज्ञो ऽप्यग्रे नीतो देवाद्य न मारयामि चतुर्दश्यां जीवघाते ममावग्रहो ऽस्तीति वदति । ततः कुपितेन राज्ञोक्तं द्वावपि सुसुमार-ह्रदि निक्षिपेति । यमदण्डेन द्वावपि तत्र निक्षिप्तौ धर्मः सुसुमारैर्भक्षितः यमपालो व्रतमाहात्म्याज्जलदेवताभिः सिंहासने धृत्वा पूजितः ॥

[२७] अनृतवचनेन नरकं वसुश्च गत इत्यादि ।

[पावस्सागमदारं असच्चवयणं भणंति हु जिणिंदा ।
हिदएण अपावो वि हु मोसेण गदो वसू णिरयं ॥८४६॥]

अस्य कथा—अयोध्यायां राजा जयो, राज्ञी सुरक्ता, तत्पुत्रो वसुः, उपाध्यायः क्षीरकदम्बस्तद्भार्या स्वस्तिमती, पुत्रः पर्वतो, वैदेशिको नारदश्च त्रयोऽपि क्षीरकदम्बाचार्यपार्श्वे पठन्ति । पर्वतस्य विशिष्टपरि-ज्ञानादर्शनात् स्वस्तिमती रुष्टः निजपुत्रं न पाठयसीति नित्यं भणति । उपाध्यायेनोक्तम्—जडो ऽयम् । तथा हि कपर्दकान् दत्त्वा त्रयोऽपि छात्रा भणिताः । कपर्दकैश्चणकान् भक्षित्वा कपर्दकांश्च गृहीत्वा आगच्छथ । पर्वतः कपर्दकैश्चणकान् भक्षित्वा रिक्तो गृहमागतः । वसुनारदौ चार्घ-पृच्छामिषेण बहुस्थानेषु चणकान् भक्षित्वा कपर्दकैः सहितावागतौ ।

यमपाल चाण्डाल को उसे मारने के लिए बुलवाया। यमपाल चाण्डाल ने सर्वोषधि मुनि के समीप धर्म सुनकर चतुर्दशी में जीवों को नहीं मारूँगा, इस प्रकार व्रत ग्रहण किया था। अनन्तर भार्या से '(यमपाल चाण्डाल) गाँव चला गया है, ऐसा तुम कह देना, इस प्रकार कहकर घर के कोने में छिपकर खड़ा हो गया। भार्या के वैसा कहने पर 'बहुत सोने से युक्त चोर के मारने के अवसर पर वह पापी आज चला गया, इस प्रकार यमदण्ड के वचन कहने पर उस भार्या ने हाथ के इशारे से यमपाल को दिखला दिया। निकाले जाने पर भी बोलने लगा— आज नही मारूँगा, राजा के आगे भी ले जाने पर यही कहने लगा कि महाराज आज नहीं मारूँगा, क्योंकि चतुर्दशी के दिन जीव हिंसा न करने का मेरा नियम है। अनन्तर कुपित होकर राजा ने कहा दोनों का ही सुंसुमार नामक तालाब में फेंक दो। यमदण्ड ने दोनों को ही वहाँ पर फेंक दिया। धर्म को सुंसुमारों ने खा लिया। यमपाल व्रत के माहात्म्य से जल देवियों के द्वारा सिंहासन पर बैठाकर पूजित किया गया।

(२७) झूठ का दुष्परिणाम

गाथार्थ— जिनेन्द्र भगवान असत्यवचन को पाप के आने का द्वार कहते हैं। देखो! हृदय में पापरहित भी वसु नामक राजा झूठ बोलने से नरक गया। [८४१]

इसकी कथा— अयोध्या नगरी में राजा जय, रानी सुरक्ता, उसका पुत्र वसु, उपाध्याय क्षीरकदम्ब, उसकी भार्या स्वस्तिमती, पुत्र पर्वत तथा वैदेशिक नारद थे। राजपुत्र वसु, उपाध्यायपुत्र पर्वत तथा वैदेशिक नारद ये तीनों क्षीरकदम्बाचार्य के पास पढ़ते थे। पर्वत का विशिष्ट परिज्ञान न देखकर स्वस्तिमती रुष्ट हो गई। उपाध्याय से वह प्रतिदिन कहती थी कि अपने पुत्र को नहीं पढ़ाते हो। उपाध्याय ने कहा— यह जड़ है। (उन्होंने) कौड़ियाँ देकर तीनों छात्रों से कहा कौड़ियों से चना खाकर तथा कौड़ियाँ लेकर आओ। पर्वत कौड़ियों से चना खाकर खाली घर आ गया। वसु और नारद मूल्य पूछने के बहाने बहुत से स्थानों में चना खाकर कौड़ियों के साथ घर आ गये

तथा एकान्तो यत्र कोऽपि न पश्यति तत्र छागवधप्रेषणे गर्तायां छागं वधित्वापर्वत आगतः। वसुनरदौ सर्वत्र यमादित्यादयश्च पश्यन्तीति मत्वा जीवन्तौ छागौ गृहीत्वा आगतौ। ततो दृष्टं पर्वतजडत्वमित्युपाध्यायेन भणिता। एकदा कृतापराधो वसुरुपाध्यायेन यष्ट्या कुट्यमानः स्वस्तिमत्या रक्षितः। तेन च वरो दत्तस्ततस्तयोक्तम्—यदा याचयिष्-यामि तदा दद्यास्त्वम्। एकदाटव्यां चत्वारो ऽपि बृहदारण्यकशास्त्र पठन्तः स्थिताः : तत्रैव प्रदेशे स्वाध्यायं गृहीतुं चारणमुनी अवतीर्णौ। लघुमुनिनोक्तम्— भगवान्, पश्य क्षेत्रशुध्द्या एते पठन्ति। भगवतोक्तमेतेषु द्वौ नरकगामिनौ। तद्वचनमाकर्ण्य क्षीरकदम्बश्छात्रान् गृहं प्रेष्य मुनिप्र-णम्य कौ नरकगामिनाविति मुनिं पृष्ट्वा वसु पर्वताविति विरक्तबुद्धिरसौ मुनिर्जातः। पर्वतः पञ्चशतछात्राणामुपाध्यायो जातः नारदो देशान्तरं गतः। जयो वसवे राज्यं दत्वा मुनिरभूत्। एकदाटव्यामेकेन पापर्द्धिकेन मृगस्य बाणो मुक्तः। आकाशस्फुटिके लगित्वा व्याघुटितः। किं कारणमिति वितर्क्य तत्र गत्वा तं स्पृष्ट्वा तं ज्ञात्वा वसोः कथितम्। वसुश्च प्रच्छन्न-वृत्त्या तं गृहमानयत् विष्टरं कृत्वा सभायां तस्योपरि गगने स्थितः। एकदा नारदः पर्वतपार्श्वे आगतः। तत्र प्रस्तावे अजैर्यष्टव्यमिति वाक्यम् अजैश्-छागैरिति व्याख्यातं पर्वतेन। नारदेनोक्तम् — अजैस्त्रिवर्षैर्धान्यैरित्युपा-ध्यायव्याख्यातम्। विवादे सति जिह्वाच्छेदप्रतिज्ञां कृत्वा वसुवचनं प्रमाणी-कृत्य स्थितौ तच्छ्रुत्वा स्वस्तिमत्या भवतोर्भणितो विरूपकं त्वया व्याख्-यातं तव पिता सदा त्रिवार्षिकधान्यैरेव यागं करोति। ततस्तया गत्वा वसुर्वरं प्रार्थितः। पर्वतवचनं त्वया प्रमाणीकर्तव्यमिति। प्रभाते द्वयोर्वच-नमाकर्ण्य उपाध्यायव्याख्यानं स्मरतापि पर्वतवचनं प्रमाणीकृतम्।

तथा एकान्त में जहाँ पर कोई न देखे वहाँ पर बकरे का वध करके आओ, ऐसा कहकर भेजने पर गढ्ढे में बकरे को मारकर पर्वत आ गया। वसु और नारद, सब जब जगह यम और आदित्यादि देखते हैं, ऐसा मानकर जीते हुए बकरे को लाकर आ गये। अनन्तर उपाध्याय ने कहा— पर्वत की मूर्खता देखली? एक बार जिसने अपराध किया है। ऐसा वसु उपाध्याय के द्वारा छड़ी से पीटा जाता हुआ स्वस्तिमती के द्वारा बचा लिया गया। वसु ने वर दिया। स्वस्ति-ने कहा— जब मांगूँगी तब तुम देना।

एक बार जंगल में चारों बृहदारण्यक शास्त्र पढ़ते हुए स्थित थे उसी स्थान पर स्वाध्याय करने के लिए दो चरणमुनि उतरे। छोटे मुनि ने कहा— भगवन्! देखो, क्षेम शुद्धि से ये पढ़ते हैं। भगवान् ने कहा—इनमें से दो नरक जायेंगे। उसके वचन सुनकर क्षीरकदम्ब ने छात्रों को घर भेजकर मुनि को प्रणाम कर कौन दोनों नरकगामी हैं इसप्रकार मुनि से पूछा— वसु और पर्वत नरकगामी हैं, ऐसा जान-कर विरक्त बुद्धि वाले क्षीरकदम्बक मुनि हो गए। पर्वत पाँच सौ छात्रों का उपाध्याय हो गया। नारद दूसरे देश को गया। अथ राजा वसु को राज्य देकर मुनि हो गये। एक बार जंगल में एक बहेलिये ने मृग के ऊपर बाण छोड़ा। आकाशमय स्फटिक पर लगकर लौट आया। क्या कारण है, यह सोचकर वहाँ जाकर, उस स्फटिक को छूकर, उसकी जानकारी कर उस बहेलिए ने वसु से कहा— वसु प्रच्छन्न रूप से उसे घर मँगाकर सिंहासन बनवाकर सभा में उसके ऊपर आकाश में बैठा। एक बार नारद पर्वत के पास आया। उस अवसर पर अजैर्यष्टव्यम् इस वाक्य का अर्थ: अर्थात् बकरों से यज्ञ करना चाहिए, इस प्रकार पर्वत ने व्याख्या की। नारद ने कहा— अज का अर्थ होता है— तीन वर्ष पुराने धान्य, इस प्रकार उपाध्याय ने व्याख्या की। विवाद होने जो झूठा सिद्ध होगा उसकी जीभ छेद दी जायगी, इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वसु के वचनों को प्रमाण मानकर स्थित हुए। उसे सुनकर स्वस्तिमती ने पर्वत से कहा— तुमने बुरी व्याख्या की, तुम्हारे पिता, सदा तीन वर्ष पुराने धान्यों से ही यज्ञ करते थे। अनन्तर स्वस्तिमती ने जाकर वसु से वर माँगा, तुम पर्वत के वचनों को प्रमाणित कर देना। प्रातः वसु ने दोनों के वचनों सुनकर

ततः सिंहासनात्पतितो नारदेनोपाध्यायार्थमद्यापि भणेति भणितो ऽपि पर्वतवचनं प्रमाणमिति भणति। ततो भूमौ प्रविष्टो मृत्वा सप्तमनरके गतः।

(२८) परधनहरणमनीषः श्रीभूतिरित्यादि

(परदव्वहरणबुद्धि सिरिभूदी णयरमज्झयारम्मि।
होदूण हदो पहदो पत्तो सो दीहसंसारं ॥ ८७४ ॥)

अस्य कथा– सिंहपुरे राजा सिंहसेनो, राज्ञी रामदत्ता, पुरोहितः श्रीभूतिः सर्वलोकविश्वसनीयः। पद्मषण्डपत्तने वणिक् सुमित्रो, भार्या सुमित्रो, पुत्रः समुद्रदत्तः। तौ वाणिज्येन सिंहपुरमायातौ पञ्च रत्नानि श्रीभूतिपार्श्वे धृत्वा तातपत्नी निजभार्यां च धृत्वा रत्नद्वीपं गतौ। द्रव्य मुपार्ज्य व्याघुटितौ समुद्रमध्ये स्फुटिते प्रवहणे सुमित्रादयो मृताः। समुद्रदत्तः कथमपि सिंहपुरनगरमागतो जननीभार्ययोर्मिलित्वा श्रीभूतिपार्श्वे रत्नार्थी गतः। तेन च तमागच्छन्तमालोक्य लोभ गतेन पार्श्वस्थलोकानां कथितम्–पुरुषो ऽयं स्फुटितप्रवहणेग्रंहिलः मां प्रणम्य रत्नानि याचिष्यति। तथैव याचनं कुर्वन्नसौ लोकानां प्रत्ययं पूरयित्वा ग्रहिलो भणित्वा निस्सारितः। श्रीभूतिना मम रत्नानि गृहीतानीति सर्वत्र पूत्कारं कृत्वा राजकुल समीपस्थः पश्चिमरात्रौ पूत्कारं करोतीति षण्मासेषु गतेषु राज्ञ्या राजा भणितः –नायं ग्रहिलो नित्यमेतादृशवचनोच्चारणात्। ततो राज्ञा स एकान्ते पृष्टस्तेन च पूर्ववृत्तान्तः कथितः। ततो रत्नग्रहणोपायो रचितः।

उपाध्याय के व्याख्यान का स्मरण होने पर भी पर्वत के वचनों को प्रमाणित कर दिया। अनन्तर सिंहासन से गिर पड़ने पर नारद के द्वारा उपाध्याय के अर्थ को अब भी कहो, इस प्रकार कहने पर भी (वसु) पर्वत के वचन प्रमाण हैं, यह कहने लगा। तब भूमि में प्रविष्ट हो मरकर सातवें नरक गया।

[२८] दूसरे का धन हरण करने का दुष्परिणाम

गाथार्थ दूसरे का धन हरण करने की जिसकी बुद्धि है, ऐसा श्रीभूति नामक राजा का पुरोहित नगर के मध्य नाना वेदनाओं से ताडित तथा अनेक प्रकार के दुःखों से मरकर दीर्घ संसार में परिभ्रमण को प्राप्त हुआ। (८७४)

इसकी कथा—सिंहपुर में राजा सिंहसेन, रानी रामदत्ता तथा समस्त लोगों के द्वारा विश्वास करने योग्य श्रीभूति पुरोहित था। पद्मखण्डपत्तन में वणिकसुमित्र, भार्या सुमित्रा तथा पुत्र समुद्रदत्त था। वे दोनों व्यापार से सिंहपुर आए। पाँच रत्नों को श्रीभूति के समीप रखकर तात पत्नी तथा निजभार्या को ठहराकर रत्नद्वीप गए। द्रव्य उपार्जन कर उन दोनों के लौटने पर समुद्र के मध्य जहाज टूट जाने पर सुमित्रादि मर गए। समुद्रदत्त किसी प्रकार सिंहपुर नगर आया। जननी तथा पत्नी से मिलकर रत्न माँगने के लिए श्रीभूति के पास गया। पुरोहित ने उसे आते देखकर लोभ को प्राप्त होकर समीपवर्ती लोगों से कहा— यह कोई पुरुष जहाज टूट जाने से पागल हुआ मुझे प्रमाण कर रत्न माँगेगा। उसके उसी प्रकार माँगने पर लोगों के विश्वास की पूर्तिकर पुरोहित ने उसे पागल कहकर घर से निकाल दिया। श्रीभूति 'मेरे रत्न ले लिए', इस प्रकार सब जगह जोर-जोर से आवाज कर राजकुल के समीप रात्रि के अंतिम प्रहर आवाज करने लगा। छह माह बीत जाने पर रानी ने राजा से कहा— यह पागल नहीं है: क्योंकि रोज इसी प्रकार वचनों का उच्चारण करता है। अनन्तर राजा ने उससे एकान्त में पूछा-पूछा— उसने पूर्व का समस्त वृत्तान्त कह दिया। तब रत्नों को ग्रहण

सिंहसेनशिवभूत्योर्यू ते रामदत्तया जयपाली तया शिवभूतिर्भोजनं पृष्टस्तेन कथितं अतस्तदेव साभिज्ञानं कृत्वा रामदत्तया निपुणमतिविलासिनी शिवभूतिभार्यायाः पार्श्वे या ग्रहिलरत्नानि याचितु प्रेषिता। तया च न दत्तानि। पुनर्नामाङ्कितमुद्रिकासाभिज्ञानेन याचितानि। तथापि न दत्तानि। पुनर्यज्ञोपवीताभिज्ञानेन याचितानि ततो भीतया समर्पितानि। तया राज्ञो दर्शितानि। तेन च निजबहुरत्नानां मध्ये क्षिप्त्वा ग्रहिलो भणितो निजरत्नानि गृहाणेति। तेन गृहीतानि। ततो रुष्टेन राज्ञा गर्दभारोहणादिना शिवभूतिर्नगरमध्ये हृतविप्रहृतीकृतो मृत्वा दीर्घसंसारी जातः॥

(२६) वारत्रिकोऽपि कर्म व्यधादित्यादि

[णीचं पि कुणदि कम्मं कुलपुत्तदुगुंछियं विगदमाणो।
वारत्तिगो वि कम्म अकासि जह लंघिया हेदुं॥ १०६॥]

अस्य कथा— अहिच्छत्र नगरे ब्राह्मणः शिवभूतिर्भार्या वसुशर्मा. पुत्रौ सोमशर्मशिवशर्मौ च। वेदं पठता ज्येष्ठेन कनिष्ठो वरत्रयाहतः। तत्प्रभृति शिवशर्मणो वारत्रिक इति नाम जातम्। तेन नाम्ना आहूयमानो निर्विण्णो निर्गत्य श्रावस्त्यां दमधराचार्यपार्श्वे मुनिर्भूत्वा महाटव्यां मासोपवासादिविधिना तपः करोति। एकदा सागरदत्तसार्थवाहस्याग्रे गङ्गदत्तनटपुत्रीं मदनवेगां नृत्यन्तीमालोक्य चर्यां गतो भग्नः। तां परिणीय द्वादशवर्षैस्तद्विज्ञानेऽत्यतिदक्षो भूत्वा राजगृहनगरे श्रेणिकस्याग्रे वंशोपरि खड्गपञ्जरे तया सह नृत्यं कुर्वन्नाकाशे विद्याधरयुगलमालोक्य जातिस्मरो जातः। विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां प्रियंकरनगरे राजा प्रियंकरो राज्ञी प्रभावती तत्पुत्रो ऽहं पूर्वभवे प्रियंकरनामा सर्वविद्यापारगः।

करने का उपाय बनाया। सिंहसेन और शिवभूति के जुए में रामदत्ता ने शिवभूति से भोजन पूछा। उसने कह दिया। अतः उसे ही पहिचान बनाकर निपुण बुद्धि वाली वेश्या को रामदत्ता ने शिवभूति की पत्नी के पास पागल के रत्नों को मांगने के लिए भेजा। उसने नहीं दिया। पुनः नामाङ्कित मुद्रा की पहिचान के द्वारा रत्न माँगे तो भी नहीं दिए। पुनः यज्ञोपवीत की पहिचान के द्वारा रत्न माँगे, तब भयभीत होकर समर्पित कर दिए। उसने (रानी ने) राजा को दिखलाए। राजा ने अपने बहुत से रत्नों के बीच डालकर पागल से कहा कि अपने रत्न ले लो। उसने ले लिए। अनन्तर राजा ने रुष्ट होकर गधे पर चढ़ाना आदि से शिवभूति को नगर के मध्य मरवाया पिटवाया। मरकर शिवभूति दीर्घसंसारी हुआ।

[२६] नीच करनी

वारत्रिकोऽपि कर्म व्यधादित्यादि

गाथार्थ—मानरहित नीच पुरुष कुलपुत्रों के द्वारा निन्दित कर्म को करता है। जैसे अकुलीन स्त्री के लिए वारत्रक नामक मति ने नीच कर्म किया। [६०६]

इसकी कथा—अहिच्छत्र नगर में ब्राह्मण शिवभूति, भार्या वसुशर्मा तथा दो पुत्र—सोमशर्मा तथा शिवशर्मा थे। वेद पढ़ते हुए ज्येष्ठ से छोटे ने तीन बार चोट खाई। उस समय से शिवशर्मा का वारत्रिक यह नाम हो गया। उस नाम से पुकारा जाता हुआ खिन्न हो निकलकर श्रावस्ती में दमधराचार्य के समीप मुनि होकर महान् जंगल में मासोपवास आदि विधि से तप करने लगा। एक बार सागरदत्त व्यापारी के आगे गरुडदत्त नट की पुत्री मदनवेगा को नाचती हुई देखकर चर्या को गया हुआ भग्न हो गया। उसे विवाहकर बारह वर्ष में उसके विज्ञान में भी अत्यधिक दक्ष होकर राजगृह नगर में श्रेणिक के आगे बाँस के ऊपर तलवार के पिंजड़े में उस स्त्री के साथ नृत्य करते हुए आकाश में विद्याधर के जोड़े को देखकर उसे पूर्व जन्म का स्मरण हो गया कि मैं विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में प्रियंकर नगर में राजा प्रियंकर और रानी प्रभावती का समस्त विद्याओं का ज्ञाता

ततः भोगं भुक्त्वा तपो गृहीत्वा सौधर्मे देवो भूत्वा च्युत्वैष जातः। इयं च मम विद्याधरी देवी च भार्यासीदिति सापि तत्रैव जातिस्मरी जाता ततस्तयोर्विद्याधरभवविद्याः समायाताः तास्त्यक्त्वा वारत्रिको दमधर — चार्यसमीपे तपो गृहीत्वा केवलमुत्पाद्य निर्वाणं गतः॥

(३०) पादाङ्गुष्ठमसन्तं गणिकायां गौर संदीप इत्यादि।

बारस वासाणि वि संवसित्तु कामादुरो य णासीय।
पादंगुटुमसंतं गणियाए गोरसंदीवो॥ ६१५॥]

अस्य कथा— कुलालदेशे श्रावस्तीनगर्यां राजा दीपायनः। तेन चैत्रोत्सवे उद्याने मञ्जरिताम्रवृक्षमालोक्य एका मञ्जरी कर्णपूरीकृता। तमालोक्य लोकैः कर्णपूरं कुर्वद्भिश्च आम्रवृक्षो निर्मूल नाशितः। व्याघुटता राज्ञा तस्य नाशमालोक्य सर्वमनित्यमिति चिन्तयित्वा उदीर्णबलवाहन— पुत्राय राज्यं दत्त्वा उत्तरभूतिमुनिसमीपे तपो गृहीत्वा गुरुणा सहोज्ज- यिन्यां गतः। उद्याने कोकिलालापं श्रुत्वोत्तरमुनिनोक्तम्—यो मुनिरद्योज्जयिन्यां चर्यायां यास्यति तस्य व्रतभङ्गो भविष्यति। तत उपोषिताः केचित्केचिदन्यत्र चर्यार्थं गताः। दीपायनमुनिस्तु गिरौ आतपेन योगं कृत्वा गुरुवचनमश्रुत्वा उज्जयिन्यां चर्यायां प्रविष्टः। तत्रोदीर्णबलवाहन- भयेन खातिकायां खन्यमानायां राजाज्ञया निःसरत्प्रविशत्सर्वलोकः खातिकां खन्यतोऽसावपि भणितः—भट्टारक, खातिकायां घातं देहि। स चागच्छन् दास्यामीत्युक्त्वा अग्रे गतः।

प्रियंकर पुत्र था। अनन्तर भोगों को भोगकर तप ग्रहण कर सौधर्म स्वर्ग में देव होकर वहाँ से च्युत होकर यह ही गया हूँ। और यह विद्याधारी देवी मेरी स्त्री थी। उस विद्याधारी को भी वहीं पूर्वजन्म की स्मृति उत्पन्न हो गई। अनन्तर उन दोनों के पास विद्याधर के भव की विद्यायें आ गईं। उन विद्याओं को त्यागकर बारन्त्रिक दमधराचार्य के समीप तप ग्रहण कर केवल ज्ञान उत्पन्न कर निर्वाण को प्राप्त हो गए।

(३०) कामान्धता

पादाङ्गुष्ठमसन्त गणिकायां गौर संदीप इत्यादि।

गाथार्थ-गौरसदीप नामक कामी बारह वर्ष तक गणिका के साथ निवास करने पर भी यह नहीं जान सका कि गणिका के पैर में अँगूठा नहीं है। (६१५)

इसकी कथा—कुलालदेश में श्रावस्ती नगरी में राजा दीपायन था। उसने चैत्रोत्सव के समय उद्यान में मञ्जरित आम के वृक्ष को देखकर एक मंजरी को कान का आभूषण बना लिया। उसे देखकर कान का आभूषण बनाते हुए सब लोगों ने आम के वृक्ष का निर्मूल विनाश कर दिया। लौटते समय राजा उसके नाश को देखकर, सब अनित्य है, ऐसा सोचकर उदीर्ण बल वाहन पुत्र को राज्य देकर उत्तर मुनि के समीप तप ग्रहण कर गुरु के साथ उज्जयिनी चला गया उद्यान में कोयल की सुन्दर आवाज सुनकर उत्तरमुनि ने कहा—जो मुनि आज उज्जयिनी में चर्या के लिए जायगा, उसका व्रत भङ्ग होगा। तब कुछ लोगों ने उपवास किया, कुछ लोग चर्या के लिए दूसरी जगह गए। दीपायन मुनि पर्वत पर आतापन योग कर गुरु के वचन न सुनकर चर्या के लिए उज्जयिनी में प्रविष्ट हुए। वहाँ पर उदीर्णबलवाहन के भय से खाई खोदते समय राजा की आज्ञा से निकलते प्रवेश करते हुए समस्त लोगों ने खाई खोदते हुए इससे भी कहा—भट्टारक! खातिका को आधार पहुँचाओ। वह आकर आघात पहुँचाऊँगा ऐसा कहकर आगे चले गए।

अथ वाराणसीनगर्यां राजा श्रीधर्मो, राज्ञी श्रीमती, पुत्री श्रीकान्ता सा उज्जयिन्यां जितशत्रुणा परिणीता । तस्याः कायसुन्दरी विलासिनी श्रीधर्मराजेन दत्ता । सा जितशत्रोः प्राणप्रिया जाता । श्रीकान्तया पितुः कथितम् –पित्रा च संकेतिनापि तेन कायसुन्दर्याः पादाङ्गुष्ठे नखे विषं संचारितम् । तेन दुर्गन्धो नाडीव्रणो जातः । ततो जितशत्रुणा परिहृता सुवर्णमयाङ्गुष्ठेन गणिकावृत्त्या स्थिता । तां दृष्ट्वा सशृङ्गारां तदासक्तचितः स मुनिर्व्याघुटितो लोकवचनाद् भूमिविहारिणीजलवाहिनीविद्याभ्यामभिमन्त्र्य कुद्दालेन स्वतिकायां घातं दत्त्वा गतः । कुद्दालबलेनोपद्रुतां नगरीं तां वार्तां च श्रुत्वा सकललोकैः सह गत्वा राजा तन्मुनेः पादे लग्नः कायसुन्दर्यां उपरि सस्नेहां तदीयदृष्टिं दृष्ट्वा राज्ञा तदभिप्रायमालक्ष्य गृहे नीत्वा सा तस्य समर्पिता । प्रधानपदं च दत्तम् । भणिता सा–यद्यस्य किंचिदनिष्टं भवति तदा तव निग्रहं करिष्यामीति एकदा द्वीपान्तराद्रत्नपादुके राज्ञः प्रभृतेरानीते राज्ञा च ते गौरसंदीपस्य दत्ते तेन च तत्परिधानार्थं कायसुन्दरीचरणसुवर्णाङ्गुष्ठेन धृत्वा आकृष्टः निःसृते तस्मिन्नाडीव्रणमालोक्य वैराग्यं गतो विमलचन्द्राचार्यसमीपे मुनिर्भूत्वापि तामेव स्मरति । सा च राजनिग्रहभयाद्गले चीरं बद्ध्वा उकल्मनं कृत्वा मृता । राज्ञा च कुपितेन तस्या अग्निदानं निषिद्धम् । ततः श्मशाने पातिता कुथिता च । गुरुणा ज्ञानिना प्रमथिकायां गतेन तस्यां दिशि गत्वा तले बृहद्वेलां गौरसंदीपमुनिर्धृतः । तद्गन्धेन पीडित आगत्य मुनिनोक्तम्– इयं सा त्वदीया वल्लभा । इदानीमेतस्याः किमिति तव गन्धोऽपि न प्रतिभासत इत्युक्त्वा सा तस्य दर्शिता । ततो निःशल्यं तपः कृत्वा परलोकं गतः ॥

वाराणसी नगरी में राजा श्रीधर्म, रानी श्रीमती और पुत्री श्री कान्ता थी। वह उज्जयिनी में जितशत्रु से ब्याही थी। उसकी काय-सुन्दरी वेश्या श्रीधर्मराज के द्वारा दी गई। वह जितशत्रु की प्राणप्रिया हो गई। श्रीकान्ता ने पिता से कहा। उस संकेत से ही पिता ने काय-सुन्दरी के पैर के अंगूठे के नाखून में विष संचारित कर दिया। उससे नाड़ी पर घाव हो गया, जो कि बुरी गन्ध वाला था। तब उसे जित-शत्रु ने छोड़ दिया। सोने के बने हुए अंगूठे से वह गणिकावृत्ति पूर्वक वहाँ ठहरी। शृंगार से युक्त उसे देखकर उसके प्रति आसक्त चित्त वह मुनि लौटते समय लोगों के कहने से भूमिविहारिणी और जल-वाहिनी विद्याओं को अभिमन्त्रित कर कुदाल से खाई में आघात पहुँ-चकर चला गया। कुदाल के जल से भरी हुई नगरी और उस बात को सुनकर वह राजा समस्त लोगों के साथ जाकर उन मुनि के पैरों में पड़ गया। कायसुन्दरी के ऊपर उसकी सस्नेह दृष्टि को देखकर राजा ने उसके अभिप्राय को लक्षित कर घर ले आकर वह उसे सम-र्पित कर दी। तथा प्रधान पद दिया। उस कायसुन्दरी से कहा—यदि इसका कुछ अनिष्ट होगा तो मैं तुम्हें दण्ड दूंगा। एक बार राजा की भेंट में दूसरे द्वीप से दो रत्नपादुकायें आईं। राजा ने उन्हें गौरसंदीप को दे दिया। गौरसंदीप ने उन्हें पहिनाने के लिए कायसुन्दरी के चरण का स्वर्णमयी अंगूठा पकड़कर खींचा। उस अंगूठे के निकल जाने पर नाड़ी के घाव को देखकर वैराग्य को प्राप्त हुआ वह विमलचन्द्रा-चार्य के समीप मुनि होकर भी उसी वेश्या का स्मरण करता था। वह राजा के दण्ड के भय से गले में वस्त्र बाँधकर मर गई। राजा ने कुपित होकर उसको आग लगाने का निषेध कर दिया। अतः श्मसान में उसका घात किया गया और दुर्गन्धित हुई। ज्ञानी गुरु जब घूमने गए तब उस दिशा में आकर नीचे बहुत समय तक गौरसंदीप मुनि को रखा। उसकी गन्ध से पीड़ित हो कर वह आ गए। मुनि ने कहा—यह वह तुम्हारी वल्लभा है। इस समय क्या तुम्हें इसकी गन्ध भी प्रतिभा-सित नहीं होती है, ऐसा कहकर उन्हें दिखा दी। तब निःशल्य हो तप करके मुनि परलोक गए।

[३१] कडारपिङ्गो गतो नरकम् ।

[इहलोए वि महल्लं दोसं कामस्स वसगदो पत्तो ।
कालगदो वि य पच्छा कडारपिंगो गदो णिरयं ॥६३५॥]

अस्य कथा– काम्पिल्यनगरे राजा नरसिंहः, मन्त्री सुमतिः, भार्या धनश्रीः, पुत्रः कडारपिङ्गः, राजश्रेष्ठी कुबेरदत्तः। श्रेष्ठिनी प्रियङ्गुसुन्दरी अतिशयवद्रूपलावण्ययौवनयुक्ता। तां दृष्ट्वा स कडारपिङ्गो विह्वलीभूतो गृहे गत्वा स्थितो मात्रा पृष्टः। किमीदृशी पुत्र तवावस्था जाता। तेन कथितम्– श्रेष्ठिन्या विना म्रिये ऽहम्। ततस्तया स्वमतिमन्त्रिणः कथितम् तेन च कपटेन भणितो राजा। देव रत्नद्वीपात्किंजल्कनामा [न] पक्षिणं श्रेष्ठी समानयतु। तत्प्रभावेन व्याधिमरणपरचक्रादयो न भवन्ति। ततो राज्ञा तमानेतुं स प्रेषितः तेन च निजगमनं प्रियङ्गुसुन्दर्याः कथितम्। तया भणितम् कडारपिङ्गो मे शीलनाशं कर्तुमिच्छति। तदर्थं तव गमनमिति। एतदाकर्ण्य शुभदिने प्रवहणं प्रेष्य श्रेष्ठी व्याघुट्य प्रच्छन्नो गृहे स्थितः। कडारपिङ्ग आगतो वर्चोगृहान्तःपतितः षण्मासांस्तत्र स्थितः। सर्वपिच्छपक्षान् कृत्वा नगरक्षोभेनागते प्रोहणे स कडारपिङ्गो राजसमीपे नीतः। पूर्ववृत्तान्तः कथितः। गर्दभारोहणादिना कडारपिङ्गः कदर्थितो मृतो नरकं गतः॥

[३२] साकेतपुराधिपतिर्देवरतिरित्यादि

(साकेतपुराधिवदी देवरदी रज्जसोक्खपब्भट्ठो ।
पंगुलहेदुं छूढो णदीए रत्ताए देवीए ॥ ९४६ ॥]

[३१] कडारपिङ्ग नरक गया

गाथार्थ–काम के वश हुआ कडारपिङ्ग (नामक मन्त्री पुत्र) इस लोक में महान् दोष को प्राप्त हुआ, पश्चात् मरण कर नरक को प्राप्त हुआ।]९३५]

इसकी कथा-काम्पिल्य नगर में राजा नरसिंह, मन्त्री सुमति, भार्या धनश्री, पुत्र कडारपिङ्ग तथा राजश्रेष्ठी कुबेरदत्त था श्रेष्ठिनी प्रियङ्गु सुन्दरी अतिशय रूप लावण्य तथा यौवन से युक्त थी। उसे देखकर वह कडारपिङ्ग विह्वल होकर घर गया। उसकी माता ने पूछा पुत्र! तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों हो गई ? उसने कहा–मैं, सेठानी के बिना मर जाऊंगा। तब उसने सुमति मन्त्री से कहा। मन्त्री ने कपट पूर्वक राजा से कहा–महाराज! रत्न द्वीप से किंजल्क नामक पक्षी को सेठ लाए। उसके प्रभाव से रोग, मरण, शत्रु का आक्रमण इत्यादि नहीं होते हैं। अनन्तर राजा ने उस पक्षी को लाने के लिए सेठ को भेजा। उसने अपने जाने के विषय में प्रियङ्गु सुन्दरी से कहा– उसने कहा–कडारपिङ्ग मेरा शीलहरण करना चाहता है। कडारपिङ्ग के हेतु तुम्हारा गमन है। यह सुनकर शुभदिन में जहाज भेजकर श्रेष्ठी लौटकर प्रच्छन्न रूप से घर में स्थित हो गया। कडारपिङ्ग आया। शौचगृह में चादर डाले हुए नि.सन्धिमञ्च पर बैठा तथा शौचगृह के अन्दर गिर गया। वहाँ पर छह माह रहा। समस्त पिच्छों को बाजू में लगाकर नगर के क्षोभपूर्वक जहाज के आने पर वह कडारपिङ्ग राजा के समीप ले जाया गया। पूर्व वृत्तान्त कहा गया। गधे पर चढ़ाने आदि के द्वारा अपमानित हुआ कडारपिङ्ग मरकर नरक गया।

(३२) परस्त्री संसर्ग

गाथार्थ–साकेतपुर का स्वामी देवरति नामक राजा (रक्ता नामक स्त्री के निमित्त) राज्य सुख से भ्रष्ट हुआ और रक्ता देवी ने लँगड़े के निमित्त उसे नदी में बहा दिया। [९४६]

अस्य कथा— अयोध्यायां राजा देवरतिः, राज्ञी रक्ता । स तस्यामासक्तः शत्रुभिरभिभूयमानो ऽपि राजकार्यं किंचिदपि न चिन्तयति । ततो जयसेनकुमारं राज्ये प्रतिष्ठाप्य मन्त्रिभिः स रक्तया सह निर्धाटितो ऽटवीं गतः । तस्याः बुभुक्षितायाः निजोरुमांसं संस्कृत्य तेन दत्तम् तृषितायाश्च निजबाहुसिरारक्तमोषध्या जलं कृत्वा दत्तम् । एवमागत्य यमुनानदीतीरे वृक्षतले तां धृत्वा तस्याः भोजनमानेतुं ग्रामाभ्यन्तरं गतः । तद्वृक्षसमीपे वाटिकासेचनार्थमरघट्टं खेटयन्तं पङ्गुं गीतं कुर्वन्तं दृष्ट्वा सा तस्यासक्ता । ततस्तयोक्तम्-मामिच्छ त्वम् । पङ्गुनोक्ता-त्वदीयभर्तुर्बिभेमि । तयोक्तम् विस्रब्धो भव मारयामि लग्ना तम् । एतस्मिन्प्रस्तावे स भोजनं गृहीत्वा आगतः । तया च रोदनं कर्तुमारब्धम् । किमर्थं प्रिये रोदनं करोषि । तयोक्तम्—तवायुर्ग्रन्थिदिने ऽद्य हताशा किं करोमि । तेनोक्तम्- किमनेन प्रिये त्वयैव सर्वं मम पूर्यते । तथाप्याचारमात्रं करोमीत्युक्त्वा तं त्रिग्रन्थितपुष्पैर्यमुनातीरे तं बन्धयित्वा नद्यां प्रक्षिप्य पङ्गुना सह निर्व्याकुला स्थिता । देवरतिश्च नदीप्रवाहेण गत्वा कथमपि नदीतोयान्निःसृत्य मङ्गलपुरे बहिर्वृक्षतले सुप्तः । तत्र व्यपत्यो राजा श्रीवर्धनो मृतः ततो विधिना मन्त्रिभणितपट्टहस्तिना पूर्णकलशेन स्नापितो राज्ये स्थापितः । स्त्रियं न पश्यति । पङ्गुलानां किंचिन्न ददाति । रक्तापि चोल्लके पङ्गुं कृत्वा स्कन्धेन परिवहन्ती मम परिणीतः पतिरिति लोकानां कथयन्ती लोकैः सती भण्यमाना मङ्गलपुरे समायाता । राजसिंहद्वारे च गता प्रतीहारेण राज्ञो विज्ञप्तः । सतीपङ्गुलौ सुस्वरौ द्वारि तिष्ठतः । काण्डपटान्तर्ध्वनिना तदीयं वचनमाकर्ण्य शब्देन परिज्ञाय सोपहासं तदीयं सतीत्वं प्रशस्य प्रविचार्य तस्यैव जयसेनपुत्रस्य राज्यं समर्प्य दमधराचार्यसमीपे तपो गृहीत्वा स्वर्गं गतः ॥

इसकी कथा— अयोध्या नगरी में राजा देवरति और रानी रक्ता थी। देवरति उदः रानी रक्ता में आसक्त हुआ शत्रुओं के द्वारा तिरस्कृत होने पर भी राजकार्य के विषय में कुछ भी विचार ; नहीं करता था। अनन्तर मन्त्रियों के द्वारा जयसेनकुमार को राज्य पर प्रतिष्ठापित कर वह रक्ता के साथ निकाला गया जंगल को गया। भूखी उस रानी को उसने अपनी जाँघ का माँस पकाकर दिया। प्यासी होने पर अपनी बाहु की सिराओं के रक्त को औषधि से जल बनाकर दिया। इस प्रकार आकर यमुना नदी के किनारे वृक्ष के नीचे उसे ठहराकर उसका भोजन लाने के लिए गाँव के अन्दर गया। उस वृक्ष के समीप वाटिका को सींचने के लिए रहट चलाते हुए पङ्गु को गीत गाते हुए देखकर वह उसके प्रति आसक्त हो गई। अनन्तर उसने कहा—तुम मुझे चाहो। पङ्गु ने कहा—तुम्हारे पति से डरता हूँ। उसने कहा—विश्वस्त होओ, उसे मारने में लगती हूँ। इसी अवसर पर वह भोजन ग्रहण कर आ गया उसने रोना प्रारम्भ किया। तब उसने कहा—प्रिये! क्यो रो रही हो? उसने कहा—तुम्हारी वर्ष गाँठ के दिन आज हताशा में क्या करूँ? उसने कहा—प्रिये! इससे क्या, मेरी सब पूर्ति तुम से ही होती है। तथापि आचार मात्र करती हूँ—ऐसा कहती हुई यमुना के किनारे तीन गाँठ वाले पुष्पों से यमुना के किनारे उसे बँधवाकर नदी में डालकर पंगु के साथ व्याकुलता से रहित हो रहने लगी। देवरति नदी के प्रवाह से आकर किसी प्रकार नदी के जल से निकलकर मङ्गलपुर में बाहर वृक्ष के नीचे सोया हुआ था। वहाँ पर सन्तानरहित राजा श्रीवर्द्धन मर गया था। अनन्तर विधिपूर्वक मन्त्रियों के द्वारा कथित मुख्य हाथी के द्वारा पूर्णकलश से नहलाया गया वह राज्य पर स्थापित किया गया। वह स्त्री को नहीं देखता था। लँगड़ों को कुछ नहीं देता था। रक्ता भी झोली में पङ्गु को रख कन्धे पर वहन करती हुई, लोगों से 'यह मेरा पति है,' इस प्रकार कहती हुई लोगों के द्वारा सती कही जाती हुई मङ्गलपुर में आई। जब वह राजा के सिंहद्वार पर गई तो द्वारपाल ने राजा से निवेदन किया। अच्छे स्वर वाले सती और पङ्गुल (लँगड़ा) दोनों द्वार पर बैठे हैं। पर्दे के अन्दर से उसके वचन सुनकर शब्द के द्वारा जानकर उपहास पूर्वक उसके सतीत्व की प्रशंसा कर प्रकष्ट रूप

[३३] विच्छेदेर्ष्यावशतो गोपवतीमस्तक-मित्यादि ।

(ईसालुयाए गोववदीए गामकूडधूदियासीसं ।
छिण्णं पहदो तध भल्लएण पासम्मि सीहबलो ॥६५०॥)

अस्य कथा– पलाशग्रामे विषयिकसिंहबलो, भार्या गोपवती तच्चौरिकया पद्मिनीखेटग्रामे सिंहसेनग्रामकूटस्य पुत्री सुभद्रां परिणीतवान् । तच्छ्रुत्वा गोपवती कोपात्तत्र गत्वा तद्गृहं प्रविश्य मातृकाग्रे सुप्तायाः सुभद्राया मस्तकं गृहीत्वा व्याघुटिता । प्रभाते सुभद्रारुण्डं दृष्ट्वा लज्जित्वा पलाशग्रामे आगतः । गोपवत्या चाभ्यागतस्वागतं कृत्वा भोजनं दत्तम् । तच्चोद्वेगान्न रोचते तस्य । ततस्तयोक्तम् सुभद्राया मुखं पश्य येन भोजनं रोचत इत्युक्त्वा तन्मस्तकं तद्भाजने क्षिप्तम् । ततो राक्षसीयमिति मत्वा भयत्रस्तो नश्यच्छल्येन विदार्य मारितः ॥

[३४] वीरमती संज्ञयेत्यादि ।

[वीरवदीए सूलगदचोरदट्ठोट्ठिगाए वाणियगो ।
पहदो दत्तो य तहा छिण्णो ओट्ठो त्ति आलविदो ॥६५१॥]

अस्य कथा– राजगृहनगरे अतीवेश्वरः श्रेष्ठिधनमित्रः, श्रेष्ठिनी धारिणी, पुत्रो दत्तः । भूमिगृहनगरे आनन्दमित्रधनदत्तयोः पुत्रीं वीरवतीं परिणीतवान् । तत्रैव चोरः प्रचण्डो ऽङ्गारकनामा तस्यानुरक्ता वीरवती दत्ता । रत्नद्वीपे गत्वा बहुभिर्दिवसैः बहुद्रव्याणकानि गृहीत्वा आगतः ।

से विचार कर उसके ही जयसेन पुत्र को राज्य सौंपकर यमधराचार्य के समीप तप ग्रहण कर (वह राजा) स्वर्ग चला गया।

[३३] ईर्ष्या

गाथार्थ—सिंहबल की गोपवती नामक स्त्री ने ग्रामकूट की पुत्री अपनी सौत के मस्तक को छेद डाला और सिंहबल को भाले से मार डाला। [१५०]

इसकी कथा—पलाश ग्राम में विलासी सिंहबल और (उसकी) भार्या गोपवती थी। सिंहबल ने चोरी से पद्मिनीखेट ग्राम में सिंहसेन नामक गाँव के सर्वोत्तम पुरुष (ग्रामकूट) की पुत्री सुभद्रा को विवाहा उसे सुनकर गोपवती कोप से वहाँ जाकर उसके घर में प्रविष्ट होकर माता के आगे सोई हुई सुभद्रा का मस्तक लेकर लौट आई। प्रातःकाल सुभद्रा के रुण्ड को देखकर लज्जित हो (सिंहबल) पलाशग्राम में आ गया। गोपवती ने अभ्यागत का स्वागत कर भोजन दिया। उसे उद्विग्नता के कारण भोजन रुचिकर नहीं लग रहा था। अनन्तर गोपवती ने कहा-सुभद्रा का मुख देखो, जिससे भोजन रुचिकर लगे, ऐसा कहकर उस (सुभद्रा) के मस्तक को उस वर्तन में फेक दिया। तब यह राक्षसी है, यह मानकर भय से भस्त होकर जब वह भागने लगा तब भाले से विदीर्णकर मार दिया गया।

[३४] कुलटा स्त्री

गाथार्थ—सूली के ऊपर चढ़े हुए चोर के द्वारा जिसके ओष्ठ का खंडन किया है ऐसी वीरमती नामक स्त्री ने अपना पति वणिक् पुत्र मार डाला तथा घोषणा की कि मेरे पति ने ओष्ठच्छेद किया है। (१५१)

इसकी कथा—राजगृहर नगर में अत्यन्त धनी सेठ धनमित्र सेठानी धारिणी तथा पुत्र दत्त था। उसने भूमिगृह नगर में आनन्द और मित्रवती की पुत्री वीरमती को विवाहा। वहीं पर प्रचण्ड अङ्गार नामक चोर था, वीरवती उस पर अनुरक्त थी वहीं दत्त को दी गई थी। रत्नद्वीप जाकर बहुत दिनों में दत्त बहुत सी खरीददारी

भार्याया उत्कण्ठितो निजविडादग्रे [?] भूत्वा श्वशुरगृहं गच्छन्नटव्यां सहस्रभटचौरेण दृष्टः । ततः स कौतूहलात्तदीय कौतुकं द्रष्टुं तेन सहागतः । श्वशुरेणागतस्य महोत्सवः कृतः । तस्मिन्नेव दिने चौरिकायामङ्गारचोरः प्राप्तो राज्ञा शूलेन प्रोतः । रात्रौ सुप्तं दत्तं त्यक्त्वा वीरवत्या चौरसमीपं गच्छन्त्या पृष्ठतः सहस्रभटस्यागच्छतः पादसंचारं ज्ञात्वा मुक्तखड्गघातेन तदीयाङ्गुलिवंटप्ररोहश्च छिन्नः । चौरेण सा भणिता—प्रिये मम म्रियमाणस्यालिङ्ग्य मुखेन ताम्बूलं देहि । मृतकनिचयं कृत्वा तस्योपरि चटित्वा मुखताम्बूलदानकाले स्रसितो मृतकनिचयस्तेन म्रियमाणेन खण्डितो ऽधरस्तन्मुखे स्थितः । गृहमागत्य तया दत्तसमीपे पूत्कारः कृतो ऽनेन ममैतत्कृतमिति । राज्ञा दत्तो मार्यमाणः सहस्रभटेन सर्वं वृत्तान्तं कथयित्वा रक्षितः ।

[३५] सुरतस्य दयितस्य महिलाया इति ।

[साधु पडिलाहेदुं गदस्स सुरयस्स अग्गमहिसीए ।
णट्ठं सदीए अंगं कोढेण जहा मुहुत्तेण ॥१०६१॥]

अस्याः कथा—अयोध्यानगर्यां राजा सुरतः, पञ्चशतान्तःपुराग्रमहिषी सती । तस्यामासक्तो महाराजाकार्ये महामुन्यागमने च मां विज्ञापयेस्त्वं नान्यथेति प्रतीहारं भणित्वा अन्तःपुरे प्रविश्य स्थितः । दमधरधर्मरुचिमुनि मासोपवासिनौ चर्यायां प्रविष्टौ । सत्या भण्डितमुखे गोरोचनातिलकं कुर्वाणस्य राज्ञः प्रतीहारेण विज्ञप्तम्—यावत्तिलको न शुष्यति तावद्देवि मुनिचर्यां कारयित्वा आगच्छामि लग्नो मा रोषं

का माल लेकर आ गया। भार्या के प्रति उत्कंठित वह अपने समूह के आगे हो जब वह श्वसुर के घर जा रहा था तो उसे सहस्रभट चोर ने देखा। तब वह कौतूहल से युक्त हो उसका कौतुक देखने के लिए उसके साथ आया। श्वसुर ने उसके आने पर महोत्सव किया। उसी दिन चोरी करते समय अङ्गारचोर पकडा गया। राजा ने चोर को शूली में पिरोया। रात मे सोए हुए दत्त को छोड़कर वीरवती जब चोर के समीप जा रही थी तब पीछे से आते हुए सहस्रभट चोर के पदसंचार को जानकर वीरवती ने तलवार का प्रहार किया जिससे सहस्रभट चोर की अंगुली और वटवृक्ष का प्ररोह टूट गया। अङ्गार नामक चोर ने वीरवती से कहा- मरते हुए मेरा आलिङ्गन कर हे प्रिये! अपने मुख से पान दो। मृतकों के समूह का ढेर बनाकर उसके ऊपर चढ़कर जब वह अपने मुख से ताम्बूल दे रही थी तभी (नीचे से) मृतकों का समूह खिसक गया अत: मरते हुए उस अङ्गार नामक चोर के द्वारा खण्डित अधर उस चोर के मुख में ही रह गया घर आकर उसने दत्त के समीप जोर जोर से चिल्लाना प्रारम्भ किया कि इस दत्त ने मेरा यह किया। राजा के द्वारा मारे जाते हुए दत्त सहस्रभट ने सब वृत्तान्त कहकर रक्षा की।

(३५) आहारदान का प्रभाव

गाथार्थ- साधु के आहार दान के लिए गए हुए सुरत नामक राजा की पट्टरानी का शरीर कोढ़ से एक मुहूर्त में नष्ट हो गया। [१०६१]

इसकी कथा- अयोध्या नगरी में राजा सुरत तथा (उसकी) पाँच सौ रानियों में प्रधान रानी सती थी। उसके प्रति आसक्त हुए महाराज ने द्वारपाल से कहा कि जब महामुनियों का आगमन हो तब तुम मुझसे निवेदन करना, अन्यथा नहीं, ऐसा कहकर वह अन्त:पुर में प्रवेशकर रहने लगा। दमधर और धर्मरुचि दो मुनि जो कि मासोपवासी थे, चर्या के लिए प्रविष्ट हुए। सती के द्वारा मण्डित मुख में गोरोचन का तिलक लगाए हुए राजा से द्वारपाल ने निवेदन किया। जब तक तिलक नहीं सूखता है, तब तक हे महारानी! मुनिचर्या को

कुर्यास्त्वमित्युक्त्वा गतः । मुनि स्थापयित्वा चर्यां कारयित्वा शीघ्रमा-यातः । मुनिनिन्दाफलेन सत्या उदुम्बरकुष्ठगृहीत शरीरमालोक्य सुरतो मुनिरभूत् सती च दीर्घ संसारं गता ।

[३६] व्याघ्रभयादित्यादि ।

[वग्घपरद्धो लग्गो मूले य जहा ससप्पबिलपडिदो ।
पडिदमघुबिंदुभक्खणरदिओ मूलम्मि छिज्जंते ॥
तह चेव मच्चुवग्घपरद्धो बहुदुक्खसप्पबहुलम्मि ।
संसारबिले पडिदो आसामूलम्मि संलग्गो ।
बहुविग्घमूसगेहिं आसामूलम्मि तम्मि छिज्जते ॥
लेहदि विभयविलज्जो अप्पसुहं विसयमधुबिंदुं ॥१०६३-६४॥]

अस्य कथा—कश्चित्पुरुषो ऽटव्यां व्याघ्रेण खेदितो ऽन्धकूपे पतितस्तृणस्तम्बे लग्नो व्याघ्राभिहितकूपतटागतवृक्षशाखाकम्पादुच्चलित-मधुमक्षिकाभिः खाद्यमानसर्वाङ्गो मुखे पतितमृष्टमधुबिन्दुः स्तम्भमूलं च कृष्णश्वेतमूषिकौ कर्तयतः तले चतुर्दिशासु चत्वारो महासर्पा एतत्सर्व-मविगणयन् मधुबिन्दुमेव वाञ्छति ॥

(३७) जातश्च चारुदत्त इत्यादि ।

जादो खु चारुदत्तो गोट्ठीदोसेण तह विणीदो वि ।
गणियासत्तो मज्जासत्तो कुलदूसओ य तहा ॥१०८२॥]

अस्य कथा—चम्पानगर्यां राजा शूरसेनः, श्रेष्ठी भानुः, श्रेष्ठिनी सुभद्रा पुत्रार्थं कुदेवतानां सेवां करोति । एकदा चैत्यालये चारणमुनिं

कराकर आता हूँ, मेरे ऊपर तुम रोष मत करना ऐसा कहकर चला गया। दोनों मुनियों को स्थापित कर चर्या कराकर शीघ्र आ गया। मुनिनिन्दा के फल से सती के उदुम्बर नामक कोढ़ से जकड़े शरीर को देखकर सुरत मुनि हो गया और सती दीर्घ संसार को प्राप्त हुई।

(३६) मधुविन्दु रूपक

गाथार्थ– कोई पुरुष व्याघ्र के भय से भागा और सर्पों के बिल से मुक्त कुयें में पड़कर उस कुयें की दीवार में लगे हुए वृक्ष की शाखा से लटक गया। वृक्ष की जड़ काटे जाने पर भी वह पड़ते हुए मधुविन्दु के भक्षण मे रत हो गया। इसी प्रकार मृत्यु रूपी व्याघ्र से भयभीत हुआ जीव बहुत दुःख रूप सर्प की जिसमे बहुलता है ऐसे संसार रूप बिल में पड़ गया। और आशा रूपी वृक्ष में लटक गया बहुत विघ्न रूपी चूहे उस आशा रूपी वृक्ष की जड़ को नष्ट कर रहे हैं, फिर भी वह भय और लज्जा से रहित होकर अपने को (क्षणिक) सुख देने वाले विषय रूपी मधुबिन्दु को चाट रहा है। (१०६३-६५)

इसकी कथा– कोई पुरुष जगल में व्याघ्र से सताया जाता हुआ खिन्न होकर अन्धकूप में गिरकर तृण के गट्ठर में लग गया। व्याघ्र के द्वारा पुकारा गया। कुयें की तटवर्ती शाखा के हिलाने से उड़ी हुई मधुमक्खियों से जिसके सारे अङ्ग खाए जा रहे हैं ऐसा वह पुरुष घास के गट्ठर की जड को काले और सफेद चूहों के द्वारा काटे जाने पर तथा नीचे चारों दिशाओं में चार महासर्प होने पर भी इन सबको न गिनता हुआ मुख में गिरे हुए [मधुमक्खियों के] मीठे मधु विन्दु को पाकर उसी को ही चाहता है।

[३७] संसर्गज दोष

गाथार्थ– विनीत भी चारुदत्त गोष्ठी के दोष से गणिकासक्त मद्यासक्त तथा कुलदूषक हुआ। [१०८२]

इसकी कथा– चम्पानगरी में राजा शूरसेन, श्रेष्ठी भानु तथा सेठानी सुभद्रा थी। सुभद्रा पुत्र के लिए कुदेवताओं की सेवा करती

वन्दित्वा भगवन्मे तपो [?] भविष्यति न वेति तयोक्तम् । कथितं भगवता—सर्वोत्तमः पुत्रो भविष्यति । पुत्रि, मिथ्यादेवानां सेवां कृत्वा सम्यक्त्वम्लानतां मा कुरु इत्युक्त्वा मुनिर्गतः । तस्याः कतिपयदिनैश्चारुदत्तनामा पुत्रो जातः । सर्वार्थस्य मातुलस्य पुत्री मित्रवती परिणीता, परं कामसेवां न करोति । ततः सुभद्रया गणिकाभिः व्यसनिभिश्च सह संसर्गः कारितो मांसादौ प्रवृत्तो वसन्तसेनया गणिकया सह द्वादशवर्षैः षोडशसुवर्णकोट्यः खादिताः । ततो मित्रवतीस्वकीयान्याभरणानि प्रेषितानि दृष्ट्वा कलिङ्गसेनया कुट्टिन्या भणितम् । पुत्रि, क्षीणद्रव्यो ऽय म्यज्यतां सधने ऽन्यत्र नरे मनः क्रियताम् । ततो ऽसौ त्यक्तो भार्याभरणानि गृहीत्वा मातुलेन सहोनूखलदेशे उशिरावर्तपत्तनं गतः । कार्पासमादाय तामलिप्तपुरीं गच्छतो ऽटव्यां दवाग्निना कार्पासो दग्धः । उद्वेगान्मातुलस्याकथयत्समुद्रदत्तस्य प्रोहणेन पवनद्वीपं गतो धनमुपार्ज्यागच्छतः प्रोहणः स्फुटितः । एवं सप्तवारान् तस्य प्रोहणः स्फुटितः । फलकेन समुद्रमुत्तीर्य राजपुरपत्तनं गतो विष्णुमित्रपरिव्राजकेन गौरवेण निजमठे धृत्वा भणितः । भीमाटव्यां पर्वतनितम्बे धातुरसस्तिष्ठति । तं ते पुत्र ददामि येन तव दारिद्र्यनाशो भवति । चारुदत्तेनोक्तम्—तातैवं कुरु । ततस्तेन वरत्राबद्धशिक्येन हस्ते तुम्बकं दत्त्वा तत्कूपे प्रवेशितः । रसं गृह्णन्नेकपुरुषेण स निषिद्धः । ततश्चारुदत्तेन पृष्टः कस्त्वम् । उज्जयिन्यां वणिक् धनदत्तो ऽहम् । सिंहलद्वीपादागच्छन्त्रुटितो भिन्नप्रोहणो ऽनेन परिव्राजकेन वञ्चयित्वा रसतुम्बकं गृहीत्वा अत्र वरत्रं कर्तित्वा निक्षिप्तो रसे । न भक्षितः प्राणा मे गच्छन्ति लग्ना इत्याकर्ण्य चारुदत्तेनोक्तम्-तर्हि रसो ऽस्य न दीयते । तेनोक्तम्—यदि न दीयते तदा पाषाणादिनोपसर्गं करिष्यति । अतो रसतुम्बकं दत्त्वा द्वितीयवेलायां

थी। एक बार चैत्यालय में चारण मुनि की वन्दना कर भगवन् ! मेरा तप [फलीभूत] होगा या नहीं ? ऐसा उसने कहा। भगवान् ने कहा—तुम्हारे उत्तम पुत्र होगा। पुत्री। मिथ्यादेवों की सेवा कर सम्यक्त्व को मलिन मत करो, ऐसा कहकर मुनि चले गये। कुछ दिनों में उसके चारुदत्त नामक पुत्र हुआ। उसका विवाह सर्वार्थ नामक मामा की पुत्री मित्रवती से हुआ किन्तु वह कामसेवा नहीं करता था। तब सुभद्रा ने उसका गणिकाओं और व्यसनियों के साथ संसर्ग करा दिया, जिससे वह मांसादि में प्रवृत्त होकर वसन्तसेना नामक गणिका के साथ रहकर बारह वर्षों में सोलह करोड़ सुवर्ण खा गया। अनन्तर मित्रवती द्वारा भेजे हुए अपने आभरणों को देखकर कलिङ्गसेना कुट्टिनी ने कहा— पुत्री ! क्षीण धन वाले इसे छोड़ दो और दूसरे किसी धनी मनुष्य के प्रति मन लगाओ। तदनन्तर परित्यक्त हुआ वह पत्नी के आभरण लेकर मामा के साथ उलूखल देश में उशिरावर्तपत्तन को गया कपास लेकर तामलिप्त पुरी को जाते हुए जंगल में दावाग्नि से कपास जल गया। उद्योग के कारण मामा से न कहकर समुद्रदत्त के जहाज से पवनद्वीप गया। धनोपार्जन कर जब वह आ रहा था तो जहाज टूट गया। इस प्रकार सात बार उसका जहाज फट गया। लकड़ी के तख्ते से समुद्र पारकर जब वह राजपुर पत्तन में गया तो विष्णु मित्र नामक परिव्राजक ने गौरव से अपने मठ में रखकर कहा— भीमाटवी में पर्वत के पृष्ठ भाग पर धातुरस है। हे पुत्र ! मैं तुझे वह देता हूँ, जिससे तुम्हारी दरिद्रता का नाश हो जायेगा। चारुदत्त ने कहा— तात ! ऐसा ही करो। अनन्तर उसने रस्सी से बँधे छींके से हाथ में तूँबड़ी देकर उस कुयें में प्रवेश कराया। जब वह रस ले रहा था तो एक पुरुष ने मना किया। तब चारुदत्त ने पूछा— तुम कौन हो ? मैं उज्जयिनी का वणिक् धनदत्त हूँ। सिंहल द्वीप से लौटते हुए जिसका जहाज टूट गया है ऐसा मैं इस परिव्राजक के द्वारा लाया जाकर रस की तूँबी को लेकर आ रहा था तो इसने रस्सी काटकर रस में फेंक दिया। मैंने भोजन नहीं किया, मेरे प्राण निकलने लगे हैं, यह सुनकर चारुदत्त ने कहा— तो इसे रस नहीं देता हूँ। उसने कहा— यदि रस नहीं दिया जाता है तो पत्थर आदि से उपद्रव करेगा। अनन्तर

शिक्यै पाषाणे धृते दूरमाकृष्य शिक्यवरत्रां कर्तित्वा गत: परिव्राजक: । ततश्चारुदत्तेन स भणित: । त्वया मम जीवितं दत्त तवेदानीं सुगति-प्राप्त्युपायं ददामीत्युक्त्वा संन्यासं पञ्चनमस्कारांश्च दत्त्वा चारुदत्तेन पृष्ट:–अस्ति मे को ऽपि नि.सरणोपाय: । तेनोक्तं च–रसं पीत्वा अद्य गता गोधा प्रभाते गच्छन्त्यास्तस्या: पुच्छ धृत्वा नि:सर त्वम् । ततस्तथा निर्गत्य महाटवी परित्यज्य गच्छन् चारुदत्तो मातुलेन मिलितेन रुद्रदत्तेन दृष्टो रत्नद्वीपे चालित । छागयोरारुह्याजपथेन पर्वतस्योपरि गतौ । रुद्रदत्तेन भणितोऽपि चारुदत्तो निजच्छागं न मारयति । अतादुपकारान्न च हत: । सो ऽपि रुद्रदत्तेनैव मारित: चारुदत्तेन तस्य संन्यासपञ्चनमस्कारश्च दत्ता: । छागयोश्चर्मभस्त्रामध्ये प्रविष्टौ तौ रत्नद्वीपायातभेरुण्डपक्षिभ्यां गृहीत्वा रत्नद्वीपाभिमुखं नीयमानयोरन्तराले रुद्रदत्तभस्त्रायां द्वयोर्भेरुण्डयोर्युद्धे समुद्रमध्ये पतितो रुद्रदत्तो मृत्वा दुर्गतिं गत: । चारुदत्तभस्त्रा तु रत्नद्वीपे रत्नचूलपर्वतस्योपरि मुक्ता । तां पाटयित्वा निर्गत: चारुदत्त. । नष्टो भेरुण्ड: । तत्रातापनस्थ मुनिमालोक्य प्रणतवान् । पूर्णयोगेन मुनिनोक्तम्–कुशल ते चारुदत्त । तेनोक्तम्–भगवन्, क्वाहं त्वया दृष्ट: । मुनि: कथयति । अमितविद्याधरोऽहं चम्पायां कदलीवने वसन्तश्रीभार्यया सह क्रीडितुं गत: । वसन्तश्रियं दृष्ट्वा धूमसिंहविद्याधरो मां छलेन वृक्षे विद्यया कीलित्वा तां गृहीत्वा तत: । तस्मिन्प्रस्तावे त्वया तत्र क्रीडितुं गतेनाहं दृष्ट: । मया चोक्तम् अस्मिन् फरके तिस्र ओषधय: सन्ति । मिश्रैता: पिष्ट्वा मे शरीरे देहि येनोत्कीलितो भवामि । तासु तथा दत्तासु गत्वाष्टापदगिरौ

रस की तूँबी देकर दूसरे समय सींके के ऊपर पत्थर रख दिये जाने पर सींके की रस्सी को दूर खींचकर, काटकर परिव्राजक चला गया। अनन्तर चारुदत्त ने उससे कहा— तुमने मुझे जीवन दिया है, । तुम्हें इस समय सुगति की प्राप्ति के उपाय को प्रदान करता हूँ, ऐसा कह कर संन्यास और पंच नमस्कार मन्त्र को देकर चारुदत्त ने पूछा- क्या मेरे निकलने का कोई उपाय है ? उसने कहा— रस पीकर चली गई हुई गोह जब प्रातः काल आयगी तब उसकी पूँछ पकड़कर तुम निकल जाना। अनन्तर वैसे ही निकलकर महाजंगल का परित्याग कर जाता हुआ चारुदत्त मामा के साथ मिले हुए रुद्रदत्त को दिखाई दिया। रुद्र दत्त ने उसे रत्नद्वीप के प्रति चलाया। दो बकरों पर चढ़कर बकरा जाने के मार्ग से दोनों पर्वत के ऊपर गए। रुद्रदत्त के द्वारा कहे जाने पर भी चारुदत्त अपने बकरे को नहीं मारता था। व्रत के कारण और [बकरे के द्वारा] उपकार किए जाने के कारण बकरा चारुदत्त के द्वारा नहीं मारा गया। उस बकरे को भी रुद्रदत्त ने ही मार डाला और चारुदत्त ने उसे पंचनमस्कार मन्त्र दिया। दोनों बकरों के चमड़े की दो थैलियों के मध्य प्रविष्ट हुए। दोनों रत्नद्वीप की ओर जाने वाले दो भेरुण्ड पक्षियों के द्वारा ले जाकर जब रत्नद्वीप की ओर ले जाए जा रहे थे तो बीच में रुद्रदत्त के थैले के विषय में दो भारुण्ड पक्षियों के बीच युद्ध हो जाने पर समुद्र के बीच गिरा हुआ रुद्रदत्त मरकर दुर्गति को गया। चारुदत्त की थैली रत्नद्वीप पर रत्नचूल पर्वत के ऊपर छोड़ी गई। उसे फाड़कर चारुदत्त निकला। भेरुण्ड भाग गया। वहाँ पर उसने आतातन योग में स्थित मुनि को देखकर प्रणाम किया। योग पूर्ण हो जाने पर मुनि ने कहा— चारुदत्त ! तुम्हारी कुशल है। चारुदत्त ने कहा— भगवन् ! तुमने मुझे कहाँ देखा है ? मुनि कहने लगे— मैं अमितगति विद्याधर हूँ। चम्पा नगरी के कदलीवन में वसन्तश्री भार्या के साथ क्रीडा करने के लिए गया था। वसन्त श्री देखकर धूमसिंह विद्याधर मुझे छल से वृक्षपर विद्या से कीलित कर उसे लेकर चला गया। उस अवसर पर वहाँ पर क्रीडा के लिए गए हुए तुम्हें मैं दिखाई पड़ा। मैंने कहा— इस तख्ते पर तीन औषधियाँ हैं। मित्र ! इन्हें पीसकर मेरे शरीर पर लगाओ, जिससे कीलरहित हो जाऊँ। उन औषधियों के उसी प्रकार

पूर्वसिंहं जित्वा भार्यां मोचयित्वा व्याघुट्य त्वं भणितो ऽसि मित्र वरं प्रार्थयेति । त्वया चोक्तम्—न मे वरेण किञ्चित्प्रयोजनमिति । ततो दक्षिणश्रेण्यां शिवमन्दिर पुरे कियत्कालं राज्यं कृत्वा सिंहयशोवराह-ग्रीवपुत्रयो राज्यं समर्प्य चारणमुनिर्भूत्वात्र तपः करोमि । अत्र प्रस्तावे पुत्रयोर्मुनाभवन्दनार्थम् आगतयोश्चारुदत्तवृत्तान्तः कथितः । अत्र प्रघट्टके छागचरदेवेनागत्य चारुदत्तस्य प्रणामः कृतः । ततश्चारुदत्तेनोक्तम्—मुनौ सति मम प्रणामः कर्तुं देव तवानुचितः । देवेनोक्तम्—त्वमेव मे गुरुः छागत्वेन मार्यमाणस्य मे संन्यासपञ्चनमस्कारादत्र त्वया दत्तास्त-स्मात्तन्माहात्म्यात्सौधर्मे स्वर्गे देवो जात इत्युक्त्वा दिव्यपारादिभिः पूजां कृत्वा स्वर्गं गताः । सिंहयशोवराहग्रीवौ चारुदत्तं चम्पायां नीत्वा अक्ष-यद्रव्यं दत्त्वा निजनगरं गतौ चारुदत्तो ऽपि कतिपयदिनैः सुन्दरपुत्राय श्रेष्ठिपदं समर्प्य मुनिर्भूत्वा स्वर्गं गतः ॥

(३८) जैनीसंसर्गतः शकट इत्यादि ।

[सगडो हु जइणिमाए संसग्गीए दु चरणपब्भट्ठो ।

अस्या कथा—कौशाम्बीपुर्यां नवतिवार्षिकः पथश्रान्तशकट-मुनिश्चर्यायां प्रविष्टः । अशीतिवर्षिकया सूत्रकर्तनजीविन्या जैनीब्राह्मण्या चर्यां कारयित्वा पृष्टः । केन कारणेन मुने त्वया तपो गृहीतम् । कथितं तेन—अस्यां कौशाम्ब्यां ब्राह्मणः सोमशर्मा, ब्राह्मणी काश्यपी तत्पुत्रो ऽहं शकटः, रोहिणी मम भार्या अतीव वल्लभा मृता । ततो मया तपो गृहीतम् । वृद्धे त्वमपि कथं जीवसि । कथितं तया अत्र ब्राह्मण शिव-शर्मा, ब्राह्मणी सोमिल्ला, अहं तत्पुत्री जैनी शंकरब्राह्मणेन परिणीता । मृते तस्मिन्कार्पासं कर्तित्वा जीवामीत्याकर्ण्य शकटेन हसित्वोक्ता त्वं स्मरसि यदुपाध्यायगृहे त्वया मया च सह पठितम् । तयोक्तम्—सर्वं स्मरामीति संसर्गस्नेहाद्भ्रष्टः ॥

प्रदान किए जाने पर जाकर कैलाश पर्वत पर धूमसिंह विद्याधर को जीतकर पत्नी को छुड़ाकर, लौटकर मैंने तुमसे कहा था— मित्र ! वर माँगो । तुमने कहा— मुझे वर से कोई प्रयोजन नहीं है । अनन्तर दक्षिण श्रेणि में शिव मन्दिर में कुछ समय राज्य कर सिंहयश और वराहग्रीव नामक दो पुत्रों को राज्य सौंपकर चरणमुनि होकर तपस्या करता हूँ । इसी अवसर पर दोनों पुत्रों के वन्दना भक्ति के लिए आने पर चारुदत्त का वृत्तान्त कहा । इस मुबह बकरे के जीव देव ने आकर चारुदत्त को प्रणाम किया । तब चारुदत्त ने कहा—कि गुरु के होने पर भी हे देव ! तुम्हारा मुझे प्रणाम करना अनुचित है । देव ने कहा— तुम्हीं मेरे गुरु हो । रुद्रदत्त जब मुझे मार रहा था । तो तुम्हीं ने मुझे सन्यास और पचनमस्कार मन्त्र दिया । उसके माहात्म्य से सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ हूँ. ऐसा कहकर दिव्य आहार आदि से पूजा कर स्वर्ग चला गया सिंहयश और वराहग्रीव चारुदत्त को चम्पा में ले जाकर अक्षय धन देकर अपने घर चले गए । चारुदत्त भी कुछ दिनों बाद सुन्दर नामक पुत्र के लिए श्रेष्ठि पद समर्पित कर मुनि होकर स्वर्ग चला गया ।

[३८] कुसङ्गति का प्रभाव

गाथार्थ-शकट नामक मुनि जैनी नामक ब्राह्मणी के संसर्ग से भ्रष्ट हुआ ।

इसकी कथा— कौशाम्बी नगरी में नब्बे वर्ष का रास्ते में थका हुआ शकट मुनि चर्या के लिए प्रविष्ट हुआ । अस्सी वर्ष की सूत कातकर जीविका चलाने वाली जैनी नामक ब्राह्मणी ने चर्या कराकर पूछा— हे मुनि ! तुमने किस कारण तप ग्रहण किया है ? उसने कहा— इस कौशाम्बी में ब्राह्मण सोमशर्मा, ब्राह्मणी काश्यपी, उसका पुत्र मैं शकट हूँ । मेरी अत्यन्त प्रिय रोहणी नामक स्त्री मर गई । तब से मैंने तप ग्रहण कर लिया । वृद्धा ! तुम भी कैसे जी रही हो ? उसने कहा— यहाँ ब्राह्मण शिवशर्मा, ब्राह्मणी सोमिल्ला, उसकी पुत्री, मैं शंकर नामक ब्राह्मण से विवाही गई थी । उसकी मरने पर कपास कातकर जी रही हूँ, इस प्रकार सुनकर शकट ने हँसकर कहा— यह तुम्हें स्मरण है कि उपाध्याय के घर तुम और मैं साथ साथ पढ़े थे । उसने कहा— अब स्मरण है, इस प्रकार संसर्ग के स्नेह से शकट मुनि भ्रष्ट हुआ ।

[३९] कूचवारो ऽपि ।

गणियासंसग्गीए य कूचवारो तहा णट्ठो ॥११००॥]

अस्य कथा—पाटलिपुत्रनगरे राजा अशोको, राज्ञी अशोका । अशोकराजस्य भ्राता कूचवारनामा अतीव शूरः । एकदा ससंघो वर-धर्मनामा गणधरदेवः समायातः । तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्भूत्वा महाटव्यां मध्यमन्दिरपर्वतोपरि महातपः कुर्तुं लग्नः । शत्रुभिरागत्य पाटलिपुत्रे वेष्टिते दुःखितेनाशोकराजेनोक्तम्—कूचवारेण विना कीदृशो मे ऽवस्था जाता । ततो वीरमतिविलासिन्या भणितम्—देव, मा दुःखितो भव, तं कूचवारमहमानयामि । राजवचनेन बहुगणिकाभिः सहार्यकारूपेण तत्र पर्वतेन गता कपटेनैकां धूर्तां पर्वततले धृत्वा तत्समीपं गत्वा वन्दित्वा भणितम्—भगवन्न कार्यकावग्रहविशेषेणागता गिरिं चटितुं न शक्नोति गत्वा तस्याः पादान् दर्शय । ततः स आगतो धूर्त्या दर्शित-शरीरावयवया नाशितः शत्रूपद्रवं श्रुत्वा आगत्य निर्जिताः शत्रवः ॥

[४०] रुद्रपाराशरेत्यादि ।

[रुद्दे परासरो सच्चई य रायरिसी देवपुत्तो य ।
महिलारूवा लोई णट्ठा संसत्तदिट्ठीए ॥११०१॥]

रुद्रस्य सात्यकिकथा—प्रघट्टके कथा भविष्यति । पाराशरस्य लौकिकी कथा—हस्तिनापुरे गङ्गभटधीवरेण महामत्सी जालेन धृत्वा तदुदरे विपाट्यमाने रूपवती कन्या दुर्गन्धा निर्गता सत्यवतीति नामा कृत्वा पोषिता । एकदा गङ्गभटेनावशे सत्यवतीं च धृत्वा गङ्गभटो गृहं गतः । मध्याह्ने दूरादागतेन शान्तेन पाराशरमुनिना द्वितीयतटस्थिता आकारिता सा—पुत्रि, शीघ्रमेहि मामुत्तारयेति । आगत्य तया गङ्गामध्ये नीयमानेन

(३९) वेश्या संसर्ग

गाथार्थ– कुचवार नामक मुनि भी वेश्या के संसर्ग से नष्ट हुआ। (११००)

इसकी कथा– पाटलिपुत्र नगर में राजा अशोक और रानी अशोका थी। अशोकराज का कुचवार नामक भाई अत्यन्त शूर था। एक बार ससंघ वरधर्म नामक गणधर देव आए। उनके पास धर्म सुनकर मुनि होकर महाजंगल के मध्य मन्दिर पर्वत के ऊपर (कुचवार) महातप करने लगा। शत्रु के द्वारा आकर पाटलि पुत्र घेर लेने पर दुःखित अशोकराज ने कहा– कुचवार के बिना मेरी कैसी अवस्था हो गई है तब वीरमती वेश्या ने कहा– दुःखी मत होओ। उस कुचवार को मैं लाती हूं। राजा के वचनों के अनुसार बहुत सी गणिकाओं के साथ आर्यिका के रूप में उस पर्वत पर गई हुई कपट से एक धूर्त स्त्री को पर्वत के तले ठहराकर उसके समीप जाकर वन्दना कर कहा– भगवन् एक आर्यिका नियमविशेष के कारण आई हुई है, वह पर्वत पर चढ़ने मे समर्थ नहीं है, जाकर उसे चरण दिखलाओ। अनन्तर वह आया। धूर्त स्त्री के द्वारा शरीर के अङ्ग दिखलाए जाने पर भ्रष्ट हो शत्रु के उपद्रव को सुनकर आकर शत्रु जीत लिए।

[४०] स्त्री संसर्ग

गाथार्थ– रुद्र, पाराशर, सात्यकि, राजर्षि तथा देव पुत्र ये सब स्त्री के रूप देखने में आसक्त दृष्टि से नष्ट हुए। [११०१]

रुद्र सात्यकि की कथा प्रातः होगी. पाराशर की लौकिकी कथा यह है–हस्तिनागपुर में गङ्गाभट धीवर के द्वारा जाल में पकड़ी गई महा मछली के उदर को जब चीरा गया तो उसमें से रूपवती दुर्गन्धा कन्या निकली। उस धीवर के द्वारा सत्यवती नाम रखकर पोषित की गई। एक बार विवश होकर गङ्गाभट सत्यवती को गङ्गा के किनारे ठहराकर घर चला गया। मध्याह्नकाल में दूर से आए हुए शान्त पाराशर मुनि ने दूसरे तट पर स्थित उसे बुलाया–पुत्री! शीघ्र आओ मुझे पार लगाओ। आकर उसके द्वारा गंगा के मध्य ले जाए जाते

तेन तस्या रूपमालोक्य क्षुभितेनोक्तम्—मामिच्छ । तयोक्तम्—दुर्गन्धिदुर्गन्धा चाहं त्वं च महातपस्वी शापानुग्रहसमर्थ इति । ततस्तस्या दुर्गन्धतामपनीय कुवलयगन्धता कृता । पुनरपि तयोक्तम् । लोकाः पश्यन्ति । ततो धूमरी कृता । नौमध्ये कामसेवां कुर्वाणा न जीवामीत्युक्ते तेन द्वीपं कृत्वा परिणीता सेविता च । तत्क्षणे पञ्चकूर्चजटायज्ञोपवीतादियुक्तो व्यासनामा पुत्रो जातो ऽभिवादनं कृतवान् ॥

[४१] सात्यकिरुद्रयोः कथा ।

गन्धारदेशे महेश्वरपुरे राजा सत्यंधरो, राज्ञी सत्यवती, पुत्रः सात्यकिः सिन्दुदेशे विशालानगर्यां राजा चेटको, राज्ञी सुभद्रा, सप्तपुत्र्यः प्रियकारिणी सुप्रभा प्रभावती मृगावती ज्येष्ठा चेलिनी चन्दना चेति । श्रेणिकनिमित्तमभयकुमारेण नीयमानया चेलिन्या सुरङ्गद्वारे आभरणव्याजेन वञ्चिता ज्येष्ठा। चेटकभगिनी यशस्विनी कन्तिकासमीपे आर्यिका जाता सा च सात्यकेर्दत्ता आसीत् । अतः सात्यकिरपि तां वार्तां श्रुत्वा समाधिगुप्तमुनिसमीपे मुनिरभूत् । एकदा वर्धमानस्वामितीर्थंकरदेववन्दनाभक्त्यर्थं यशस्विनीकन्तिकाप्रभृत्यार्यिका गच्छन्त्यो ऽटवीप्रदेशे ऽकालवृष्ट्योपद्रुता इतस्ततो गताः । ज्येष्ठा कालागुहायां प्रविश्य वस्त्रनिपीलनं कुर्वाणा अन्धकारे ध्यानस्थितेन सात्यकिना दृष्टा । क्षुभितेन कामिता । इङ्गितैर्ज्ञात्वा यशस्विनीकन्तिकया चेलिनीसमीपे नीता वार्ता च कथिता । तया प्रच्छन्नस्थाने धृता नवमासैः पुत्र प्रसूता । श्रेणिकेन चेलिन्याः पुत्र इति प्रघोषः कृतः । एकदा रौद्रभावे परपुत्रकुट्टनात् रुद्र इति चेलिन्या नाम कृतम् । एकदा रुष्टयान्येन जातो ऽयं संतापयतीत्युक्तम् ।

हुए पाराशर मुनि ने उसके रूप को देखकर क्षुभित होकर कहा— मुझे चाहो। उसने कहा— मैं छोटी जाति की और दुर्गन्धा हूँ, तुम महान् तपस्वी हो, शाप देने और अनुग्रह करने में समर्थ हो। अनन्तर उसकी दुर्गन्धता को दूर कर [मुनि ने उसे] नीलकमल के समान सुगन्धित कर दिया। पुन: सत्यवती ने कहा— लोग देख रहे हैं। तब [मुनि ने] धुआँ किया। नाव के मध्य कामसेवा को करती हुई जीवित नहीं रहूँगी, ऐसा कहे जाने पर उसने द्वीप बनाकर उसे विवाहा और सेवन भी किया। उसी समय पाँच दाढ़ी, जटा और यज्ञोपवीत आदि से युक्त व्यास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसने अभिवादन किया।

(४१) सात्यकि और रुद्र की कथा

गान्धार देश में महेश्वरपुर में राजा सत्यंधर, रानी सत्यवती और पुत्र सात्यकि था। सिन्धुदेश की विशाला नगरी में राजा चेटक, रानी सुभद्रा तथा प्रियकारिणी, सुप्रभा, प्रभावती, मृगावती, ज्येष्ठा, चेलिनी और चन्दना ये सात पुत्रियाँ थीं। श्रेणिक के लिए अभयकुमार के द्वारा लाई जाती हुई चेलना के द्वारा सुरङ्ग द्वारपर आभूषणों के बहाने ज्येष्ठा ठगी गई। चेटक की बहिन यशस्विनी कान्तिका के समीप आर्यिका हो गई। वह सात्यकि के लिए दी गई थी, अतः सात्यकि भी उसकी वार्ता सुनकर समाधिगुप्त मुनि के समीप मुनि हो गया। एक बार वर्द्धमान स्वामि तीर्थंकर देव की वन्दना भक्ति के लिए यशस्विनी कान्तिका प्रभृति आर्यिका जाती हुई जंगल में अकालवृष्टि से घबड़ाकर इधर उधर चली गईं। ज्येष्ठा काल गुहा में प्रवेश कर वस्त्र निचोड़ती हुई अन्धकार में ध्यान स्थित सात्यकि के द्वारा देखी गई। क्षुभित सात्यकि के द्वारा उसके साथ काम सेवन किया गया। चेष्टाओं से जानकर यशस्विनी और कान्तिका के साथ चेलनी के समीप ले जायी गई और वार्ता कही। चेलिनी ने उसे गुप्त स्थान पर रखा। नव माह में पुत्र उत्पन्न किया। श्रेणिक ने, चेलिनी के पुत्र उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार की घोषणा कर दी। एक बार रौद्रभाव से दूसरे के पुत्र को पीटने के कारण चेलना ने उसका नाम रुद्र रख दिया। एक बार चेलना ने रुष्ट होकर उससे कहा— [किसी] दूसरे से उत्पन्न हुआ और

ततो विसकर्मभोजनं कृत्वा निजपितरौ पृष्टौ महाकष्टेन कथितौ । ततो गत्वा सात्यकिमुनिसमीपे मुनिरभूत । एकदा एकादश ङ्गदशपूर्वपाठे पञ्चशतमहाविद्याः सप्तशतक्षुल्लकविद्याश्च सिद्धाः । गोकर्णपर्वतातापनस्थ- सात्यकिमुनिवन्दनार्थं गतभव्यजनान् सिंहव्याघ्रादिरूपेण त्रासयति । तदा कर्ण्यं सात्यकिना स भणितः । स्त्रीनिमित्तं तव तपोभङ्गो भविष्यतीत्या- कर्ण्यं सामान्यजनागम्ये कैलासे गत्वा आतापनयोगेन स्थितो यावत्तावत्क थान्तरम् । विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां मेघनिबद्धमेघनिचयमेघनिनादेषु त्रिपु पुरेषु राजा कनकरथो, राज्ञी मनोरमा, पुत्रौ देवदारुविद्युज्जिह्वौ । एकदा राजा देवदारुपुत्राय राज्यं दत्त्वा गणधरमुनिपार्श्वे मुनिरभूत् । कतिपयदि नैर्विद्युज्जिह्वेन युद्धे निर्घाटितो देवदारो गत्वा कैलासे स्थितः । अष्टौ तत्कन्या अप्रतिरूपाः कञ्चुकिरक्षिता महावाप्यां स्नातुमागताः । वापी- समीपस्थातापनस्थेन तेन मुनिना ता आलोक्य तद्रूपासक्तेन तासां वस्त्रा भरणानि विद्यया अपहृतानि । स्नात्वा व्याकुलाभिस्ताभिरागत्य मुनिः पृष्टः— अस्माकं वस्त्राभरणानि केन नीतानि । तेनोक्तम् —मामिच्छथ यदि तदा दर्शयामि । ताभिरुक्तम्—यदि पिता ददाति तदेच्छामः । ततः समर्पितानि । ताभिर्गत्वा पितुर्वार्ता कथिता । तेन च मुनिसमीपे प्रधानः प्रेषितः । यदि विद्युज्जिह्वं हत्वा त्रिपुरीराज्यं ददासि तदा दीयते कन्याः मुनिनोक्तम्— सर्वं करोमि । ततो देवदारुराजेन स निजगृहे आनीतः । तेन च विजयार्धे गत्वा विद्युज्जिह्वं हत्वा देवदारुस्त्रिपुरेषु राजा कृतः । तेन च ताः कन्यास्तस्मै दत्तास्तथान्याश्च ॥

दूसरे को सन्तप्त कर रहा है। तब सोचकर भोजन न कर उसने माता पिता से पूछा- उन दोनों ने बड़े कष्ट से कहा। तब वह जाकर सात्यकि मुनि के समीप मुनि हो गया। एक बार उसे ग्यारह अङ्ग और दशपूर्व का पाठी हो जाने पर पाँच सौ महाविद्यायें और सात सौ छोटी विद्यायें सिद्ध हो गईं। वह गोकर्ण पर्वत पर आतापन योग में स्थित सात्यकि मुनि की वन्दना के लिए गए हुए भव्य जीवों सिंह व्याघ्र आदि रूप धारण कर डराने लगा। यह सुनकर उससे सात्यकि ने कहा- स्त्री के निमित्त तुम्हारा तपोभङ्ग होगा- यह सुनकर वह सामान्य जनों के द्वारा अगम्य कैलाशपर्वत पर जाकर आतापन योग में स्थित हो गया। आगे दूसरी कथा चलेगी।

विजयार्द्धपर्वक की दक्षिण श्रेणी में मेघनिबद्ध, मेघनिचय और मेघ निनाद इन तीन नगरों में राजा कनकरथ, रानी मनोरमा तथा देव-दास और विद्युज्जिह्व नामक दो पुत्र थे। एक बार राजा देवदास नामक पुत्र के लिए राज्य देकर गणधर मुनि के समीप मुनि हो गये। कुछ दिनो बाद विद्युज्जिह्व के द्वारा युद्ध मे निकाला हुआ देवदास जाकर कैलाश पर ठहर गया। उसकी आठ अप्रतिरूप कन्यायें कुंचुकी से रक्षित होकर स्नान करने के लिए आईं। बावड़ी के समीप आतापन योग में स्थित उन मुनि ने उन्हें देखकर उनके रूप के प्रति आसक्त होकर उनके वस्त्र और आभूषण विद्या से हर लिए। स्नान कर व्याकुलित हो उन लोगों ने आकर मुनि से पूछा- हमारे वस्त्राभरण कौन ले गया है? उसने कहा- यदि मुझे चाहो तो मैं दिखलाता हूं। उन्होंने कहा- यदि पिता दे देंगे तो चाहेंगे। तब मुनि ने कपड़े और आभूषण दिए। उन्होंने जाकर पिता से बात कही। उसने मुनि के समीप प्रधान को भेजा। यदि विद्युज्जिह्व को मारकर त्रिपुरी का राज्य दोगे तो कन्या दे देंगे। मुनि ने कहा- सब करूंगा। तब देवदास राजा उसे अपने घर लाए। उसने विजयार्द्ध जाकर विद्युजिज्जह्व को मारकर देवदास को तीनों नगरों का राजा बना दिया। उन कन्याओं तथा अन्य कन्याओं को उसे दे दिया।

[४२] राजश्रीकथा

मिथिलानगर्यां राजा मेरुको, राज्ञी धनसेना, पुत्रः पद्मरथो नमिश्च । एकदा मेरुकः पद्मरथाय राज्यं दत्त्वा नमिना सह दमधरमुनिसमीपे मुनिरभूत् । अन्यदा नमिर्जले निजशरीरच्छायां पश्यन् गुरुणा भणितः–स्त्रीनिमित्तेन तव व्रतभङ्गो भविष्यति । एतदाकर्ण्यासौ महाटव्यामेकाकी दुर्धरं तपः कर्तुं लग्नः । एकदा सागरदत्तसार्थवाहस्तत्राटव्यामायातः । तेन सह गोविन्दनट आगतः स च नटविद्यायामतीव कुशलः । तद्भार्या रुद्रा, पुत्री काञ्चनमाला । मुनिसमीपदेशे गोविन्दो गुणनिकायां काञ्चनमाला नर्तयति । तमालोक्य तद्रूपासक्तेन भणितं नमिमुनिना–न मिलति नृत्यवाद्ययोः । अयं सर्वमिद जानातीति संप्रधार्य सा काञ्चनमाला तस्मै दत्ता । कतिपयदिनैः पूर्वसमुद्रतटे मुण्डीरस्वामिपत्तने गुर्विणी सा भणिता–प्रसूता मासावसानदिने निजपुत्रमुद्याने अशोकवृक्षतले धरेस्तव राजा भविष्यतीत्युक्त्वा पुनर्मुनिरभूत् । तथा च पुत्रे जाते तथा कृतम् । तत्र विश्वसेनो राजा ऽपुत्रो मृतः । मन्त्रिणा विधिना पट्टहस्ती मणितः–निजस्वामिनं गृहाण । ततस्तेन स गृहीत्वा निजमस्तके धृतो दुर्मुखनामा राजा जातः । स नमिमुनिः कालप्रियपत्तने एकदा गतस्तत्र कुम्भकारगङ्गदेवभार्या विमला, तत्पुत्री विश्वदेवी अतिशयेन रूपवती अकस्मादकालवृष्टौ तेन बहुभाजनानि प्रवेष्टुमसमर्थमालोक्य नमिमुनिनोक्तम्–यदि मामिच्छसि तदा प्रवेशयामि तव भाण्डानि । तयोक्तम्–पितृदत्ता इच्छामि । ततो विद्यया झगिति प्रवेशितानि । आर्तौ पितरौ समायातौ । वार्तामाकर्ण्य सा तस्मै दत्ता । एकदा गुर्विणी भणिता प्रसूता निजपुत्रं मासावसाने नदीतटे आम्रवृक्षतले धरेस्तव राजा भविष्यतीत्युक्त्वा मुनिरभूत् । तथा च पुत्रे जाते तथा कृतम् । तत्र देवरतिनामा राजा ऽपुत्रो मृतः । मन्त्रिवचनाद्विधिप्रयुक्त–

[४२] राजश्री कथा

मिथिला नगरी में राजा मेरुक, रानी धनसेना तथा पुत्र पद्मरथ और नमि रहते थे। एक बार मेरुक पद्मरथ को राज्य देकर नमि के साथ दमधर मुनि के साथ मुनि हो गया। एक बार नमि ने अपने शरीर की छाया को देखकर गुरु से कहा- स्त्री के निमित्त तुम्हारा व्रत भङ्ग होगा। यह सुनकर वह महाटवी में अकेला दुर्धर तप करने लगा एक बार सागरदत्त सार्थवाह उस अटवी में आया। उसके साथ गोविन्द नट आया। वह नट नटविद्या में अत्यन्त कुशल था। उसकी भार्या रुद्रा और पुत्री काञ्चनमाला थी। मुनि के समीप में गोविन्द माला पर काञ्चनमाला को नचाता था। उसे देखकर उसके रूप पर आसक्त नमि मुनि ने कहा- नृत्य और वाद्य का मेल नहीं मिलता है। यह सब जानता है, ऐसा निश्चय कर वह काञ्चनमाला उसे दी गई। कुछ दिनों में पूर्व समुद्र के तट मुण्डीर स्वामि पत्तन में गर्भिणी उससे (मुनि ने) कहा-प्रसव करने पर माह के अन्तिम दिन अपने पुत्र को उद्यान में इम अशोक वृक्ष के नीचे रख देना, यह राजा हो जायेगा। ऐसा कहकर पुनः मुनि हो गया। काञ्चनमाला ने पुत्र होने पर वैसा ही किया वहाँ पर विश्वसेन राजा बिना पुत्र के ही मर गया था। मन्त्री ने विधिपूर्वक प्रधान हाथी से कहा- अपने स्वामी को ले आओ। तब हाथी ने उसे लेकर अपने मस्तक पर रखा। वह दुर्मुख नामक राजा हुआ। वह नमिमुनि एक बारकालप्रिय पत्तनमें गए वहाँ कुम्भकार गङ्गदेव की पत्नी विमला तथा उसकी अत्यधिक रूपवती पुत्री विश्वदेवी थी। अकस्मात् अकालवृष्टि होने पर उसने बहुत से बर्तनों को प्रवेश करने में अपने को असमर्थ देखकर नमि मुनि ने कहा- यदि मुझे चाहती हो तो तुम्हारे बर्तन प्रविष्ट करा दूँगा। उसने कहा- पिता जी के देने पर चाहूँगी। तब विद्या से बर्तन शीघ्र प्रविष्ट करा दिए। दुःखी माता पिता आए। वार्ता को सुनकर वह पुत्री उसे दे दी। एक बार जब वह गर्भिणी थी तो (नमि मुनि ने) कहा- प्रसव करने पर अपने पुत्र को माह की समाप्ति हो जाने पर नदी के तट पर आम के वृक्ष के नीचे तुम रख देना, पुत्र राजा हो जायगा, ऐसा कहकर मुनि हो गया। उसने पुत्र उत्पन्न होने

पट्टहस्तिना निजस्कन्धे धृत: । करकण्डो नाम राजा जात: । स नमि-मुनिमेरुदेशे मूलस्थाननगरे गत: । तत्र राजा सिंहसेनो, राज्ञी सिंहसेना, पुत्री वसन्ततिलका । कुमारी तां दृष्ट्वा तस्या: स आसक्तो रात्रावा-दित्यरूपेणागत्य तत्सेवां करोति । आदित्येन गर्भ: कृत इति प्रसिद्धौ नग्नकिनामा पुत्रो जात. । एवं नमिरादित्यरूपेण प्रभाते मुण्डीरस्वामि-पुरे मध्याह्ने कालप्रिये अस्तमनवेलायां मूलस्थाने भोगान् भुक्त्वा त्रिभि: पुत्रै: सह मुनिरभूत् । ते चत्वारो ऽपि विहरन्त: कुम्भकारग्रामे कुम्भकारपाकबहि: शयनेन स्थिता: । कुम्भकारेणागत्य पाके अग्निर्दत्त: । तम् उपसर्गं प्राप्य निर्वाणं गता: ॥

(४३) देवपुत्रो ब्रह्मा तस्य लौकिकी कथा ।

यथा इन्द्रादीनुद्दालयित्वा सर्वोत्तमपदान्यात्मनो वाञ्छन् महा-टव्यां दिव्यार्धचतुर्वर्षसहस्राणि वायुभक्षणं कुर्वाण एकपादेनोर्ध्वबाहु. स्थितो दिव्यं तप: करोति । तप:शक्त्या महादेववासुदेवेन्द्रादीनामास-नानि कम्पितानि । ततो भीतैस्तैर्ब्रह्मणस्तपश्चालनार्थं सपेटिका तिलो-त्तमा तस्याग्रे नर्तितुं प्रेषिता । तद्रूपालोकनासक्तो ब्रह्मा क्रमेणैकैकवर्ष-सहस्रतपस्सामर्थ्येन चतुर्मुखो जात: । उपरि नृत्यन्त्यास्तस्या: पञ्चशत-वर्षतपसा गर्दभमस्तकमुपरि जातम् ॥

[४४] ग्रन्थो भयं नराणामिति ।

गंथो भय णराण सहोदरा एयरत्थजा जं ते ।
अण्णोण्णं मारेदुं अत्थणिमित्तं मदिमकासी ॥११२८॥]

पर वैसा ही किया। वहाँ पर देवरति नामक राजा बिना पुत्र के मर गया था। मन्त्रियों के वचनों के अनुसार विधिपूर्वक प्रयुक्त प्रधान हाथी ने अपने कन्धे पर रख लिया। वह करकण्ड नामक राजा हुआ। वह नमि मुनि मरुदेश में मूल स्थान नगर में गया। वहाँ पर राजा सिंहसेन रानी सिंहसेना तथा पुत्री बसन्ततिलका थी। उस कुमारी को देखकर उसके ऊपर आसक्त होकर वह रात्रि में आदित्य रूप में आकर उसकी सेवा करता था। आदित्य ने गर्भ किया है, ऐसी प्रसिद्ध होने पर नग्नक नामक पुत्र हुआ। इस प्रकार नमि आदित्य रूप में प्रातः काल मुण्डीर स्वामिपुर में, दोपहर, कालप्रिय में तथा सायं काल मूलस्थान में भोगों को भोगते हुए तीनों पुत्रों के साथ मुनि हो गए। वे चारों विहार करते हुए कुम्भकार ग्राम में कुम्भकार की रसोई के बाहर सो गए। कुम्भकार ने आकर रसोई में आई लगाई। उस उपसर्ग को पाकर निर्वाण को प्राप्त हुए।

[४३] रूप का लोभ

इन्द्रादि को उखाड़कर अपने लिए सर्वोत्तम पद की इच्छा करता हुआ [ब्रह्मा] दिव्य साढे चार हजार वर्ष वायुभक्षण करता हुआ, एक पैर से खड़ा होकर ऊर्ध्वबाहु हो दिव्य तप करने लगा। तप की शक्ति से महादेव, वासुदेव तथा इन्द्रादि के आसन कम्पायमान हुए। तब भयभीत होकर ब्रह्मा को तप से विचलित करने के लिए उसके आगे नृत्य मण्डली सहित तिलोत्तमा नचाने के लिए भेजी। उसका रूप देखने मे आसक्त ब्रह्मा क्रमशः एक एक हजार वर्ष तप करने की सामर्थ्य से चार मुख वाला हो गया। उस तिलोत्तमा के ऊपर नाचते रहने की स्थिति में पाँच सौ वर्ष के तप से ऊपर गधे का मस्तक हो गया।

(४४) पाप का मूल परिग्रह

गाथार्थ– परिग्रह मनुष्यों के लिए भय का कारण हैं, जिसके लिए एक रथ्यनगर में सहोदर भाईयों ने धन के लिए एक दूसरे को मारने की बुद्धि की। [११२८]

एतयोः कथा-दशार्णदेशे एकरथ्यनगरे धनदत्तः श्रेष्ठी, भार्या धनदत्ता, पुत्रौ धनदेवधनमित्रौ, पुत्री धनमित्रा । मृते धनदत्ते धनदेव-धनमित्रौ दरिद्रौ कौशाम्ब्यां मातुलसमीप गतौ । तेन धनदत्तवृत्तान्ते श्रुते अष्टानर्घ्यमणयः समर्पिताः । आगच्छद्भ्यां ताभ्यां मणिनिमित्तं परस्परमारणं चिन्तितम् । निजनगरप्रवेशे पश्चात्तापं कृत्वा स्वभाव कथयित्वा वेत्रवतीनद्यां मणीन् क्षिप्त्वा गृहमागतौ । मणयो मत्स्येन मिलिताः । स धीवरेण हत्वा विक्रीतो धनदत्तया गृहीतः । खण्डयन्त्या मणयो लब्धाः । पुत्रपुत्रीणां मारणं चिन्तयित्वा पश्चात्ताप कृत्वा धनमित्राया दत्ताः । तया भ्रातृमातृणां मारणं चिन्तयित्वा पश्चात्तापं कृत्वा भ्रात्रोः समर्पिता । तौ च तान् मणीन्परिज्ञाय त्यक्त्वा च ताभ्या सह दमधराचार्यसमीपे तपो गृहीतवन्तौ ॥

(४५) धनहेतोर्भयमभवच्चौराणामित्यादि ।

[अत्थणिमित्तमदिभय जाद चोराणमेक्कमेक्केहि ।
मज्जे मसे य विसं सजोइय मारिया ज ते ॥ ११२९॥]

अत्र कथा—कौशाम्बीनगर्यां धनमित्रधनदत्तादयो द्रव्याढ्या वणिजो वाणिज्येन राजगृहनगरे चलिताः । अटव्यां चौरैर्गृहीताः । ते च चौरा द्रव्यार्थं परस्परमारणनिमित्तं कृतविषाहारं रात्रौ भुक्त्वा मृताः । तेषां मध्ये सागरदत्तो वणिक् रात्रिभोजने निवृत्तो न मृतः । तेषां मृत्युमालोक्य द्रव्यं त्यक्त्वा वैराग्यान्मुनिरभूत् ।

(४६) संगो महाभयमित्यादि ।

[संगो महाभयं जं विहेडिदो सावगेण सतेण ।
पुत्तेण चेव अत्थे हिदम्हि णिहिदिल्लगे साहु ॥११३०॥]

इन दोनों की कथा— दशार्णदेश में एकरथ्य नगर में धनदत्त श्रेष्ठी भार्या, धनदत्ता, धनदेव और धनमित्र नामक दो पुत्र और एक पुत्री धनमित्रा थी। धनदत्त के मरजाने पर दरिद्र धनदेव और धनमित्र कौशाम्वी में मामा के पास गए। उसने धनदत्त का वृतान्त सुन कर आठ बहुमूल्य मणियां सौंप दी। जब वे दोनों आ रहे थे तो मणि के लिए एक दूसरे को मारने की बात सोचने लगे। अपने नगर में प्रवेश करने पर पश्चाताप कर अपना अपना भाव कहकर वेत्रवती नदी में मणि फेंककर घर आ गए। मणियों को एक मछली ने निगल लिया। उसे मारकर धीवर ने बेचा। धनदत्त ने ले ली। मछली को काटते हुए उसमें से मणि प्राप्त हुए। पुत्र और पुत्रियों के मारने की बात सोचकर पश्चाताप कर वे मणि धनमित्रा को दिए। धनमित्रा ने भाई और माता के मारने की बात सोचकर पश्चाताप कर दोनों भाईयों को सौंप दिए। उन दोनों ने उन मणियों की जानकारी प्राप्त कर, त्यागकर उन दोनों के साथ दमधराचार्य के समीप तप ग्रहण कर लिया।

[४५] धन का लोभ

गाथार्थ— धन के निमित्त चोरों को अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ। धन के लिए ही मद्य मांस में विष मिलाकर मारे गए। (११२६)

कथा— कौशाम्वी नगरी में धनमित्र और धनदत्तादि द्रव्य से व्याप्त (धनी) वणिक् व्यापार के लिए राजगृह नगर की ओर चले। जंगल मे चोरों ने पकड़ लिया। वे चोर धन के लिए एक दूसरे के मारने हेतु बनाए गए विषमय आहार को रात्रि में खाकर मर गए। उनके मध्य सागरदत्त नामक जो वणिक् रात्रि भोजन नहीं करता था वह नही मरा। वह उन लोगों की मृत्यु देखकर धन त्यागकर वैराग्य के कारण मुनि हो गया।

[४६] महाभय परिग्रह

गाथार्थ— परिग्रह महाभय है, जिसके कारण सत्पुरुष श्रावक का धन पुत्र के द्वारा हरे जाने पर भी उसके मन में शङ्का उत्पन्न हुई कि साधु को बाधा पहुँचाई। [११३०]

वूओ वंभग विग्घो लोओ हत्थी य तह य रायसुयं ।
पहिय णरो वि य राया सुवण्णयारस्स अक्खाणं ॥११३१॥
वण्णार णउलो विज्जो वसहो तावस तहेव चूदवणं ।
रक्ख सिवण्णी दुंडुह मेदज्जमुणिस्स अक्खाणं ॥११३२॥

अस्य कथा—मणिवतदेशे मणिवतनगरे राजा मणिवतो, राज्ञी पृथ्वी पुत्रो मणिचन्द्रः एकदा पृथिवीदेव्या राज्ञो मस्तके केशान्विरल—यन्त्या पलितमेकमालोक्य राज्ञो हस्तेन दत्तम्। ततो वैराग्यात्स मणि—चन्द्राय राज्यं दत्त्वा मुनिरभूत् । एकाकी विहरन्नुज्जयिन्यां श्मशाने रात्रौ मृतकशय्यायां स्थितः । कापालिकेन भट्टारकसमीपे मृतकद्वयमा—नीय मस्तकत्रयचुल्ल्यां वेतालविद्यासाधनार्थं मनुष्यकपाले चरुकं राद्धुं प्रारब्धम् । मुनिमस्तके वसादाद्याच्चालिते [?] कपाले पतिते भयाद्भ्रष्टः कापालिकः । प्रभाते मुनिः तथा दृष्ट्वा केनचिज्जिनदत्तश्रेष्ठिनः कथि-तम्। तेन च गृहे समानीतः वैद्य औषधं पृष्टः । तेन कथितम्—सोम—शर्मभट्टगृहे लक्षपाकं तैलमस्ति । तैलाभ्यङ्गादग्निदग्धो नीरोगो भवति। गत्वा श्रेष्ठिना तद्भार्या तुङ्कारी तत्तैलं याचिता । भणितं तया—श्रेष्ठिन् घटमेकं गृहाण। तैलघटं गृहीत्वा निर्गच्छतः स्फुटितो घटः । भीतेन तुङ्कार्याः कथितम् । ततस्तयोक्तमन्यं तैलघटं गृहाण । तथा द्वितीयस्तथा तृतीयोऽपि स्फुटितः । पुनस्तयोक्तम् । श्रेष्ठिन्मा भयं कुरु यावता प्रयोजनं तावद् गृहाण इति । चिन्तितं श्रेष्ठिना—अहो अस्या अद्वितीया क्षमा । पृष्टा च—किं कारणं कोपं न करोषि त्वम् । कथितं तया—श्रेष्ठिन् कोपस्य फलं मया प्राप्तं तेन तं न करोमि ।

तद्यथा—आनन्दपुरे भट्टः शिवशर्मा, भार्या कमलश्रीः, शिवभूत्या पुत्राः शिवभूत्यादयोऽष्ट, अहं नवमी पुत्री भट्टा नाम, न क्वापि मां तुं भणति। एकदा शिवशर्मणा नगरमध्ये घोषणा दापिता—मा कोऽपि भट्टां चुंचुं करोतु । ततश्चुंकारिकेति नाम जातम्। न कदाचिदपि चुं करोमीति व्यवस्थया सोमशर्मब्राह्मणेन परिणीयोज्जयिनीमानीता ।

दूत, ब्राह्मण व्याघ्र लोक, हाथी, राजपुत्र, पथिकनर राधा, स्वर्णकार वानर नकुल, वैद्य, वृषभ, तापस आम्रवन, सत्यपत्नी, का वृक्ष सर्प तथा मेदज्जमुनि की इस विषय में कथायें हैं। (११३१-११३२)

इसकी कथा- मणिव्रतदेश में मणिवत नगर में राजा मणिव्रत, रानी पृथ्वी और पुत्र मणिचन्द्र था। एक बार पृथ्वी देवी के द्वारा राजा के मस्तक पर केश विरल करते हुए एक पके बाल को देखकर राजा के हाथ में दिया गया। तब वैराग्य से वह मणिचन्द्र के लिए राज्य देकर मुनि हो गया। अकेले विहार करते हुए उज्जयिनी के श्मशान में रात्रि में मृतक शय्या पर स्थित हो गया। कापालिक ने भट्टारक के समीप दो मुर्दों को लाकर तीनों मृतकों रूपी चूल्हे पर वेताल विद्या की सिद्धि के लिए मनुष्य के कपाल पर चरु राँधना प्रारम्भ कर दी। मुनि द्वारा मस्तक हिलाने पर कपाल गिर जाने पर भय से कापालिक भाग गया प्रात काल मुनि को वैसा देखकर किसी ने जिनदत्त सेठ से कह दिया जिनदत्त सेठ ने मुनि को घर लाकर वैद्य से औषधि पूछी- उसने कहा सोमशर्माभट्ट के घर लक्षपाक तेल है। तेल लगाने से अग्नि से जला हुआ रोग रहित हो जाता है। सेठ ने जाकर उसकी पत्नी तुङ्कारी से तेल माँगा। उसने कहा- सेठ एक घड़ा ले लो। तैल के घड़े को लेकर निकलते हुए घड़ा फूट गया। भयभीत होकर सेठ ने तुङ्कारी से कहा तब उसने कहा- दूसरा तेल का घड़ा ले लो। उसी प्रकार दूसरा और तीसरा घड़ा भी फूट गया। पुनः उसने कहा- सेठ जी ! भय मत करो, जितना प्रयोजन हो, उतना ले लो। सेठ ने सोचा- ओह ! इसकी क्षमा अद्वितीय है, तथा उससे पूछा- किस कारण तुम क्रोध नही करती हो ? उसने कहा- सेठ जी ! क्रोध का फल मैंने पा लिया अतः क्रोध नहीं करती हूँ। वह इस प्रकार है -

आनन्दपुर में भट्ट शिवशर्मा, भार्या कमल श्री शिवभूति आदि आठ पुत्र तथा नवीं मैं भट्टा नाम की पुत्री थी, मुझे कोई तूं कहकर नहीं पुकारता था। एक बार शिवशर्मा ने नगर में घोषणा कराई भट्टा को कोई तूं तूं कहकर न पुकारे। अतः मेरा नाम तुंकारिका हो गया। कभी भी तुं शब्द का प्रयोग नहीं करूँगा, इस व्यवस्था के साथ सोमशर्मा नामक ब्रह्मण मुझे विवाहकर उज्जयिनी लाया।

एकदा सोमशर्मा रात्रौ नाट्यमालोक्य वेलातिक्रमे समायातः। कपाट-मुद्घाटयेति भणिते मया कोपात्त नोद्घाटिते। ततो बृहद्वेलायां रोषा-त्तेन घुंकारिता रुष्टा द्वारमुद्घाट्य निर्गताहं नगराद्बहिर्गच्छन्ती चौरै-राभरणमादाय पल्लिकायां विजयसेन भल्लस्य दर्शिता। स मे शीलखण्डनं कुर्वाणो वनदेवतयोपसर्गं कृत्वा निवारितः। भीतेन तेन पूजयित्वा सार्थवाहस्य समर्पिता। तेनापि मम शीलखण्डनं कर्तुं न शक्तम्। पर-तीरं नीत्वा कृमिरागकम्बलविक्रयिणो दत्ता। तेन तत्कम्बलनिमित्तं जलूकाभिर्मद्रुधिरं बहुदिनान्याकर्षितम्। उज्जयिनीराजेन यो मे भ्राता धनदेवः पारसकुलराजपार्श्वे दूतः प्रेषितस्तेन कृतकार्येणाहं दृष्ट्वा तं राजानं याचयित्वा आनीय पुनः सोमशर्मणः समर्पिता। रक्तक्षयान्मे शरीरं वातेनाभिभूतं वैद्येन शतसहस्रतैलं पक्वम्। तेन नीरोगा जाता। मुनिसमीपे धर्माधर्ममाकर्ण्य च सम्यक्त्वं व्रतं गृहीत्वा न कस्याप्युपरि मया कोपः कर्तव्य इति व्रतं गृहीतम्। श्रेष्ठिस्तैलं नीत्वा भट्टारक नीरोगं कुरु। श्रेष्ठिना तां प्रशस्य तैलघटमानीय भट्टारको नीरोगः कृतः। तेन मुनिना तस्यैव चैत्यालये वर्षाकाले योगो गृहीतः। श्रेष्ठिना अनर्घ्यरत्नपूर्णस्ताम्रकलशः सप्तव्यसनाभिभूतकुबेरदत्तनिजपुत्रभयान्मुनि-संस्तरसमीपे निखन्य धृतः। मुनिना कुबेरदत्तेन च स दृष्टः। एकदा कुबेरदत्तेन चैत्यालयप्राङ्गणे स कलशो निखन्य धृतः। मुनिरुदासीनः स्थितः। पूर्णयोगे श्रेष्ठिनं पृष्ट्वा मुनिश्चलितः। पत्तनाद्बहिः स्वाध्यायं गृहीत्वा उपविश्य स्थितः। श्रेष्ठी च तं कलशं ग्रहीतुं गतो न पश्यति। भट्टारक एव जानाति तं गृहीत्वा गत इति संचिन्त्य पृष्ठतो लग्नः। त्वया विना भगवन्मम न रतिरिति मायया व्यावर्त्यानीतः। श्रेष्ठिना मुनिः सद्धर्मकथां पृष्टो मुनिनोक्तम्—त्वमपि कथय चिरश्रावकत्वात्।

एक बार सोमशर्मा रात्रि में नाट्य देखकर समय बीत जाने पर आया किवाड़ खोलो, इस प्रकार कहने पर मैंने कोप से किवाड़ नहीं खोले। अतः बहुत देर हो जाने पर रोष से उसने तु शब्द से पुकारा, रुष्ट होकर द्वार खोलकर निकली हुई मैं नगर के बाहर जाती हुई चोरों के द्वारा आभूषण लिए जाने पर पल्ली में विजयसेन भील को दिखाई गई। जब वह मेरे शील का भङ्ग करने जा रहा था तो वनदेवी ने उपसर्ग कर रोक दिया। भयभीत उसने पूजा कर व्यापारी को दिया वह भी मेरा शील खण्डन करने में समर्थ नहीं हुआ। उसने दूसरे किनारे ले जाकर रेशमी लाल कम्बल बेचने वाले को दे दिया। उसने भी उस कम्बल के लिए जोंक आदि के द्वारा मेरा रुधिर बहुत दिन तक खिचवाया। उज्जयिनी के राजा जो मेरा भाई धनदेव पारसकुल के राजा के पास दूत रुप में भेजा था, उस कार्य सम्पन्न करने वाले ने मुझे देखकर राजा से माँगकर मुझे लाकर पुनः सोमशर्मा को सौप दिया। रक्त के क्षय के कारण मेरा शरीर वायु रोग से अभिभूत हो गया। वैद्यों ने एक लाख औषधियों का तेल पकाया, उससे नीरोग हुई। मुनि के समीप धर्म और अधर्म के विषय में सुनकर सम्यक्त्व तथा व्रत को ग्रहणकर मैं किसी के ऊपर कोप नहीं करूँगी, इस प्रकार व्रत ग्रहण कर लिया। सेठ से तेल लेकर भट्टारक को नीरोग करो। सेठ ने उसकी प्रशंसा कर तेल के घड़े को लाकर भट्टारक को रोग रहित किया। उन मुनि ने उसी चैत्यालय में वर्षाकाल में योग ग्रहण किया। सेठ ने बहुमूल्य रत्न से पूर्ण ताम्रकलश सप्त व्यसन से अभिभूत कुबेर नामक निजपुत्र के भय से मुनि के बिस्तर के समीप गाड़कर रख दिया। मुनि और कुबेर दत्त ने वह देखा। एक बार कुबेरदत्त ने चैत्यालय के प्राङ्गण में वह कलश खोदकर रख लिया। मुनि उदासीन रहे। योग पूर्ण हो जाने पर सेठ से पूछकर मुनि चले गए। पत्तन के बाहर स्वाध्याय करते हुए बैठे। श्रेष्ठी उस कलश को लेने के लिए गया, किन्तु उसे नहीं मिला। भट्टारक ही जानते थे, वही लेकर चले गए, ऐसा विचार कर पीछे लग गया। तुम्हारे बिना भगवन्! मेरा मन नहीं लगता है, इस प्रकार माया से लौटाकर लाया। सेठ ने सद्धर्म की कथा पूछी। मुनि ने कहा—तुम्हीं कहो, तुम्हें श्रावक हुए।

ततो ऽभिमतार्थं कटाक्षयता तेन कथा कथ्यते । यदा पद्मरथनगरे वसुपालराज्ञा कोशलाधिपतेर्जितशत्रोर्दूतः प्रेषितः स महाटव्यां तृषितो मूर्च्छया वृक्षतले पतितो वानरेण त कण्ठगतप्राणमालोक्य स्वच्छसरोवरे निमज्ज्यागत्य तस्योपरि निजशरीर विधूयाग्रे गत्वा तेन तस्य जलं दर्शितम् । स च जल पीत्वाग्रे गमननिमित्तं त वानरं हत्वा जलखल्लां कृत्वा गतः । भगवन् किं तस्य वानरमारणं कर्तुं युक्तम् ॥ न युक्तमित्युक्त्वा आत्मना निर्दोषत्वं कथयन्मुनिः कथामाह ॥

कौशाम्ब्यां नगर्यां ब्राह्मण. शिवशर्मा, ब्राह्मणी कपिलाऽपुत्रा । ब्राह्मणेनाटव्यां नकुलपिल्लिको दृष्ट आनीय कपिलायाः पुत्र इति समर्पितः । शिक्षितो भणितं करोति । कपिलाया गः पुत्रो जातस्त मञ्चके सुप्तं नकुलस्य समर्प्य सा तण्डुलान् खण्डितुं गता । सर्पेण पुत्रो भक्षितो मृतः । नकुल. सर्पं मारयित्वा रक्तलिप्तमुखः कपिलाया. समीपे गत । तया पुत्रो ऽनेन मारित इत्याशङ्क्य मुसलेनाहत्य मारितः । गृहे आगत्य मारितं सर्पं दृष्ट्वा पश्चात्ताप. कृतः । श्रेष्ठिन् किं सर्पापराधे नकुलमारणं युक्तं तस्या. स्यात् ॥ न युक्तमिति पुनः श्रेष्ठी कथां कथयति ॥

वाणारस्यां राजा जितशत्रुर्वैद्यो धनदत्तो, भार्या धनदत्ता, पुत्रौ धनमित्रधनचन्द्रौ न पठितौ । मृते वैद्ये जीवनमन्यवैद्यस्य दत्तम् । धनमित्रधनचन्द्रौ चम्पायां शिवभूतिवैद्यपार्श्वे वैद्यशास्त्रं ज्ञात्वा व्याघुटितौ । अटवीमध्ये अक्षिरोगपीडीत व्याघ्रमालोक्य लघुना ज्येष्ठ. निषिद्धेनापि परीक्षणार्थमौषधं लोचनयोर्दत्तम् । तत्क्षणान्नीरोगेण तेन स एव भक्षितः एतत्किं तस्य युक्तम् ॥

मुनिः कथयति । चम्पायां सोमशर्मब्राह्मणस्य द्वे ब्राह्मण्यौ,

बहुत दिन हो गए है। तब इष्ट वस्तु के लिए वह कटाक्षपूर्वक कथा कहने लगा। जब पद्मरथ नगर में वसुपाल राजा ने कोशलाधिपति जितशत्रु के ऊपर दूत भेजा, तब वह दूत महाजंगल में प्यास से मूर्छित होकर वृक्ष के नीचे गिर गया। वानर ने उसे कण्ठगत प्राण देखकर स्वच्छ स्वरोवर में स्नान कर आकर उसके ऊपर अपने शरीर को हिलाकर जाकर उसे जला दिखा दिया। वह जल पीकर आगे जाने के लिए वानर को मारकर जल भरने की थैली बनाकर चला गया। भगवन् ! क्या उसका वानर को मारना युक्त था, ऐसा कहकर अपने निर्दोषपने का कथन करते हुए मुनि ने कथा कही —

कौशाम्बी नगरी में ब्राह्मण शिवशर्मा तथा ब्राह्मणी कपिला थी जो कि अपुत्रवती थी। ब्राह्मण ने जंगल में नकुल के बच्चे को देख कर लाकर कपिला को यह तुम्हारा पुत्र है, ऐसा कहकर समर्पित कर दिया। सिखाए जाने पर आवाज करता था। कपिला का जो पुत्र उत्पन्न हुआ, मञ्च पर सोए हुए उसे नकुल को सौंपकर वह चावल कूटने के लिए गई। सर्प के द्वारा काटा हुआ पुत्र मर गया। नकुल साँप को मारकर रक्त से लिप्त मुख वाला होकर कपिला के समीप गया कपिला ने इसने पुत्र मारा है, ऐसी आशङ्का कर मूसल से चोट पहुँचा कर मार दिया। घर आकर मारे हुए साँप को देखकर पश्चाताप किया सेठ क्या साँप के अपराध करने पर नकुल को मारना उस कपिला का युक्त था ? युक्त नही था इस प्रकार कहने पर सेठ पुनः कथा कहने लगा।

वाराणसी नगरी में राजा जितशत्रु, वैद्य धनदत्त, भार्या धनदत्ता तथा धनमित्र और धनचन्द्र दो पुत्र थे, जो पढ़े नही थे। वैद्य के मर जाने पर उन्हें जीवन अन्य वैद्य ने दिया। धनमित्र और धनचन्द्र चम्पा में शिवभूति वैद्य के पास वैद्यशास्त्र जानकर लौटे। जंगल के बीच आँख के रोग से पीड़ित व्याघ्र को देखकर ज्येष्ठ के द्वारा रोके जाने पर छोटे पुत्र ने परीक्षा के लिए दोनों नेत्रों में औषधि डाल दी। तत्क्षण रोग रहित हुए सिंह ने उसे खा लिया। क्या उसका ऐसा करना युक्त था। मुनि कहने लगे।

चम्पा नगरी में सोमशर्मा ब्राह्मण की दो ब्राह्मणी थी। सोमिल्या

सोमिल्या सोमशर्मा च । सोमिल्यायाः पुत्रो जातः । तत्रैको वृषभो भद्रो गृहे ऽशनघासं लभते कस्यापि कथमपि न घासं ददाति । वन्ध्यया सोमशर्मया एकदा तं बालं मारयित्वा तस्य शृङ्गे प्रोतश्चानेन बालो मारित इति । ब्राह्मणजातिभिः स सर्वैस्त्यक्तः । क्वापि प्रवेशं न लभते । एकदा जिनदत्तराजश्रेष्ठिनो भार्या परदारदोषं प्राप्यात्मशुद्धि कुर्वाणा दिव्यग्रहणार्थं तप्तफालसमीपे बहुजनमध्ये स्थिता प्रस्ताव प्राप्य भद्रवृषभेणात्मविशुद्ध्यर्थं फालो मुखेन गृहीतः । ततः सर्वैर्निर्दोषो भणितः । अपर्यालोच्य तस्य दोषो दातुं किं युक्तो जनस्य ॥

जिनदत्तः कथयति । गङ्गोपकण्ठे लघुकलभो गर्तायां पतितो विश्वभूतितापसेन दृष्टो निजपल्लिकायां नीत्वा प्रतिपालितः । महान् हस्ती सर्वलक्षणोपेतो जातः । श्रेणिकेनाकर्ण्यागत्य याचयित्वा नीतो बन्धनाङ्कुशाभिघातं दृष्ट्वा स्तम्भं भङ्क्त्वा तापससमीपमायातस्तत्-पृष्ठे समायातलोकानां संबोधः समर्प्यमाणेन मारितस्तापसः । तत्किं हस्तिनस्तापसमारणं युक्तम् ॥

मुनिः कथयति । हस्तिनागपुरे पूर्वस्यां दिशि विश्वसेनेन राज्ञा उद्यानवनं कारितम् । सर्पं गृहीत्वा सौलिका आम्रवृक्ष उपविष्टा । सर्पविषं फले पतितम् । तच्च फलं विषोष्मणा पक्वमुद्यानपालेन तद्राज्ञो दर्शितम् । तेन च धर्मसेनया राज्ञ्या दत्तम् । तद्भक्षणात् सा मृता । रुष्टेन राज्ञा सर्वमुद्यानं खण्डितम् । परदोषेण किं युक्तं च तस्य कर्तुं खण्डनम् ॥

जिनदत्तः कथयति । कश्चित्पुरुषो महाटव्यां गच्छन् सिंहमा-गच्छन्तमालोक्य भयात्सप्तपल्लीवृक्षं महान्तमारुह्य स्थितः । गते सिंहे मार्गे गच्छता भेरीनिमित्तं महान्तं काष्ठमन्वेषयतां राजपुरुषाणां सप्त-वृक्षो दर्शितः । तैश्च स खण्डितः । एतत्किं तस्य युक्तम् ॥ मुनिः कथयति

और सोमशर्मा। सोमिल्या का पुत्र हुआ। वहां पर एक भद्र नाम का बैल खाने का घास प्राप्त करता था, वह किसी को किसी भी प्रकार घास नहीं देता था। एक बार वन्ध्या सोमशर्मा ने उस बालक को मारकर उस बैल के सींग में बालक को पिरो दिया तथा कहा कि इसने बालक मारा है। समस्त ब्राह्मण जाति ने उसे त्याग दिया, वह बल कहीं भी प्रवेश प्राप्त नहीं करता था। एक बार जिनदत्त नामक राज श्रेष्ठी की पत्नी दूसरे की स्त्री के दोष को स्वयं प्राप्त कर आत्मशुद्धि करती हुई दिव्य ग्रहण के लिए तपे हुए लोहे के समीप बहुत लोगों के बीच खड़ी थी। अवसर पाकर भद्र नामक बैल ने अपनी विशुद्धि के लिए तपे हुए लोहे का गोला मुँह में रख लिया। तब सभी ने उसे निर्दोष कहा। बिना विचार किए क्या लोगों का उसे दोष देना ठीक था? जिनदत्त कहने लगा—

गङ्गा के समीप छोटा सा हाथी का बच्चा गड्ढे में गिर गया। उसे विश्वभूति तापस ने देखा। उसने अपनी पल्ली में लाकर उसका पालन किया। वह समस्त लक्षणों से युक्त महान् हो गया। श्रेणिक ने सुनकर आकर माँगकर ले लिया। बन्धन और अङ्कुश के प्रहार को देखकर स्तम्भ को तोड़कर तापस के समीप आते हुए उसके पीछे आए हुए लोग संबोधित कर जब उसे सौंप रहे थे तभी उसने तापस को मार दिया तो क्या हाथी का तापस को मारना युक्त था। मुनि कहने लगे।

हस्तिनागपुर में पूर्व दिशा में विश्वसेन राजा न उद्यान का बन बनवाया। सर्प को लेकर एक कौआ आम के वृक्ष पर बैठा। सर्प का विष फल पर गिर गया। वह फल विष की गर्मी से पक गया। उद्यान पाल ने उसे राजा को दिखाया। राजा ने उसे धर्मसेना रानी को दे दिया। उसे खाकर वह मर गई। रुष्ट होकर राजा ने सब उद्यान तुड़वा डाला। दूसरे के दोष के कारण क्या उसका तुड़वा डालना उचित था? जिनदत्त कहने लगा—

कोई पुरुष महाजंगल में जा रहा था। सिंह को आते हुए देख कर वह भय से समीपस्थ बड़े सप्तपल्ली के वृक्ष पर चढ़ गया। सिंह के चले जाने पर मार्ग में आते हुए भेरी बनवाने के लिए बड़े काष्ठ को जब राजपुरुष ढूँढ रहे थे तब उसने वह सप्तपल्ली वृक्ष दिखा दिया

कौशाम्ब्यां राजा गान्धर्वानीकस्तस्य सुवर्ण- कारो ऽङ्गारदेवो रत्नसंस्कारकः। तेनैकदा राजकीयमुकुटाग्रपद्मराग - मणिमु - ज्ज्वालयता चर्यायां प्रविष्टो मेदज्जमुनिः स्थापितः। कर्मशालायां मुनिः प्रवेशितः। तत्समीपे मणिं धृत्वा भार्याया वार्तां कथयितुं गतः। स मणिः क्रौञ्चपक्षिणा मांसं मत्वा भक्षितो गले लग्नः। आगतेन तेन मणिमपश्यता मुनिः पृष्टः। मुनिना दयापरेण तं जानतापि मौनं कृतम्। पुनस्तेनोक्तम्—मम सकुटुम्बस्य मरणं भविष्यतीति कथय त्वम्। तथापि मौनमेव मुनेः। ततो रुष्टेन तेन चौरो ऽयमिति मुनिर्बद्ध आहतश्च काष्ठैः। प्रहरतश्च एकं काष्ठं क्रौञ्चगले लग्नम्। निर्गतो मणिः। गृहीतो हाहाकारं कृत्वा मुनिपादयोर्लग्न इति। यथा तेन स क्रौञ्च-भक्षितो मणिर्न कथितः तथाहं जानन्नपि न कथयामि तं येन नीतः कलशः। ततः कुबेरदत्तेन महामुनेः कियन्तमुपसर्गं करिष्यतीति भणित्वा आनीय पितुः कलशः समर्पितः। ततो मुनिं क्षमापयित्वा जिनदत्तकुबेर-दत्तौ तत्पार्श्वे मुनी जातौ॥

[४७] पिण्याकगन्धः।

[अत्थणिमित्तं घोरं परितावं पाविदूण कंपिल्ले।
लल्लक्कं संपत्तो णिरयं पिण्णागगंधो क्खु॥११४०॥

अस्य कथा—काम्पिल्यनगरे राजा रत्नप्रभो, राज्ञी विद्युत्प्रभा, राजश्रेष्ठी जिनदत्तश्रावकः! अपरश्रेष्ठी पिण्याकगन्धो द्वात्रिंशत्कोटि-द्रव्येश्वरः। लोभात्पिण्याकः खलं भक्षयति। तस्य भार्या सुन्दरी, पुत्रो विष्णुदत्तः। तत्रैकदा राजकीयतडागं खनतैकेन वृद्धोड्डेन किट्टभक्षि-तसुवर्णकुशीशतमंजूषा लब्धा।

राजपुरुषों ने उसे काट डाला। क्या उस पुरुष का यह करना ठीक था ? मुनि कहने लगे –

कौशाम्बी में राजा गान्धर्वानीक था। उसका अङ्गारदेव नामक सुवणकार रत्नों का संस्कार करने वाला था। उसने एक बार राजकीय मुकुट के आगे पद्मराग मणि को उजालते हुए चर्या के लिए प्रविष्ट मेदज्ज मुनि को ठहरा लिया। मुनि कर्मशाला में प्रवेश कराए गए। मुनि के समीप मणि रखकर भार्या के समीप ब त कहने के लिए गया। उस मणि को क्रौञ्च पक्षी ने मांस मानकर खा लिया, वह मणि उसके गले लग गया। उसने आकर मणि को न देखकर मुनि से पूछा। दया परायण मुनि ने उसे जानते हुए भी मौन धारण किया। पुनः सुवर्णकार ने कहा– मेरे कुटुम्ब का मरण हो जायगा, तुम कहो। तब भी मुनि मौन ही रहे। तब रुष्ट होकर उसने यह चोर है, ऐसा कहकर मुनि को बांधा और लकड़ी से पीटा। मारते समय एक लकड़ी क्रौञ्च के गले में लग गई। मणि निकल गया। लेकर हा ह कार कर मुनि के दोनों चरणों में पड़ गया। जैसे उसने उस क्रौञ्च के द्वारा खाए हुए मणि के विषय में नहीं कहा था, उसी प्रकार मैं भी जानते हुए भी उसे नहीं कहता हूँ, जिसने कलश लिया है। तब कुबेर दत्त ने, महामुनि के ऊपर कितना उपसर्ग करोगे, यह कहकर लाकर पिता को कलश सौंप दिया। तब मुनि से क्षमा कराकर जिनदत्त और कुबेरदत्त उनके समीप मुनि हो गए।

(४७) धन का दुष्प्रभाव

गाथार्थ– काम्पिल्यनगर में धन निमित्त घोर दुःख पाकर पिण्याक गन्ध लल्लक्क नामक नरक को प्राप्त हुआ। [११४०]

काम्पिल्यनगर में राजा रत्नप्रभ, रानी विद्युत्प्रभा तथा राजश्रेष्ठी जिनदत्त श्रावक था। दूसरा सेठ पिण्याकगन्ध था, जो कि बत्तीस करोड़ धन का स्वामी था। लोभ से पिण्याक खली खाता था। उसकी भार्या सुन्दरी और पुत्र विष्णुदत्त था। उस काम्पिल्यनगर में एक बार राजकीय तालाब खोदते हुए एक वृद्ध पत्थर खोदने वाले को कीट जिस पर जमा हुआ था ऐसी सोने की सौ हल की फालों से युक्त पेटी प्राप्त हुई

एका कुशी जिनदत्तेन लोहमयीति मत्वा लोहमूल्येन गृहीता सुवर्णं ज्ञात्वा जिनप्रतिमा कारिता। प्रतिष्ठापिता च। द्वितीया कुशी जितदत्तेन न गृहीता। पिण्याकगन्धेन गृहीता तेन तां सुवर्णमयीं ज्ञात्वा स भणितो ऽन्या अपि देहि। ततो ऽष्टानवतिदिनैरष्टानवतिकुश्यो दत्ता:। अन्यस्मिन्दिने पिण्याकगन्धस्य या भगिनी सुमित्रा पिप्पलग्रामे सागरदत्तश्रेष्ठिना परिणीता। सा निजपुत्री सूर्यमित्रपरिणयनसमये पिण्याकगन्धं निमन्त्रयितुमायाता। स च कुशलोभात्पुत्र कुशीग्रहणे निरूप्य तत्र गतः। उद्दण्डे कुशी गृहीत्वा आयाते किमनया प्रयोजनमिति विष्णुदत्तेन न गृहीता। उद्दण्डस्यान्यत्र गच्छतो राजपुरुषेण खननार्थमुद्दालिता सा। खनता च सुवर्णकुशीशतमित्यक्षराण्यवलोक्य राज्ञ: कथितम्। स अनीत:। तेन च कथितम्—जिनदत्तस्यैका कुशी दत्ता पिण्याकगन्धस्याष्टानवति:। आकारितो जिनदत्तो यथार्थं कथयित्वा प्रतिमां दर्शयित्वा राजपूजितो गृहं गत:। पिण्याकगन्धस्य गृहं गृहीतं कुटुम्बं च खोटके निक्षिप्तम्। विवाहानन्तरं पिण्याकगन्धेन शीघ्रमागच्छता मार्गे गृहवार्तां श्रुत्वा इमौ पादौ ग्रामं गताविति पाषाणेन तौ चूर्णयित्वा महतार्तेन मृत्वा षष्ठनरके लल्लकप्रस्तरके नारको जात:॥

[४८] लब्धस्य सर्वधनिन: फटहस्तस्येत्यादि।

[पउहत्थस्स ण तित्ती आसी य महाधणस्स लुद्धस्स।
सगेसु मुच्छिदमदी जादो सो दीहसंसारी॥११४४॥]

अस्य कथा—चम्पानगर्यां राजा अभयवाहनो, राज्ञी पुण्डरीका, वणिक् लुब्धश्रेष्ठी, श्रेष्ठिनी नागवसु:, पुत्रौ गरुडदत्तनागदत्तौ।

एक फाल जिनदत्त ने लोहे की है. ऐसा मानकर लोहे के मूल्य में लेली और सोने की है ऐसा जाकर उसकी जिनप्रतिमा बनवाली और उसे प्रतिष्ठापित करा दिया। दूसरी फाल जिनदत्त ने नहीं ली। जब पिण्याकगन्ध ने उसे लिया तथा यह जाना कि यह सोने की है तो उससे कहा- और भी दो। तब अट्ठानवें दिनों में अट्ठानबे फाल दे दी गई। दूसरे दिन पिण्याक गन्ध की जो बहिन सुमित्रा पिप्पल ग्राम में सागरदत्त सेठ के द्वारा विवाही गई थी, वह अपनी पुत्री सूर्य-मित्र के विवाह के समय पिण्याक गन्ध को निमन्त्रित करने के लिए आई। वह फाल के लोभ से पुत्र को फाल को लेने में नियुक्त कर वहाँ पर चला गया। जल पत्थर फोड़ने वाला फाल को लेकर आया तो इससे क्या प्रयोजन है ? ऐसा मानकर विष्णुदत्त ने नहीं ली। पत्थर फोड़ने वाले के दूसरी जगह जाने पर राजपुरुष ने उसे खोदने में प्रयुक्त किया। खोदते समय सोने की सौ फाल इन अक्षरों को देखकर राजा से कहा गया। पत्थर फोड़ने वाले को लाया गया। उसने कहा-जिनदत्त को एक फाल दी और पिण्याकगन्ध को अट्ठा-नबे। जिनदत्त को बुलाया गया। सही बात कहकर प्रतिमा दिखाकर राजा के द्वारा सम्मान प्राप्त कर घर चला गया। पिण्याकगन्ध का घर ले लिया गया और कुटुम्ब को पैर फँसाने के लकड़ी के कूटयन्त्र [फन्दा] में डाल दिया। विवाह के बाद पिण्याक गन्ध जब शीघ्र आ रहा था तो मार्ग में घर का समाचार सुनकर ये दोनों पैर ग्राम गए थे, इस प्रकार कहकर पत्थर से दोनों पैर चूर्ण-चूर्ण कर महावेदना से मरकर छठे नरक में लल्लक प्रस्तरक में नारकी हुआ।

(४८) परिग्रह की ममता

गाथार्थ- महाधनी तथा लोभी पटहस्त नामक वणिक् को बहुत धन से भी तृप्ति नहीं हुई। अतः परिग्रह के प्रति ममता रूप बुद्धि को धारण कर अनन्त संसारी हुआ। [११४४]

इसकी कथा- चम्पा नगरी में राजा अभय वाहन, रानी पुण्डरीका वणिक् लुब्धश्रेष्ठी, सेठानी नागवसु तथा गरुडदत्त और नागदत्त नामक दो पुत्र थे।

लुब्धश्रेष्ठिना लक्ष्मीयक्षगजतुरङ्गादीनां सुवर्णमययुगलालि कर्णाक्षिपुच्छखुरादिषु रत्नखचितानि गृहे कारितानि। बलीवर्द एक एव। द्वितीयबलीवर्दनिमित्तमेकदा सप्ताहोरात्रवृष्टौ जातायां गङ्गाप्रवाहमध्यात्काष्ठान्यानयन्तं प्रासादोपरि राजसमीपे उपविष्टया पुण्डरीकया त लुब्धश्रेष्ठिनमालोक्य भणितम्—देव तवापि राज्ये को ऽपि महादरिद्रः पश्येत्थ काष्ठान्याकर्षति धनं दीयतामस्य। एकदाकर्ण्याकार्य पुनः स भणितो राज्ञा-वर्तनार्थं यावता प्रयोजनं तावद्द्रव्यं गृहाण। तेनोक्तम्—ममैको बलीवर्दस्तिष्ठति द्वितीयबलीवर्देन प्रयोजनम्। राज्ञोक्तम्—अस्मदीयबलीवर्देषु मध्ये गृहाण। राजकीयबलीवर्दानवलक्य तेनोक्तम्-नास्तिदेवास्मद्बलीवर्दसमानोऽत्रबलीवर्द.। कीदृशो भवद्बलीवर्दो मे दर्शयेत्युक्ते राज्ञो गृहे बलीवर्दो दर्शित.। विस्मयेन राज्ञा तवेदृशा बलीवर्द इत्युक्तम्। नागवसुश्रेष्ठिन्या महार्घरत्नसुवर्णपूर्णस्थालं श्रेष्ठिनो दत्तं भणितं च—राज्ञ. समर्पय। तत्समर्पयतस्य कृपणस्य हस्ताङ्गुलय. फटासदृशास्तथा जाता। ततो राज्ञा स्थाल त्यक्त्वा स फटहस्तो भणित। एकदा तेन फटहस्तेन द्वितीयबलीवर्दार्थं प्रोहणेन द्वादशवर्षैः सिंहलद्वीपादिषु गच्छता चतस्रः सुवर्णकोट्यो र्जिताः। सिन्धुविषये सिन्धुसागरे प्रोहणे ब्रुडिते मृत्वा निजगृहे निधिपालकसर्पो जातः कस्यापि ग्रहीतुं न ददाति। रुष्टेन गरुडदत्तेन मारितश्चतुर्थनरके नारको जातः ॥

(४९) चक्रे यथा विशिष्ट इत्यादि

(कुद्धो वि अप्पसत्थं मरणे पत्थेदि परवधादीयं।
जह उग्गसेणघादे कदं णिदाणं वसिट्ठेण ॥१२१८॥)

अस्य कथा— मथुरानगर्यां राजा उग्रसेनो, राज्ञी रेवती, श्रेष्ठी जिनदत्तः, तद्दासी प्रियङ्गुलता। यमुनातीरे—

लुब्धश्रेष्ठी ने लक्ष्मी, यक्ष, हाथी, और घोड़े आदि के सोने के जोड़े, जिसके कान, आंख, पूंछ, खुर वगैरह में रत्न जड़े हुए थे, घर मे बनवाए। बैल एक ही बनवाया। दूसरे बैल के लिए एक बार सात दिन रात वर्षा होने पर गङ्गा के प्रवाह के बीच से लकड़ी लाते हुए महल के ऊपर राजा के समीप बैठी हुई पुण्डरीका ने उस लुब्धश्रेष्ठि को देखकर कहा– महाराज ! आपके राज्य में कोई महागरीब है, देखो ! इस प्रकार लकड़ी खींचता है, इसे धन दे दो। यह सुनकर बुलाकर उससे राजा ने कहा– काम चलाने के लिए जितना प्रयोजन है, उतना धन ले लो। सेठ ने कहा– मेरा एक बैल है, दूसरे बैल से प्रयोजन है। राजा ने कहा– हमारे बैलों में से ले लो। राजा के बैलों को देखकर उसने कहा– हे महाराज यहाँ पर हमारे बैल के समान बैल नही है। आपका बैल कैसा है मुझे दिखाओ, इस प्रकार कहे जाने पर राजा को घर पर बैल दिखाया। विस्मित होकर राजा ने तुम्हारा ऐसा बैल है ? ऐसा कहा। नागवसु सेठानी ने बहुत कीमती रत्न और सोने से भरी हुई थाली सेठ को दी और कहा- राजा को समर्पित कर दो। उसे समर्पित करते हुए उसके हाथ को अङ्गुलियाँ फण के समान हो गईं। तब राजा ने थाली त्यागकर उसे फटहस्त [फण के समान हाथ वाला] कहा। एक बार उस फटहस्त ने दूसरे बैल के लिए जहाज से बारह वर्ष सिंहलादिद्वीपों मे जाते हुए चार करोड़ सुवर्ण मुद्रायें अर्जित की। सिन्धुदेश में सिन्धुसागर में जहाज के डूब जाने पर मरकर अपने घर में निधि की रक्षा करने वाला साँप हुआ। वह किसी को भी धन नहीं लेने देता था। रुष्ट हुए गरुडदत्त के द्वारा मारा हुआ वह चौथे नरक में नारकी हुआ।

[४६] खोटा निदान

गाथार्थ– जो मरण समय में क्रोधी हो तथा दूसरे के मरणादि की इच्छा करे, उसके अप्रशस्तनिदान होता है, जैसे वशिष्ठ नामक मुनि ने उग्रसेन राजा को मारने के लिए निदान किया। [१२१८]

इसकी कथा– मथुरा नगरी में राजा उग्रसेन, रानी रेवती, श्रेष्ठी जिनदत्त तथा उसकी दासी प्रियङ्गुलता थी। यमुना के किनारे एक

तापसो विशिष्टो जलमध्ये बुड्डिकां दत्वा पञ्चाग्निसाधनं करोति । ततो नगरजनो अतिभक्तो जातः । पानीयहारिकाश्च नित्यं तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणमन्ति । प्रियङ्गुलता च ताभिर्भण्यमानापि न प्रणमति । हस्तपादे धृत्वा ताभिस्तस्य पादयोः पात्यमानया तया भणितम्—यद्यस्य प्रणमामि तदा वृद्धधीवरस्य किं न प्रणमामि । एतदाकर्ण्य सर्वासां तापसो रुष्टस्ताश्च नष्टाः । तापसेनोग्रसेनस्य कथितम् —जिनदत्तश्रावकेणाह धीवरो भणितः । आनीतो जिनदत्तः । देवायं तापसः प्रमाणं यदि मया भणितः । तापसेनोक्तम्—अस्य चेटिकया भणित. । मुनेः सत्यवचनं हसित्वा राज्ञा साप्याकारिता । तां दृष्ट्वा कुपितेन तापसेनोक्तम् ब्राह्मणकुलोत्पन्न वायुभक्षं कथं धीवरसमानं मा भणसि रण्डे । तयोक्तम्—धीवरो ऽपि मत्स्यान् मारयति, त्वमपि इति कस्ततो विशेषस्तवेति । जटाभारं झाटय । झाटिते तस्मिन् पतिता नानाप्रकारा मत्स्याः । ततो राज्ञा जिनधर्मप्रशंसां कृत्वा तापसो निःसारितः । गङ्गागन्धवत्योः संगमे गत्वा पञ्चाग्निसाधनं कर्तुं लग्नः । पञ्चशतयतिभिः सह तत्र वीरभद्राचार्यः समायातः । तत्रैकेन मुनिनोक्तम् —तापसस्योग्रं तपः । आचार्येणोक्तम्—दयाहीनमज्ञानिनां तपः किं प्रशस्यते । रुष्टेन तेनोक्तम् —कथमहज्ञानी । आचार्येणोक्तम् यदि त्वं ज्ञानी तदा तव गुरुर्मृत्वा क्व सजातः । तेनोक्तम्—स्वर्गे । आचार्येणोक्तम् अस्य त्वया दह्यमानकाष्ठास्याभ्यन्तरे स सर्पो दह्यमानस्तिष्ठति । रुष्टेन तेन काष्ठे स्फाटिते सर्पो दृष्टः । ततो गर्वं मुक्त्वा धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः । मथुरायां गोवर्धनगिरौ मासोपवासाद्युग्रतपः कुर्वाणस्य विद्यादेवताः सिद्धाः, भणन्ति ताः—भगवन् किं कुर्मः । तेन क्तम्—यदा मे प्रयोजनं तदा आगच्छत यूयम् । मासोपवासे पूर्णे आदरवतोग्रसेनेन घोषणा दापिता—मा को ऽपि वसिष्ठमुनिं स्थापयतु । अहं स्थापयिष्यामि ।

तापस विशिष्ट जल के बीच डुबकी लगाकर पञ्चाग्नि तप का साधन करता था। अतः नगर के लोग उसके अत्यन्त भक्त हो गए। पानी को लाने वाले नित्य उसकी परिक्रमा देकर प्रणाम करते थे। उनके द्वारा कहे जाने पर भी प्रियङ्गुलता प्रणाम नहीं करती थी। हाथ पैर पकड़ कर उसे उसके चरणों में गिरवाया गया। तो उसने कहा– यदि इसे प्रणाम करूँगी तो बड़े धीवर को क्यों नहीं प्रणाम करूँ। यह सुनकर सभी तापस रुष्ट हो गए और वह भाग गई। तापस ने उग्रसेन से कहा– जिनदत्त श्रावक ने मुझसे धीवर कहा। जिनदत्त को लाया गया। महाराज! यह तापस प्रमाण है, यदि मैंने कहा हो तो। तापस ने कहा– इसकी दासी ने कहा। मुनि के सत्यवचन पर हँसकर राजा ने उसे भी बुलाया। उसे देखकर कुपित तापस ने कहा– राँड! ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, वायु का भक्षण करने वाले मुझे धीवर के समान कैसे कहती है? उसने कहा– धीवर भी मछलियों को मारता है, तुम भी मारते हो, तुममे और धीवर में क्या अन्तर है? जटा के समूह को झटकारो झटकारने पर उसमें से नाना प्रकार की मछलियाँ गिर पड़ी। तब राजा ने जिनधर्म की प्रशंसा कर तापस को निकाल दिया। (वह तापस) गङ्गा और गन्धवती के संगम पर जाकर पंचाग्नि तप करने लगा। पाँच सौ मुनियो के साथ वहाँ वीरभद्राचार्य आए। वहाँ पर एक मुनि ने कहा– तापस का तप उग्र है। आचार्य ने कहा– दयाहीन अज्ञानियों के तप की प्रशसा करते हो? रुष्ट होकर उसने कहा– मैं अज्ञानी कैसे हूँ? आचार्य ने कहा– यदि तुम ज्ञानी हो तो बतलाओ कि तुम्हारे गुरु मरकर कहाँ उत्पन्न हुए हैं। उसने कहा– स्वर्ग में। आचार्य ने कहा– इस तुम्हारे द्वारा जलाए जाते हुए काष्ठ के अन्दर वह सर्प जलता हुआ विद्यमान है। रुष्ट उसके द्वारा लकड़ी फाड़ने पर सर्प दिखाई दिया। तब गर्व छोड़कर धर्म सुनकर मुनि हो गया।

मथुरा नगरी में गोवर्द्धन पर्वत पर मासोपवास आदि उग्र तप करने वाले उसे विद्यादेवियाँ सिद्ध हो गई। वे कहने लगीं– भगवन्! हम क्या करें? उसने कहा– जब मेरा प्रयोजन हो तब तुम सब आ जाना। मासोपवास के पूर्ण हो जाने आदरवान् उग्रसेन ने घोषणा कराई – कोई भी वशिष्ठ मुनि को न ठहराए, मैं ठहराऊँगा।

तत्र प्रथमपारणके मदादुद्भ्रान्तः पाटवर्धनहस्ती स्तम्भमुन्मूल्य निर्गतः अतस्तद्ग्रथाकुलो राजा जातः। नगरे राज्यकुले च भ्रमित्वा मुनिरलाभेन गतः। द्वितीयमासोपवासपारणके नगर्यामग्निदाहे राजा व्याकुलः। तृतीय मासोपवास पारणके जरासंध प्रेषित राजादेशो राजा व्याकुलः। अल:- भेन नगर्यां निर्गच्छन्तं मूर्च्छाविह्वलं तं मुनिं दृष्ट्वा एकलोकरिकया भणितम्—स्थापयन्तो लोका निवारिता: स्वयं च न स्थापयति मारितो ऽनेनाय महातपाः। एतदाकर्ण्य रुष्टेन गोवर्धनं गत्वा भणितास्ता विद्याः पापमुग्रसेनं मारयत। भणितं ताभिः — भगवन्न युक्तमिद तवानेन रूपेण। जन्मान्तरे तर्हि मदीया आज्ञा कर्तव्या। अमुमुग्रसेनमन्यभवे मारयिष्यामीति निदान कृत्वा मृत्वा रेवतीगर्भे ऽवतीर्णः क्षीयमाणशरीरां रेवती महादेवी दृष्ट्वा पृष्टा — केन कारणेन तव शरीर क्षीयते। कथितम्— पापिष्ठ दोहलकवशात्। कीदृशो दोहलकः। देव कथयितुं नायाति। अत्याग्रहेण पृष्टया कथितम् —यथा तव हृदयं विदार्य हस्तद्वयेन रक्तं पिबामीति। लेप्यमय- दोहलके तथाभूते पुत्रो जात.। उग्रसेनस्य तन्मुखवलोकयतः क्रूरां दृष्टिं कृत्वा मुष्टिबंद्धा। तत उग्रसेननामाङ्कितमुद्रिकारत्नकम्बलाभ्यां सह कसं मञ्जूषायां धृत्वा यमुनायां प्रवाहितः। कौशाम्ब्यां गङ्गभट्टकल्पपालस्य रञ्जोदर्या भार्यया जलार्थं गतया आनीता सा मञ्जूषा। कसनामा पुत्रः पोषितः। अष्टवार्षिकः परपुत्रपिट्टनोपालम्भान्निर्धाटितः। शौरिपुरे वसुदेवस्य शिष्यः सर्वशास्त्रदक्षो ऽभूत् वरं च लब्धवान्। अथ यथार्थनामा सिंहरथो राजा जरासन्धस्य न सिध्यति। तत सर्वसामन्तानां जरासन्धेन घोषणा दापिता।

मुनि की प्रथम पारणा के दिन राजा के यहाँ पाटवर्द्धन नामक हाथी मद से उद्भ्रान्त होकर खम्भा उखाड़कर निकल गया। अत: उससे राजा व्याकुल हो गया। नगर में और राजकुल में घूमकर मुनि बिना आहार लाभ के चले गए।

दूसरे मास के उपवास के अत्यान्तभोजन के समय नगरी में आग लग जाने पर राजा व्याकुल हो गया। तीसरे मास की उपवास की पारणा के दिन जरासंध के द्वारा भेजे हुए राजकीय आदेश के कारण राजा व्याकुल हो गया। (आहार) लाभ के बिना नगरी में निकलते हुए मूर्च्छा से विह्वल उन मुनि को देखकर एक वृद्धा ने कहा– ठहराते हुए लोग रोक दिए गए हैं, स्वयं ठहराता नहीं है, इसने इस महा–तपस्वी मुनि को मार दिया है। यह सुनकर रुष्ट हुए वसिष्ठ मुनि ने गोवर्द्धन पर्वत पर जाकर उन विद्याओं से कहा– पापी उग्रसेन को मारा डालो। उन विद्याओं ने कहा– भगवन्! इस रूप वाले तुम्हारे लिए यह उचित नहीं है। तो दूसरे जन्म में मेरी आज्ञा पूरी करना। इस उग्रसेन को दूसरे जन्म से मारूँगा, इस प्रकार निदान कर मर कर रेवती के गर्भ में अवतीर्ण हो गया। कमजोर होते हुए शरीर वाली रेवती महादेवी को देखकर (उग्रसेन ने) पूछा– किस कारण तुम्हारा शरीर क्षीण हो रहा है? उसने कहा- पापी दोहले के वश। कैसा दोहला? महाराज! कह नहीं सकती हूँ। अत्याग्रह पूर्वक पूछे जाने पर कह दिया कि तुम्हारे हृदय को विदीर्ण कर दोनों हाथों से रक्त पीऊं, इस प्रकार का दोहला है। पुतले रूप दोहले के द्वारा उसकी इच्छा पूरी किए जाने पर पुत्र हुआ। उग्रसेन जब उसके मुख को देख रहा था तो उसने क्रूर दृष्टि कर मुठ्ठी बांध ली। तब उग्रसेन नाम से अङ्कित मुद्रारत्न और कम्बल के साथ उस को पिटारी में रख-कर यमुना में प्रवाहित कर दिया गया। कौशाम्बी नगरी में गङ्गभट्ट नामक मद्य बेचने वाले की रुक्मोदरी नामक भार्या, जो कि जल लाने के लिए गई थी, उस पेटी को लाई। कंस नामक पुत्र पोषित हुआ जब वह आठ वर्ष का था तो दूसरे के पुत्रों को पीटने के उलाहने के कारण निकाल दिया गया। यथार्थ नाम वाला सिंह रथ नाम का राजा जरासंध के वश में नहीं होता था। तब जरासंध ने समस्त सामन्तों के

यः सिंहरथं बन्धयित्वा आनयति तस्मै जीवद्यशापुत्रीं वाञ्छितदेशं च ददामि। ज्येष्ठभ्रातृसमुद्रविजयादेशेन सर्वबलसमेतो वसुदेवो गतः। पोदनपुरसमीपे कटक धृत्वा सार्थवाहरूपेण पोदनपुरे गत्वा सिंहानां गूथमूत्राण्यानीय निजबलस्य तद्गूथसहनं कारयित्वा संग्रामे सिंहरथं विरथं कृत्वा वसुदेवेन कंससारथिर्भणितः- सिंहरथं बन्धय। तेन च बद्धः। तमादाय गतो वसुदेवो जरासन्धेन भणितः—मत्पुत्रीमभिमतदेशं च गृहाण। तेनोक्तम्-कंसेनायं बद्धो ऽस्मै देहि। कुल पृष्टेन कल्पपाली निजजननी कथिता तमालोकयन् तस्याः पुत्रो ऽयमिति न निर्णयः। साप्यानीता। भीतायान्ती मञ्जूषामादाय गतया भणितम्—देवास्या मञ्जूषायाः पुत्रो ऽयम्। तत्र रत्नकम्बलम् उग्रसेननामाङ्कितमुद्रिकां च दृष्ट्वा स ज्ञातो मम भागिनेय इति। राजपुत्रीं परिणीय रुष्टेन तेनोग्रसेनदेशं गृहीत्वा संग्रामे स धृतो नगरीगोपुरसमीपे पञ्जरमध्ये धृतो ऽलवणकञ्जिकेन कोद्रवकूरं भोजितो ऽतिमुक्तककुमारो ऽनिष्टान्मुनिरभूत्। कंसेन वसुदेवो गुरुरात्मसमीपमानीतः। मृत्तिकावतीपुर्यां कुरुवंश्यो राजा, देवकी भार्या, धनदेवी पुत्री, देवकी सा प्रतिपन्नभगिनी कंसेन वसुदेवाय दत्ता। एकदा देवक्याः प्रथमपुष्पचीरं शिरसि गृहीत्वा तूर्येण पुरीमध्ये नृत्यन्त्या जीवद्यशसा चर्यागतो ऽतिमुक्तकमुनिर्दिव्यज्ञानी दृष्टो भणितः। देव त्वमपि महोत्सवे नृत्यं कुरु। मुनिनोक्तम्—न मे कल्पते नृत्यम्। ततो मार्गं रुद्ध्वा अतिकदर्थितेन मुनिनोक्तम्—मूढे किं नृत्यसि देवक्याः पुत्रेण तव भर्ता हन्तव्य इत्याकर्ण्य तया पादेन मर्दितम्। पुनर्मुनिनोक्तम्—तव पिता तेनैव हन्तव्य इत्याकर्ण्य तच्चीरं स्फाटितम्। पुनरुक्तं मुनिना—

बीच घोषणा कराई। जो सिंहरथ को बाँधकर लायेगा उसे जीवद्यशा पुत्री और इष्टदेश दूँगा। बड़े भाई समुद्र विजय से पूछकर वसुदेव गया। पोदनपुर के समीप कटक ठहराकर व्यापारी के रूप में पोदन पुर जाकर सिंहों की विष्टा और मूत्र को लाकर अपनी सेना को वह विष्टा और मूत्र सहन कराकर संग्राम में सिंहरथ को रथरहित कर वसुदेव ने कंस नामक सारथि से कहा– सिंहरथ को बाँधो। उसने बाँधा। उसे लेकर गए हुए वसुदेव से जरासंध ने कहा– मेरी पुत्री और इष्टदेश ग्रहण करो। वसुदेव ने कहा– इस राजा को कंस ने बाँधा है, इसे दो। कुल पूछे जाने पर मद्य विक्रेता स्त्री को अपनी माँ कहा। उसे देखते हुए यह निर्णय नहीं होता था कि उसका पुत्र होगा। उस मद्य विक्रेता स्त्री को बुलाया गया। भयपूर्वक आती हुई पेटी को लाकर जाकर उसने कहा– यह पुत्र इस पेटी का है। उस पेटी में रत्नकम्बल और उग्रसेन नाम से अङ्कित मुद्रिका को देखकर उसे ज्ञात हुआ कि यह मेरा भानजा है। राजपुत्री से विवाह कर रुष्ट हुए उसने उग्रसेन के देश को ग्रहण कर संग्राम में उसे [उग्रसेन को] पकड़ लिया तथा नगर के दरवाजे के समीप पिंजरे में रखकर नमक और शाक रहित कोदों के भात को खिलाने लगा। अनिष्ट के कारण अतिमुक्तक कुमार मुनि हो गए। कंस वसुदेव को तथा गुरु को अपने समीप लाया।

मृत्तिकावती पुरी में कुरुवंश्य राजा, धनदेवी भार्या, तथा देवकी पुत्री थी। उस देवकी को कंस ने बहिन मानकर वसुदेव के लिए दे दी। एक बार देवकी के प्रथम पुष्पचीर को शिर पर रखकर बाजे के साथ नगर के मध्य में नृत्य करती हुई जीवद्यशा ने चर्या के लिए आए हुए अतिमुक्तक नामक दिव्यज्ञानी मुनि को देखा और कहा– महाराज! तुम भी महोत्सव में नृत्य करो। मुनि ने कहा– मैं नृत्य करने में समर्थ नहीं हूँ। तब वह मार्ग रोककर खड़ी हो गई। अत्यन्त अपमानित मुनि ने कहा– हे मूढ़! क्यों नाच रही हो? देवकी का पुत्र तुम्हारे पति को मारेगा, यह सुनकर वह वस्त्र उसने पैर से मला। पुनः मुनि ने फिर कहा– तुम्हारे पिता उसी देवकी के पुत्र से मारे जायेंगे। यह सुनकर उसने वह वस्त्र फाड़ डाला। मुनि ने

तव कुलमपि निर्मूलयितव्यं तेनैव । इत्याकर्ण्य दुःखिता गृहे आगत्य पतित्वा स्थिता । कंसेन पृष्टया तन्मुनिवचनं कथितम् । नान्यथा मुनि-भाषितमिति संचिन्त्य मत्वा प्रणम्य कंसेन वसुदेवः पूर्ववरं याचितो लब्ध-श्च । देवकीजातपुत्रो मया हन्तव्यः । देवकी च मम गृहे प्रसूतिं कुर्यादिति । तदाकर्ण्य देवक्या वसुदेवो भणितः—अहं तपो गृह्णामि पुत्रमरणदुःखं द्रष्टुं न शक्नोमि । ततो देवक्या सह गत्वा वसुदेवेनोद्याने फलिताम्रतले स्थितो ऽतिमुक्तकमुनिः पृष्टः— भगवान्, केन मत्पुत्रेण कंस-जरासन्धौ हन्तव्यौ । तत्प्रस्तावे हस्तधृताम्रशाखा देवक्या मुक्ता । तस्यास्त्रीणि फलयुगलान्यूर्ध्वं गतानि । एकं च फलं भूमौ पतितम् । पुनरेकमूर्ध्वं गतम् । तन्निमित्तमालो-क्योक्तं मुनिना देवक्यास्त्रीणि पुत्रयुगलानि निर्वाणगामीनि । सप्तमपुत्रेण हन्तव्यौ । अष्टमो ऽपि निर्वाणगामी पुत्रो भविष्यति । एवमेकदा देवकी कंसगृहे पुत्रयुगलं प्रसूता । तच्च देवतया भद्रिलपुरे श्रुतदृष्टिश्रेष्ठिनो ऽल-काश्रेष्ठिन्यास्तत्समये प्रसूतायाः समर्पितं तत्प्रसूतं मृतपुत्रयुगलं च देवक्यग्रे धृतं तच्च कंसेन शिलायामाहतम् । एवं तस्यास्त्रीणि पुत्रयुगलानि तत्र नीतानि । रोहिण्याष्टम्यां रात्रौ जले पतति सप्तममासे ऽपि सप्तमपुत्रं प्रसूता । वसुदेवेन स गृहीतः । बलभद्रेण छत्रं धृतम् । वृषभरूपेण शृङ्ग-दीपिका सा देवताग्रे चलिता । वासुदेवपादाङ्गुष्ठस्पर्शात्प्रतोलीकपाटयुग-लमुद्घाटितम् । जलभृतां यमुनां दत्तमार्गामुत्तीर्य मातृकागृहे प्रविश्य तस्याः पृष्ठे बालकं धृत्वा प्रच्छन्नौ स्थितौ । विवाहकाले देवक्याः क्षीरगृहं दत्तम् । तत्र यो महत्तरो नन्दनामा ऽपुत्रया तद्भार्यया यशोदया गन्धपुष्पा-दिभिर्मातृका पुत्रार्थमाराधिता । तस्यां रात्रौ तस्याः पुत्री जाता । रुष्टा यशोदा मातृकाग्रे तां धृत्वा निःसरन्ती —

फिर कहा– तुम्हारे कुल का भी निर्मूलन वही करेगा। यह सुनकर दु:खित हो घर में आकर पड़ गई। कंस के द्वारा पूछी जाने पर उस मुनि के वचन को कहा। मुनि का कहा हुआ अन्यथा नहीं होता है, ऐसा सोचकर मानकर, प्रणाम कर कंस ने वसुदेव से पूर्व वर माँगा, और प्राप्त किया– देवकी से उत्पन्न पुत्र को मैं मारूँगा। देवकी मेरे घर प्रसूति करे। उसे सुनकर देवकी से वसुदेव ने कहा– मैं तप ग्रहण करता हूँ, पुत्र के मरण के दु:ख को नहीं देख सकता हूँ। तब देवकी के साथ जाकर वसुदेव ने उद्यान में जाकर फले हुए आम के वृक्ष के नीचे बैठे अतिमुक्तक मुनि से पूछा– मेरा कौन सा पुत्र कंस और जरासंध को मारेगा। उस अवसर पर हाथ में पकड़ी हुई आम की शाखा को देवकी ने छोड़ दिया। उसके तीन फल–युगल ऊपर गए थे, एक फल भूमि पर गिर पड़ा। पुनः एक ऊपर गया। उस निमित्त को देखकर मुनि ने कहा– देवकी के तीन पुत्र युगल निर्वाणगामी हैं। सातवाँ पुत्र कंस और जरासंध को मारेगा। आठवाँ भी निर्वाणगामी पुत्र होगा। इस प्रकार एक बार देवकी ने कंस के घर दो पुत्र उत्पन्न किए। उन्हें देवी ने भद्रिलपुर में श्रुतदृष्टि सेठ की अलका नामक सेठानी को जिसने उसी समय प्रसव किया था, दे दिया और उसके द्वारा प्रसूत मरे हुए पुत्र युगल को देवकी के आगे रख दिया। उन्हें कंस ने शिला पर दे मारा। इस प्रकार उसके तीन पुत्र युगल वहाँ लाए गए। रोहिणी नक्षत्र में अष्टमी के दिन रात्रि में जल बरसते समय सातवें माह में ही सातवाँ पुत्र प्रसव किया। वसुदेव ने उसे ले लिया। बलभद्र ने उसके ऊपर छाता लगाया। वृषभरूपधारी देवी सींग पर दीपक रखकर आगे चली। वासुदेव के पैर के अँगूठे के स्पर्श से दरवाजे के दोनों किवाड़ खुल गए। जल से भरी हुई यमुना के द्वारा मार्ग दिए जाने पर माता के घर में प्रविष्ट होकर उसकी पीठ पर बालक रखकर प्रच्छन्न रूप से दोनों खड़े हो गए। देवकी के विवाह के समय क्षीरगृह दिया गया था। वहाँ पर जो नन्द नामक मुखिया था, पुत्र रहित उसकी यशोदा ने गन्ध पुष्पादि से मातृका की पुत्र हेतु आराधना की थी। उसी रात्रि उसकी पुत्री हुई। रुष्ट होकर उसे मातृका के आगे रखकर जब यशोदा जा रही थी तो

वसुदेवेन बालिकां मातृकाष्ठे धृत्वा बालकं चाग्रे धृत्वा भणिता हे यशोदे, पुत्रं गृहाण। तं गृहीत्वा तुष्टा गता। प्रभाते देवक्यग्रे तां पुत्रिकामालोक्य कंसेन नासिका तस्या भग्ना न मारिता। अथ गोष्ठे वासुदेवे वर्धमाने कंसेन निजगृहे नक्षत्रपाताद्युत्पातानालोक्य शकु (न) शर्मनामा नैमित्तिकः पृष्टः--किमुत्पाता जाताः। तेनोक्तम्--येन त्वं हन्तव्यः स गोष्ठे वर्धमानस्तिष्ठतीति। ततः पूर्वभवसिद्धा विद्यादेवताः स्मरणमात्रादेवा--गताः। भणिताश्च कंसेन--गोष्ठे मम शत्रुं मारयथ। बालकाले पूतना विद्या विषदुग्धस्तनी समायाता पीत्वा निर्धाटिता। काकदेवी चञ्चुपक्षत्रोटनेन निर्धाटिता। यमलार्जुना देवी चैकपादबद्धोलूखलेन भग्ना। शकटा--देवी पादप्रहारेण। तरुणकाले वृषभदेवी गलभञ्जनेन। अश्वदेवी गलमोटनेन। मेघदेवी सप्तदिने गोवर्धनोद्धरणेन। काली नागदेवी दमने पद्मा--नयनम्। चाणूरमल्लदेवी मर्दनैः। कंसो मारितः। उग्रसेनो राज्ये धृतः॥

(५०) लक्ष्मीमतिर्मानात्।

(कुणदि य माणो णीयागोदं पुरिसं भवेसु बहुगेसु।
पत्ता हु णीयजोणी बहुसो माणेण लच्छिमदी॥१२३६॥]

अस्याः कथा-- मगधदेशे लक्ष्मीग्रामे सोमदेवब्राह्मणस्य ब्राह्मणी लक्ष्मीमतिः रूपयौवनसौभाग्यैश्वर्यगर्विता सदा मण्डनप्रिया। एकदा पक्षोपवासिन समाधिगुप्तमुनिं चर्यायां धृत्वा प्रिये मुनिं भोजयेत्युक्त्वा प्रयोजनान्तरेण बहिर्गतः। सा चासनस्था मुखमादर्शे पश्यन्ती गर्विता मुनेर्दुर्वचनानि दत्त्वा विचिकित्सां कृत्वा द्वारं पिधाय स्थिता। तत्पापात्सप्तदिनैरुदुम्बरकुष्ठिनी जाता। सर्वैस्त्यक्ता अग्निं प्रविश्य मृता।

वसुदेव ने बालिका को मातृका के पीछे रखकर तथा बालक को आगे रखकर (यशोदा से) कहा- हे यशोदा ! पुत्र लो। उसे लेकर सन्तुष्ट होती हुई गई। प्रातः काल देवकी के आगे उस पुत्री को देखकर कंस ने उसकी नाक काट डाली, मारी नहीं।

अनन्तर गोष्ठ में वासुदेव के बढ़ने पर कंस ने अपने घर नक्षत्र-पात आदि उपद्रवों को देखकर शकुनशर्म नामक नैमित्तिक से पूछा- उत्पात क्यों हुए हैं ? उसने कहा- जो तुम्हें मारेगा, वह गोष्ठ में बढ़ता हुआ विद्यमान है। तब पूर्व भव में सिद्ध हुई विद्यादेवियाँ स्मरण मात्र से ही आ गई। कंस ने उनसे कहा- गोष्ठ में मेरे बढ़ते हुए शत्रु को मार डालो। बाल्यावस्था में पूतना विद्या जिसके स्तनों में बिषमय दुग्ध था। आई, दूध पीकर उसे निकाल दिया। काकदेवी चोंच और पंखों के तोड़ने से निकाल दी गई। यमलार्जुना देवी एक पैर में बँधे हुए उलूखल से भग्न हुई। शकटादेवी पैर के प्रहार से भग्न हुई। तरुणावस्था में वृषभ-देवी गला तोड़ने से भग्न हुई, अश्वदेवी गला मोड़ने से भग्न हुई। मेघ-देवी सात दिन गोवर्द्धन को धारण करने से भग्न हुई। काली नागदेवी का दमन करने पर (वसुदेव) कमल लाए। चाणूरमल्लदेवी मर्दन से भग्न हुई। कंस मार दिया गया। उग्रसेन को राज्य पर बैठाया गया।

(५०) मान का दुष्प्रभाव

मानकषाय जीव को बहुत भवतक नीच गोत्र में उत्पन्न करता है लक्ष्मीमति ब्राह्मणी मानकषाय से अनेक बार नीचगोत्र को प्राप्त हुई। [१२३६]

इसकी कथा- मगधदेश में लक्ष्मीग्राम में सोमदेव ब्राह्मण की रूप यौवन, सौभाग्य और ऐश्वर्य से गर्वित सदा मण्डनप्रिय लक्ष्मीमति नामक ब्राह्मणी थी। एक बार पक्षोपवासी समाधिगुप्त मुनि को चर्या के समय रोककर प्रिये ! मुनि को भोजन कराओ, ऐसा कहकर किसी दूसर प्रयोजन से ब्राह्मण बाहर चला गया। आसन पर बैठी हुई, मुख को शीशे में देखती हुई, गर्वित वह मुनि से खोटे वचन कहकर, निन्दा कर दरवाजा बन्दकर ठहरी। उस पाप से सात दिनों में ही उसे उदुम्बर नामक कोढ़ हो गया। सबने उसे त्याग दिया अतः आग में प्रवेश कर मरी :

तत्रैव रजकस्य गर्दभी जाता । दुग्धपानरहिता मृता । तत्रैव गर्तायां सूकरी । तत्रैव कुकुंटी । पुनस्तत्रैव कुकुंरी वने दवाग्निना दग्धा मृता । भृगुकच्छे नर्मदातीरे धीवरपुत्री दुर्गन्धा काणान मा जाता । नावा लोकमुत्तारयति । एकदा तं समाधिगुप्तमुनिं नदीतीरे दृष्ट्वा तया प्रणम्योक्तम् भगवन्मया क्वापि दृष्टो ऽसि । मुनिना कथितः पूर्ववृत्तान्तः । ततो जातिस्मरीभूय धर्ममादाय क्षुल्लिका जाता । मृत्वा स्वर्गं गता । तत आगत्य नर्मदातटे कुण्डिनपुरे राजा भीष्मो, राज्ञी यशस्वती, तयोः पुत्री रूपिणी जाता, वासुदेवेन परिणीतेति ॥

[५१] मायाशल्याद्बभूव पूतिमुखी इत्यादि ।

(पब्भट्ठबोधिलाभा मायासल्लेण आसि पूदिमुही ।
दासी सागरदत्तस्स पुप्फदंता हु विरदा वि ॥१२८६॥]

अस्या कथा— अजितावर्तनगरे राजा पुष्पचूलो, राज्ञी पुष्पदत्ता । अमरगुरुमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य राजा मुनिरभूत् । ब्रह्मिलार्यिकासमीपे राज्ञो आर्यिका जाता । सा राज्ञी कुलैश्वर्यमदेनार्यिकानां वन्दनां न करोति । सुगन्धद्रव्येण शरीरसंस्कारं कुर्वाणा निषिद्धापि मायया उत्तरं ददाति । कन्ति के स्वभावेन सुगन्धित शरीरं मे । एवं मायादोषेण मृत्वा चम्पायां राजश्रेष्ठिसागरदत्तस्य पूतिमुखी दासी बभूव ।

[५२] मरीचिभ्रमितश्चिरकालम् ।

[मिच्छत्तसल्लदोसा पियधम्मो साधुवच्छलो संतो ।
बहुदुक्खे ससारे सुचिरं पहिंडिओ मरीची ॥१२८७॥]

अस्य कथा— एकदा समवशरणे भरतेन वृषभदेवः पृष्टः । यो ऽयोध्यायां भरतचक्रवर्तिनः पुत्रो मरीचिः वृषभदेवेन सह मुनिरभूत्।

उसी स्थान पर धोबी की गधी हुई। दुग्धपान से रहित होकर मरी। उसी स्थान पर गड्ढे में सूकरी हुई। वहीं मुर्गी हुई। पुनः वहीं कुत्ता होकर वन में दावाग्नि से जलकर मरी। भृगुकच्छ में नर्मदा के तीर पर वह धीवर की पुत्री दुर्गन्धा हुई, उसका काणा नाम हुआ। वह नाव से लोगों को उतारती थी। एक बार उन समाधि गुप्ति मुनि को नदी के किनारे देखकर प्रणाम कर उसने कहा- भगवन् ! मैंने कहीं पर आपको देखा है। मुनि ने पूर्व वृत्तान्त कहा। तब जाति स्मरण होने पर धर्म ग्रहण कर क्षुल्लिका हो गई। मरकर स्वर्ग गई वहाँ से आकर नर्मदा के तट पर कुण्डनपुर के राजा भीष्म और रानी यशस्वती की पुत्री रुपिणी हुई, उसे कृष्ण ने विवाहा।

[५१] माया का परिणाम

गाथार्थ- विरत होने पर भी पुष्पदन्ता आर्यिका सम्यग्ज्ञान के लाभ से भ्रष्ट होकर माया शल्य के कारण सागरदत्त की पूतिमुखी (दुर्गन्धित शरीर को धारण करने वाली) दासी हुई। [१२८६]

इसकी कथा- अजितावर्त नगर में राजा पुष्पचूल और रानी पुष्पदत्ता थी। अमरगुरुमुनि के समीप धर्म सुनकर राजा मुनि हो गया। ब्रह्मिला नाम की आर्यिका के समीप रानी आर्यिका हो गई। वह रानी कुल और ऐश्वर्य के मद से आर्यिकाओं की वन्दना नहीं करती थी। सुगन्धित द्रव्य से शरीर का संस्कार करती हुई वह रोकी जाने पर भी माया पूर्वक उत्तर देती थी। मेरा शरीर स्वभाव से सुगन्धित है। इस प्रकार माया के दोष से मरकर राजश्रेष्ठी सागरदत्त की पूतिमुखी दासी हुई।

(५२) मिथ्यात्व शल्य

गाथार्थ- धर्मप्रिय तथा साधुवत्सल मरीचि ने मिथ्यात्व नामक शल्य के दोष से बहुत दुःख रूप संसार में बहुत काल तक भ्रमण किया। [१२७८]

इसकी कथा- अयोध्या में भरत चक्रवर्ती का जो मरीचि नामक पुत्र था, वह वृषभदेव के साथ मुनि हो गया। एक बार समवसरण

अग्रे त्रयोविंशतितीर्थंकरा भविष्यन्ति । तेषां मध्ये को ऽपि जीवस्तव समव सरणे किमस्ति न वा । कथितं देवेन—तव पुत्रो ऽय मरीचिमुनिरन्तिमतीर्थं करो भविष्यति । तदाकर्ण्य सम्यक्त्व व्रतं च परित्यज्य परिव्राजकादिरूपेण सांख्यादिमत प्रवर्त्य संसारे बहुतरकालं भ्रान्तः ॥

[५३] अयोध्यानगरे स गन्धमित्रो ऽपीत्यादि ।

(सरजूए गंधमित्तो घाणिंदियवसगदो विणीदाए ।
विसगंधपुप्फमग्घाय मदो णिरयं च सपत्तो ॥१३४५॥]

अस्य कथा— अयोध्यायां राजा विजयसेनो, राज्ञी विजयमतिः, पुत्रौ जयसेनगन्धमित्रौ । वैराग्याज्जयसेनाय राज्यं दत्त्वा गन्धमित्राय युवराजपद च दत्त्वा सागरसेनमुनिसमीपे मुनिरभूत् । गन्धमित्रेण राज्यमुद्दाल्य निर्घाटितो जयसेनः । स च तस्य मारणोपायं चिन्तयति । गन्धमित्रश्च घ्राणेन्द्रियासक्तः स्त्रीभिः सह सरयूनद्यां नित्य जलक्रीडां करोति तेन ज्ञात्वा जयसेनेन विषवासितनानासुगन्धकुसुमानि उपर्युपायेन मुक्तानि तान्याघ्राय मृतो गन्धमित्रो नरक गतः ॥

(५४) पञ्चालगीतशब्देन मूर्च्छिता गन्धर्वसेना इति ।

(पाडलिपुत्ते पंचालगीदसद्देण मुच्छिदा संती ।
पासादादो पडिदा णट्ठा गंधव्वदत्ता वि ॥१३४६॥]

अस्याः कथा— पाटलिपुत्रे राजा गन्धर्वदत्तो राज्ञी गान्धर्वदत्ता, पुत्री गान्धर्वसेना गान्धर्वमदगर्विता । यो मां गान्धर्वेण जेष्यति स मे भर्ता भविष्यतीति गृहीतप्रतिज्ञा । ततो बहवः क्षत्रियादयस्तया जिताः । तां वार्तां श्रुत्वा पोदनपुरात्पाञ्चालोपाध्यायः पञ्चशतच्छात्रैः सह वादार्थी पाटलिपुत्रमायातः । बहिरुद्याने स्थित्वा यदि को ऽपि परिचितः समायाति तदा मामुत्थापयिष्यथेति छात्रान् भणित्वा श्रान्तो ऽशोकतले सुप्तः । छात्राः पुरं

में भरत ने वृषभदेव से पूछा—आगे तेईस तीर्थंकर होंवे। उनमें कोई जीव आपके समवसरण में है या नहीं ? देव ने कहा-तुम्हारा पुत्र यह मरीचि मुनि अन्तिम तीर्थंकर होगा। उसे सुनकर सम्यक्त्व और व्रत छोड़कर परिव्राजक आदि के रूप में सांख्यादिमत का प्रवर्तन कर संसार में बहुत समय तक भ्रमण करता रहा।

[५३] घ्राणेन्द्रिय की पराधीनता

गाथार्थ—विनीता नामक नगरी का स्वामी गंधमित्र नामक राजा घ्राणेन्द्रिय के वश हुआ विषपुष्प की गन्ध सूँघकर मरा और नरक को प्राप्त हुआ। [१३५५]

इसकी कथा—अयोध्या नगरी में राजा विजयसेन, रानी विजयमती तथा उनके जयसेन और गन्धमित्र नामक दो पुत्र थे। वैराग्य से जयसेन के लिए राज्य देकर तथा गन्धमित्र के लिए युवराज पद देकर (राजा विजयसेन) सागरसेन मुनि के समीप मुनि हो गए। गन्धमित्र ने राज्य छीनकर जयसेन को निकाल दिया। वह उसके मारने का उपाय सोचने लगा। घ्राणेन्द्रिय से आसक्त गन्धमित्र स्त्रियों के साथ सरयूनदी में नित्य जलक्रीड़ा करता था। यह जानकर जयसेन ने विष से वासित अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्प उपाय पूर्वक उसके ऊपर छोड़े। उन्हें सूँघकर गन्धमित्र मर गया और नरक गया।

[५४] कर्णेन्द्रिय की पराधीनता

गाथार्थ—पाटलिपुत्र नगर में पञ्चालगीत के शब्द से मूर्च्छित हुई गन्धर्वदत्ता महल से गिर गई और नष्ट हुई। (१३५६)

इसकी कथा—पाटलिपुत्र में राजा गन्धर्वदत्त, रानी गन्धर्वदत्ता और गान्धर्वमद से गर्वित पुत्री गान्धर्वसेना थी। गान्धर्वसेना ने यह प्रतिज्ञा ली थी कि जो मुझे गान्धर्व विद्या में जीतेगा, वही मेरा पति होगा। अनन्तर उसने बहुत से क्षत्रियादिक जीत लिए। उस वार्ता को सुनकर पोदनपुर से पाञ्चालोपाध्याय पाँच सौ छात्रों के साथ वाद करने के लिए पाटलिपुत्र में आया। उद्यान के बाहर ठहरकर यदि कोई परिचित आता है तो मुझे उठा देना, इस प्रकार छात्रों से कहकर थका हुआ

द्रष्टुं गता: । सा गान्धर्वसेना विलासिनी तं द्रष्टुमायाता । एकच्छात्रं पृष्ट्वा वीणासमूहमध्ये तं च सुप्तं परिज्ञाय लालास्रवाहार्दितविकृताननमदन्तुरमालोक्य विरक्ता गन्धवस्त्रादिभिरशोकं पूजयित्वा गता । पाञ्चालेनाशोकं पूजितमालोक्य वृत्तान्तमाकर्ण्य विरूपकं जातमित्युक्त्वा राजानं दृष्ट्वा गान्धर्वसेनासमीपे प्रासादो याचित: । तत्र स्थित्वा परमेश्वरारातौ वीणाया सुस्वरं गीतमारब्धम् । गान्धर्वसेना च तदाकर्ण्य सक्ता तत्सन्मुखमागच्छन्ती प्रासादात्पतिता मृता संसारं दीर्घं गता ॥

[५५] मानुषमांसासक्त इत्यादि ।

(माणुसमंसपसत्तो कंपिल्लवदी तदेव भीमो वि ।
रज्जं भट्ठो णट्ठो मदो य पच्छा गदो णिरयं ॥१३५७॥]

अस्य कथा– काम्पिल्यनगरे राजा भीमो, राज्ञी सोमश्री:, पुत्रो भीमदास: । कुलक्रमेण नन्दीश्वराष्टदिनेषु जीवघातनिषिद्धघोषणायां दापितायां तेन भीमेन जिह्वेन्द्रियासक्तेन सूपकारो मांसं याचित: । तत्र च श्मशानान्मृतं बालकमानीय संस्कृत्य दत्तम् । तेन च तुष्टेन पृष्ट:– किं कारणमिदं मृष्टम् । लब्ध्वा ऽभयेन सत्यं कथितम् । तेनेदमेव मे देहीत्युक्तम् । तत: सूपकारो लड्डुकेन प्रपञ्चेन नित्यनित्यमेकैकं बाल मारयित्वा ददाति । जनेन ज्ञात्वा मन्त्रि(ण:)कुमारेण कथितम् । ततो भीमदासो राज्ये प्रतिष्ठापित: । भीम: सूपकारेण सह निःसारित: । विन्ध्यमध्ये सूपकारोऽपि तेन भक्षित: । मेखलपुरे गतो, वासुदेवेन मारितो नरकं गत: ॥

अशोकवृक्ष के नीचे सो गया। छात्र नगर देखने चले गए। वह गन्धर्वसेना स्त्री उसे देखने आई। एक छात्र से पूछकर वीणा के समूह के मध्य उसे सोया जानकर लार वगैरह गिरने से दु:खी तथा विकृत मुख वाले दाँत रहित उसे देखकर विरक्त हो गन्ध वस्त्रादि से अशोक की पूजा कर चली गई।

पाञ्चाल ने अशोक को पूजित देखकर वृत्तान्त सुनकर 'बुरा हो गया।' ऐसा कहकर राजा के दर्शनकर गान्धर्वसेना के समीप महल माँगा। वहाँ ठहरकर वीणा से सुस्वर गीत गाना प्रारम्भ किया। गान्धर्वसेना उसे सुनकर आसक्त होकर उसके सन्मुख आती हुई महल से गिर कर मर गई और दीर्घसंसार को प्राप्त हुई।

(५५) जिह्वेन्द्रिय की पराधीनता

गाथार्थ– मनुष्य के मांस में आसक्त कांपिल्य नगर का स्वामी भीम भी राज्य से भ्रष्ट हो, नष्ट होकर मरा तथा पश्चात् नरक को गया। [१३५७]

इसकी कथा– कापिल्य नगर में राजा भीम, रानी सोमश्री और पुत्र भीमदास था। कुल परम्परा से नन्दीश्वर पर्व के आठ दिनों में जीवों के घात का निषेध होने की घोषणा कराने पर भी जिह्वा इन्द्रिय के प्रति आसक्त उस भीम ने रसोई बनाने वाले से मांस माँगा। उस रसोइए ने श्मसान से मरे हुए बालक को लाकर पकाकर मांस दे दिया उसने सन्तुष्ट होकर पूछा-यह किस कारण स्वादिष्ट है। अभयप्राप्त कर रसोइए ने सब बात कह दी। उसने 'यही मुझे दिया करो,' ऐसा कहा। तब रसोइया लड्डू देकर नित्य एक एक बालक को मार कर देने लगा। लोगों से जानकर मन्त्रियों ने कुमार से कहा। तब भीमदास राज्य पर प्रतिष्ठापित हुआ भीम रसोइए के साथ निकाल दिया गया। विन्ध्य पर्वत के मध्य उसने रसोइए को भी खा लिया। मेखलपुर में गया हुआ वह वासुदेव के द्वारा मारा जाकर नरक गया।

[५६] चोरो बली सुवेग इत्यादि ।

[चोरो वि तह सुवेगो महिलारूवम्मि रत्तदिट्ठीओ ।
विद्धो सरेण अच्छीसु मदो णिरयं च सपत्तो ॥१३५७॥]

अस्य कथा– भद्रिलपुरे इभ्यो धनपतिः, भार्या धनश्रीः, पुत्रो भर्तृ–मित्रस्तस्य भार्या देवदत्ता । एकदा भर्तृमित्रादयो द्वात्रिंशदीश्वरवणिक्पुत्राः सभार्याः क्रीडितुमुद्यानं गताः । तत्र वसन्तसेनस्य श्रेष्ठिपुत्रस्योत्सङ्गे मस्तकं धृत्वा वसन्तमालाभार्या सुप्ता । तथा भर्तृमित्रस्य देवदत्ता वसन्त–मालया वसन्तसेनो भणितः- चूतमञ्जरीमिमां देहि कर्णपूरं करोमि । तेनोक्तम्-किमेवं स्थितो ददामि । १)उद्धो भूत्वा, वा एवं स्थितो देहीत्युक्ते तेन बाणः पुङ्खपरम्पराविधिनानीय दत्ता । तमालोक्य देवदत्तया भर्तृमित्रो ऽपि मञ्जरीं तथा याचितः । स च धनुर्वेदमजानन् लज्जितो ऽलीकोत्तरं दत्त्वा निजोत्तरीयं वस्त्रं तस्याः गण्डूकं कृत्वा निर्गतो द्रोणाचार्यसमीपे बहु रत्नानि दत्त्वा विशिष्टो धनुर्वेदः शिक्षितः । मेघपुरपत्तने राजा मेघसेनो, राज्ञी मेघवती, पुत्री मेघमाला सुरूपा सकलकलाकुशला । नैमित्तिकादेशात्तस्याश्चन्द्रवेधो रचितः । न को ऽपि तद्वेद्धुं समर्थः । भर्तृमित्रेणागत्य चन्द्रवेधं कृत्वा मेघमाला परिणीय द्वादशवर्षाणि तत्र स्थितः धनपतिधन–श्रीभ्यां वार्तां ज्ञात्वा भर्तृमित्रस्यानयनाय लेखाः प्रेषिताः । मेघमालया गृहीत्वा ते तस्य न दर्शिताः । धूर्तैकलेखवाहकेन बहिर्निर्गतस्य दर्शितो लेखस्तमवधार्य विधिनैकरथेन मेघमालया सहागच्छन्महाटव्यां सुवेगभिल्लाधिपतिचौरेण ग्रहीतुमारब्धः । युद्धे सर्वायुक्षये हस्ते बाणमेकमालोक्य भर्तृ–मित्रेण मेघमाला भणिता । प्रिये, रथादवतर त्वम् ।

---

१) रुद्रो भूत्वा

[५६] रूपासक्ति

गाथार्थ—सुवेग नामक चोर भी महिलाओं के रूप पर आसक्त दृष्टि वाला होने के कारण बाण द्वारा आँखों में बिधकर मरा और नरक को प्राप्त हुआ। (१३५८)

इसकी कथा—भद्रिलपुर में इभ धनपति, भार्या धनश्री, पुत्र भर्तृमित्र तथा उसकी भार्या देवदत्ता थी। एक बार भर्तृमित्र आदि बत्तीस धनी वणिक् पुत्र पत्नियों सहित खेलने के लिए उद्यान में गए। वहाँ पर वसन्तसेन नामक सेठ के पुत्र की गोद में मस्तक रखकर वसन्तमाला भार्या सो गई। भर्तृमित्र की गोद मे उसी प्रकार देवदत्ता सो गई। वसन्तमाला ने वसन्तसेन से कहा—इस आम्रमंजरी को दो, कर्णपूर बनाऊँगी। उसने कहा—क्या इस प्रकार स्थित रहते दूँ। उठने पर या इसी प्रकार स्थित रहते हुए दो। ऐसा कहने पर उसने बाण की पुङ्ख की परम्परा की विधि से लाकर वह आम्रमजरी दे दी। उसे देखकर देवदत्ता ने भर्तृमित्र से भी उसी प्रकार मञ्जरी माँगी। वह धनुर्वेद को नहीं जानता था अत: लज्जित हो झूठा उत्तर देकर अपने दुपट्टे को उसका तकिया बनाकर निकल गया। द्रोणाचार्य के समीप बहुत रत्नों को देखकर उसने विशिष्ट धनुर्वेद सीखा। मेघपत्तनपुर में राजा मेघसेन, रानी मेघवती तथा समस्त कलाओं में कुशल सुन्दर रूप वाली मेघमाला पुत्री थी। नैमित्तिक के आदेश से उसका चन्द्रवेध रचा गया। उसे बेधने में कोई समर्थ नहो हुआ। भर्तृमित्र आया और चन्द्रवेध को कर मेघमाला से विवाह कर वहाँ बारह वर्ष रहा। धनपति और धनश्री ने समाचार जानकर भर्तृमित्र को लाने के लिए लेख भेजे। मेघमाला ने लेकर वे उसे नहीं दिखाए। धूर्त एक लेखवाह ने जब वह बाहर निकल रहा था तब उसे लेख दिखलाया। उसे निश्चय कर विधिपूर्वक एक रथ से मेघमाला के साथ जब वह आ रहा था तो महाजगल में सुवेग नामक भीलों के अधिपति चोर ने पकड़ना आरम्भ किया। युद्ध में समस्त आयुधों के नष्ट हो जाने पर एक बाण देखकर भर्तृमित्र ने मेघमाला से कहा—प्रिये! तुम रथ से

तस्या अवलरन्त्या सुवेगो रूप पश्यन्नासक्तो भर्तृमित्रेणाक्षणोर्बाणेन विद्धो मृतो नरकं गतः ॥

(५६)गृहपतिगृहिणीत्यादि ।

[फासिदिएण गोवे सत्ता गिहवदिपिया वि णासक्के ।
मारेदूण सपुत्त धूसाए मारिदा पच्छा ॥१३५६॥]

अस्य कथा– आभीरदेशे नासिक्यनगरे गृहपति सागरदत्तो, भार्या नागदत्ता, पुत्र. श्रीकुमार., पुत्री श्रीषेणा। निजेन नन्दगोपालकेन सह नाग दत्ता कुकर्मरता जाता। एकदा नागदत्तासंकेतितो नन्दः शरीरकारणमिष कृत्वा गृहे स्थितः। सागरदत्तः पश्चिमरात्रौ गोधन गृहीत्वा अटव्यां गत– स्तत्र सुप्तश्च नन्देन गत्वा मारितः । ततो नागदत्तानन्दौ कालासक्तौ स्थितौ। श्रीकुमारो नागदत्ताया उपरि नित्यं जूरयति। ततो रुष्टया नाग दत्तया भणितो नन्दः– श्रीकुमारमपि मारय। श्रीषेणयापि तच्च ज्ञातम् एकदा नन्दो गृहे शरीरकारणव्याजेन स्थितः। श्रीकुमारः पश्चिमरात्रौ गोधनं गृहीत्वा गच्छन् भगिन्या भणितः– यथा तव पिता नन्देन मारितः तथा नागदत्तावचेनेनाद्य त्वमपि मार्यसे लग्नो यत्नं कुर्याः। ततोऽटव्यां काष्ठमेकं निजवस्त्रेण प्रच्छाद्य श्रीकुमारस्तिरोहितः स्थितः नन्देनागत्य खड्गेनाहतो काष्ठे । पृष्ठे सेल्लेनाहत्य नन्दो मारितः। प्रभाते दोहनार्थं गोधनं गृहीत्वा श्रीकुमारो गृहमागतो जनन्या पृष्टः–मया नन्दस्त्वां गवेष- यितुं प्रेषितः। स क्व तिष्ठति। तेनोक्तम् –मे सेल्लो ऽयं जानाति। सेल्लं रक्तलिप्तमालोक्य रुष्टया तया स उपविष्टो मुसलेनाहत्य मारितः। श्रीषे णया च सा मुसलेनाहत्य मारिता। सर्वे नरकं गताः ॥

उतरो। उसके रथ से उतरने पर सुवेगा रूप को देखकर आसक्त हो गया। मर्तृमित्र ने उसकी आँख बाण से बींध दी। सुवेगा मरकर नरक गया।

[५७] स्पर्शनेन्द्रिय का लोभ

गाथार्थ—नासिक्य नामक ग्राम में गृहपति की स्त्री ने स्पर्शनेन्द्रिय के विषय के कारण गोप में आसक्त हो अपने पुत्र को मार दिया, अनन्तर अपनी पुत्री के द्वारा मारी गई। [१३५६]

इसकी कथा—आभीर देश में नासिक्य नगर में गृहपति सागरदत्त, भार्या नागदत्ता, पुत्र श्रीकुमार तथा पुत्री श्रीश्रेणा थी। अपने नन्दगोपाल के साथ नागदत्ता कुकर्मरत हो गई। एक बार नागदत्ता से संकेत पाया हुआ नन्द शरीर सम्बन्धी बहाने को कर घर में रह गया। सागरदत्त रात्रि के अन्तिम प्रहर में गोधन को लेकर जंगल में गया, और वहाँ पर सो गया और नन्द ने जाकर मार दिया। अनन्तर नागदत्ता और नन्द कामासक्त होकर रहे। श्रीकुमार नागदत्ता के ऊपर नित्य घूरता था। तब रुष्ट होकर नागदत्ता ने नन्द से कहा—श्रीकुमार को भी मार डालो। श्रीषेणा ने भी यह बात जान ली। एक बार नन्द घर में शारीरिक बहाने से ठहर गया। जब श्रीकुमार रात्रि के अन्तिम प्रहर गोधन को लेकर जा रहा था तो बहिन से कहा—जैसे तुम्हारे पिता को नन्द ने मार डाला उसी प्रकार नागदत्ता के कहने से आज तुम भी मारे जाओगे, यत्न करने में लग जाओ। तब जंगल में एक लकड़ी को अपने वस्त्र से ढककर श्रीकुमार छिपकर खड़ा हो गया। नन्द ने आकर तलवार से लकड़ी पर प्रहार किया। पीछे भाले से मारा जाकर नन्द मर गया। प्रातः काल दुहने के गोधन लेकर श्रीकुमार घर आया तो माँ ने पूछा—मैंने नन्द को तुम्हें ढूँढने के लिए भेजा था। वह कहाँ है? उसने कहा—इसे मेरा भाला जानता है। भाले को खून से लिप्त देखकर रुष्ट नागदत्ता ने बैठे हुए श्रीकुमार को मूसल से प्रहार कर मार दिया। श्रीषेणा ने उस नागदत्ता को मूसल से प्रहार कर मार दिया। सब नरक गए।

(५८) दग्धा द्वीपायनेत्यादि ।

(बारवदी य असेसा दड्ढा दीवायणेण रोसेण ।
बद्धं च तेण पावं दुग्गदिभयबंधणं घोरं ।।१३७४।।)

अस्य कथा- द्वारावतीनगर्यां राजानौ नवमबलभद्रवासुदेवौ । एकदोर्जयन्तपर्वते ऽरिष्टनेमिं समवसरणस्थं वन्दित्वा धर्ममाकर्ण्य बलभद्रेण पृष्टम्–भगवन्, कियत्कालमीदृशी विभूतिर्वासुदेवस्य भविष्यति । भगवतोक्तम्-द्वादश वर्षाणि । ततो मद्याद् यादवानां विनाशो भविष्यति । तव मातुलद्वीपायनकुमारकोपाग्निना द्वारावत्या दाहः । अनया तव क्षुरिकया जरत्कुमारहस्तेन वासुदेवस्य मरणम् । एतद कर्ण्य गत्वा मद्यमूर्जयन्तगुहायां निक्षिप्तम् । द्वीपायनो मुनिर्भूत्वा पूर्वदेशं गतः । बलभद्रेण क्षुरिका अतीव घृष्ट्वा सूक्ष्मा समुद्रे निक्षिप्ता मत्स्येन गृहीता । तस्मात्पारम्पर्येण विन्ध्य प्रविष्टजरत्कुमारेण प्राप्य बाणाग्रे दत्ता। ततो द्वादशवर्षेषु गतेषु द्वीपायन मुनिरधिकमासाज्ञागत्य गिरिनगरसमीपे उष्ट्रग्रीवपर्वते आतापनेन स्थितः । तस्मिन्नेव दिने शम्बुकुमारादिभिः क्रीडार्थमूर्जयन्ते गतैस्तृषितैर्मद्यजलं पीत्वा मत्तैरागच्छद्भिर्बलदेववासुदेवाभ्यां द्वीपायनमुने रक्षार्थं कृतपाषाणवृत्तिमालोक्य तैः स मुनिः पाषाणैः पूरितः । तस्यातीव रुष्टस्य निर्गतकोपाग्निना द्वारवती प्रज्वालिता । वार्तामाकर्ण्य बलभद्रवासुदेवाभ्यामागत्य प्रणम्य क्षमां कारितः ।बृहद्वेलायां द्वे अङ्गुली दर्शिते । ततस्तौ द्वौ मुक्त्वान्यत्सर्वं दग्धम् । जरत्कुमारेणाटव्यां तेनैव बाणेन सुप्तो हतो वासुदेवः । बलभद्रस्तन्मृतकं वहमानः पूर्वभवमित्रेण देवेन सबोधितस्तुङ्ग्यां तपः कृत्वा ब्रह्मस्वर्गे देवो जातः ।।

(५८) क्रोध का दुष्परिणाम

भावार्थ—समस्त द्वारावती नगरी रोष से दीपायन के द्वारा जला दी गई तथा उसने दुर्गति, भय तथा बन्धन के घोर पाप का बंध किया। [१३७४]

इसकी कथा—द्वारावती नगरी में नवम् बलभद्र और वासुदेव दो राजा थे। एक बार गिरनार पर्वत पर समवसरण में स्थित अरिष्ट नेमि की वन्दना कर धर्म सुनकर बलभद्र देव ने पूछा—भगवन्! वासुदेव (कृष्ण) की कितने काल तक यह विभूति रहेगी। भगवन् ने कहा-बारह वर्ष। अनन्तर मद्य से यादवों का विनाश हो जायगा। तुम्हारे मामा द्वीपायन कुमार की कोपाग्नि से द्वारावती का दाह होगा। इस तुम्हारी क्षुरी से जरत्कुमार के हाथ वासुदेव का मरण है। यह सुनकर जाकर मद्य को गिरनार पर्वत की गुफा में फेंक दिया गया। द्वीपायन मुनि होकर पूर्व देश में चले गए। बलभद्र के द्वारा अत्यन्त घिसकर सूक्ष्म की गई क्षुरी समुद्र में फेंक दी गई, जिसे मत्स्य ने ग्रहण कर लिया। वहाँ से परम्परा से विन्ध्याचल में प्रविष्ट जरत्कुमार ने उसे पाकर बाण के अग्रभाग में लगा दिया। अनन्तर बारह वर्ष बीत जाने पर द्वीपायन मुनि अधिक माहों को न जानते हुए आकर गिरिनगर के समीप उप्ट्रग्रीव पर्वत पर आतापन योग से स्थित हो गए। उसी दिन शम्बु कुमार आदि क्रीडा के लिए गिरनार पर्वत पर गए। प्यासे होकर मद्य का जल पीकर मतवाले होकर आने वाले उन्होंने बलदेव और वासुदेव के द्वारा द्वीपायन मुनि से रक्षा के लिए बनाए गए पत्थर के घेरे को देखकर मुनि को पत्थरों से चूर दिया अत्यन्त रुष्ट उनकी निकली हुई कोपाग्नि ने द्वारवती को जला दिया। समाचार सुनकर बलभद्र और वासुदेव ने आकर प्रणाम कर क्षमा कराई। बहुत कम बाद द्वीपायन ने दो अंगुली दिखलाई। अनन्तर उन दोनों को छोड़कर अन्य सब जला दिया। जरत्कुमार ने जंगल में उसी बाण से सोए हुए वासुदेव को मार डाला। बलभद्र उनके मृत शरीर को वहन कर रहे थे। पूर्वभव के मित्र देव के संबोधित किए जाने पर तुङ्गीगिरि पर तप कर ब्रह्मस्वर्ग में देव हुए।

[५६] सगरस्य राजसिहस्येत्यादि ।

[सट्ठि साहस्सीओ पुत्ता सगरस्स रायसीहस्स ।
अदिबलवेगा सता णट्ठा माणस्स दोसेण ॥१३८१॥]

अस्य कथा– जम्बूद्वीपे अपरविदेहे रत्नसंचयपुरे राजा जयसेनो, राज्ञी जयसेना, पुत्रौ रतिषेणधृतिषेणौ। एकदा रतिषेणमरणे जयसेनो ऽतिशोकं कृत्वाशातनकं कर्म बद्ध्व। धृतिषेणाय राज्यं दत्त्वा मह रुतनाम्ना सामन्तेन सह तपो गृहीत्वा सन्यासेन मृत्वा ऽच्युते महाबलनामा देवो जातः। महारुतसामन्तो ऽपि तत्रैव मणिकेतुनामा देवो जातः। तत्र परस्परं ताभ्यां भणितम्–यः प्रथमं मानुष्यभवं प्राप्नोति स इतरेण सबोधनीयः। अथायोध्यायां राजा समुद्रविजयो, राज्ञी विजया, महाबलदेवश्च्युत्वा तत्पुत्रः सगरचक्रवर्ती जातः। एकदा सगरकारितवसतिकायां जनक्षोभकार्यातिशयेन सुन्दरं नवयौवनभरं मुनिरूपमादाय मणिकेतुदेवेन सबोधितः सगरो न वैराग्यं गतः। पुनरपि अयोध्यासमीपे चतुर्मुखमुनिकेवलज्ञानोत्पत्तौ समवसरणे तेन सबोधितो, न वैराग्यं गतः। एकदा षष्टिसहस्रपुत्रैरतुलबलवीर्यैरतिगर्वितैः कीर्त्यर्थिभिः सगरो भणितः–देव, आदेश देहि असाध्य च साधयामः। भणितं तेन–न किमप्यसाध्यं ममास्ति, सर्वं सिद्धम्। पुनरपि तैरुक्तम्–तथापि किमप्यादेह देहि। ततस्तेनोक्तम् – कैलासगिरौ भरतचक्रवर्तिकारितरत्नसुवर्णमयप्रतिमानां रक्षार्थं खातिकां कुरुत। इत्याज्ञां प्राप्य गतास्ते। दण्डरत्नेन गङ्गाखातिकायां कृतायां तेन मणिकेतुदेवेन भणितास्ते–मदीयं भवनं भवद्भिरात्मनाशार्थं विनाशितम्। इत्युक्त्वा तन्मिषं कृत्वा भीमभगीरथौ मुक्त्वा मायया सर्वे च भस्मीकृताः। भीमभगीरथौ सिंहासनस्थौ दृष्ट्वा अन्येषां मन्त्रिवचनान्मरणं ज्ञात्वा सगरो

(५६) मान का दुष्परिणाम

गाथार्थ–सगर नामक चक्रवर्ती के आठ हजार पुत्र अत्यन्त बल वेग होने के कारण मान के दोष से नष्ट हुए। [१३८१]

इसकी कथा–जम्बूद्वीप में अपरविदेह क्षेत्र में रत्नसंचयपुर में राजा जयसेन, रानी जयसेना तथा (उनके) रतिषेण और धृतिषेण दो पुत्र थे। एक बार रतिषेण का मरण हो जाने पर जयसेन अत्यन्त शोक कर असाता कर्म बाँधकर धृतिषेण को राज्य देकर महारुत नामक सामन्त के साथ तप ग्रहण कर सन्यास पूर्वक मरकर अच्युत स्वर्ग में महाबल नामक देव हुआ। महारुत नामक सामन्त भी वहीं मणिकेतु नामक देव हुआ। वहाँ पर उन दोनों ने एक दूसरे से कहा-जो पहले मनुष्यभव पायगा, वह दूसरे के द्वारा सम्बोधित होगा।

अयोध्या नगरी में राजा समुद्रविजय तथा रानी विजया थी, महाबल देवच्युत होकर उसका पुत्र सगरचक्रवर्ती हुआ। एक बार सगर के द्वारा बनवाई हुई वसतिका में जनक्षोभरूप कार्य के अतिशय के द्वारा सुन्दर नौजवान से पूण मुनिरूप को ग्रहण कर मणिकेतु देव के द्वारा सम्बोधित सगर वैराग्य को प्राप्त नहीं हुआ। पुनः अध्योया के समीप चतुर्मुख मुनि के केवलज्ञानी की उत्पत्ति होने पर समवसरण में उनसे सबोधित हुआ वैराग्य को प्राप्त नहीं हुआ। एक बार अतुल्य बल और वीर्य से अत्यन्त गर्वित साठ हजार पुत्रों ने कीर्ति के लिए सगर से कहा–महाराज! आदेश दीजिए, जिससे हम असाध्य कार्य की सिद्धि करें। सगर ने कहा–मेरे लिए कुछ असाध्य नहीं है, सब सिद्ध है। पुनः उन्होंने कहा–तो भी कुछ आदेश दो। तब उसने कहा–कैलाश पर्वत पर भरत चक्रवर्ती द्वारा बनवाई हुई रत्न और सुवर्णमयी प्रतिमाओं की रक्षा के लिए खाई बनाओ। यह आज्ञा पाकर वे चले गए। दण्डरत्न के द्वारा गङ्गारूप खाई बनाने पर उस मणिकेतु देव ने उनसे कहा–मेरा भवन आप लोगों ने अपने विनाश के लिए नष्ट किया, ऐसा कहकर इस बात का बहाना बनाकर भीम और भगीरथ को छोड़कर माया से सबको भस्म कर दिया। भीम और भगीरथ दोनों को सिंहासन पर स्थित देखकर अन्य मन्त्रियों के वचनों से

वैराग्यं गतः । मणिकेतुदेवेन ब्रह्मचारिरूपमादाय संबोधितः । भगीरथाय राज्यं दत्त्वा भीमसेनेन सह तपः कृत्वा मोक्षं गतः मणिकेतुदेवेनोत्थापितास्ते सगरपुत्रास्तां वार्तामाकर्ण्य तपो गृहीत्वा मोक्षं गताः । भगीरथोऽप्येकदा वरदत्तपुत्राय राज्यं दत्त्वा तपो गृहीत्वा गङ्गातटे कायोत्सर्गेण स्थितः । क्षीरसमुद्रजलेन देवैस्तस्य पादौ धौतौ । तज्जलं देवैर्वन्द्यमानं गङ्गायां पतितम् । ततः वन्द्या पवित्रा भागीरथी जाता । भगीरथश्च तत्रैव निर्वाणं गतः ॥

[६०] भरतग्रामस्य कुम्भकारेणेत्यादि

(सस्सो य भरधगामस्स सत्त संवच्छराणि णिस्सेसो ।
दड्ढो डमणदोसेण कुंभकारेण रुट्ठेण ॥१३८८॥)

अस्य कथा– अङ्गदेशे वटग्रामे कुम्भकारः सिंहनामा भाजनानि विक्रेतुं बलीवर्दान्भृत्वा भरतग्रामं गतः । तत्रत्यनारीभिः मायया परकीयगृहाणि तस्य दर्शयित्वा प्रभाते मूल्यं दास्याम इति भणित्वा सर्वभाजनानि नीतानि । प्रभाते कतिपयधूर्तैरागत्य गीतवादादिभिस्तं मोहयित्वा बलीवर्दा अपि नीताः । भाजनमूल्यं तस्य याचयतो न मया गृहीतमिति सर्वस्त्रीभिर्भणितम् । ततः सप्त वर्षाणि बलीकृत धान्यं ग्राममहितमत्यन्तकुपितेन दग्धम् ॥

[६१] साकेतपुरे सीमंधरस्य पुत्रो मृगध्वजो नामेत्यादि ।

[सव्वे वि गंथदोसा लोभकसायस्स हुंति णादव्वा ।
लोभेण चेव मेहुणंहिंसालियचोज्जमाचरदि ॥१३९२॥]

अस्य कथा– अयोध्यायां राजा सीमंधरो, राज्ञी अजितसेना, पुत्रो मृगध्वजः । राजकीयो भद्रमहिषो भणितो गच्छत्यागच्छति पादयोश्च पतति । तं राजकीयोद्याने पुष्करिण्यां क्रीडन्तं दृष्ट्वा तेन मृगध्वजकुमारेण

मरण जानकर सागर को वैराग्य हो गया। मणिकेतु देव ने ब्रह्मचारी का रूप बनाकर सगर को संबोधित किया। भगीरथ को राज्य देकर भीमसेन के साथ तप कर सगर मोक्ष चले गए। मणिकेतु देव के द्वारा उठाए हुए वे सगरपुत्र उस समाचार को सुनकर तप कर मोक्ष चले गए। भगीरथ भी एक बार वरदत्त नामक पुत्र को राज्य देकर तप ग्रहणकर गङ्गा के किनारे कायोत्सर्गपूर्वक खड़े हो गए। क्षीरसमुद्र के जल से देवों ने उनके दोनों पैर धोए। देवों के द्वारा वन्द्यमान वह जल गङ्गा में गिर गया। तब से भागीरथी वन्दनीय और पवित्र हो गई। भगीरथ वहीं निर्वाण को प्राप्त हुए।

[६०] माया का दुष्परिणाम

गाथार्थ–रोष को प्राप्त हुए कुम्भकार ने कपट के दोष से भरत ग्राम का समस्त धान्य सात वर्ष तक जलाया। [१३८८]

इसकी *कथा– अङ्गदेश के वटग्राम में सिंह नामक कुम्हार* वर्तन बेचने के लिए बैलों को भरकर (लादकर) भरत ग्राम को गया। वहाँ की नारियों ने माया पूर्वक दूसरे के घरों को दिखाकर प्रातःकाल मूल्य देंगे, ऐसा कहकर समस्त वर्तन ले लिए। प्रातःकाल कुछ धूर्तों ने आकर गाने, बजाने आदि के द्वारा उसे मोहित कर बैल भी ले लिए। जब उसने वर्तनों का मूल्य माँगा तो समस्त स्त्रियों ने कहा- मैंने नहीं लिया है। तब उसने सात वर्ष तक खलिहान के धान्य को गाँव का अहित करने के लिए अत्यन्त कुपित होकर जलाया।

[६१] लोभ का दुष्परिणाम

गाथार्थ– लोभकषाय के धारक के समस्त परिग्रहसम्बन्धी दोष होते हैं। लोभ से ही ही मैथुन, हिंसा, झूठ तथा चोरी का आचरण करता है। (१३६२)

इसकी कथा– अयोध्यापुरी में राजा सीमन्धर, रानी अजितसेना तथा पुत्र मृगध्वज था। राजकीय भद्र भैंसा पुकारे जाने पर जाने आने लगा और दोनों चरणों में गिरने लगा। उसे राजकीय उद्यान में तालाब में क्रीडा करते हुए देखकर मांसासक्त मृगध्वज कुमार ने, जो

मन्त्रिश्रेष्ठिपुत्राभ्यां सह क्रीडितुं तत्रागतेन मांसासक्तेनोक्तम्-पश्चिम-चटुकमस्य महिषस्य मे देहीति । भृत्येन च चटुके छिन्ने भद्रमहिषस्त्रिभिः पादैर्गत्वा राजाग्रे पतित संन्यासं पञ्चनमकारांश्च नृपतः प्राप्य सौधर्मे देवो जातः । तं वृत्तान्तं ज्ञात्वा रुष्टेन राज्ञा सिद्धार्थ मन्त्री भणितस्त्रीनपि तान् मारय । त्रिभिरपि तां वार्तामाकर्ण्य मुनिदत्ताचार्यसमीपे तपो गृहीत्वा परमवैराग्यात् घातिक्षयं कृत्वा मृगध्वजेन केवलमुत्पादितम् ॥

[६२] रामस्य जामदग्न्यस्येत्यादि ।

[रामस्स जामदग्गिस्स वज घित्तूण कत्तिविरिओ वि ।
णिधण पत्तो सकुलो ससाहणो लोभदोसेण ॥१३६३॥]

अस्य कथा– अयोध्यायां राजा कार्यवीर्यो राज्ञी पद्मावती । अटव्यां तापसपल्लिकायां तापसो जमदग्निर्भार्या रेणुका पुत्रौ श्वेतराममहेन्द्ररामौ । एकदा रेणुकाया भ्राता वरदत्तमुनिः पल्लिकासमीपे वृक्षमूलं गृहीतवान् । तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य रेणुकया सम्यक्त्वं गृहीतम् । भगिन्यां स्नेहाद् वरदत्त मुनिः परशुविद्यां कामधेनुविद्यां च दत्त्वा गतः । एकदा कार्तवीर्यो राजा हस्तिधरणार्थं वनमागतो जमदग्निना कामधेनुमाहात्म्येन महाविभूत्या भोजनं कारितः । स च लोभात्सङ्ग्रामे जमदग्निं व्यापाद्य कामधेनुं कार्त-वीर्यो गृहीत्वा गतः । समिधादिकं गृहीत्वा श्वेतराममहेन्द्ररामौ समायातौ श्वेतरामेणालोक्य रेणुका पृष्टा– किमिति दुःखिता तिष्ठसि । रेणुकया कथिते वृत्तान्ते पुत्रौ योद्धुं चलितौ । रेणुकाया दत्तां परशुविद्यां गृहीत्वा ऽयोध्यायां गत्वा श्वेतरामेण सबलवाहनः कार्तवीर्यो मारितो नरकं गतः । ततः श्वेतरामः परशुरामनामा सार्वभौमो राजा जातः ॥

कि मन्त्रि और सेठ के पुत्रों के साथ क्रीड़ा के लिए आया था, कहा- 'इस भैंसे की पिछली टांग मुझे दो'। नौकर ने जब टांग तोड़ी तो वह महिष तीन पैरों से जाकर राजा के आगे गिर गया तथा राजा से सन्यास और पञ्चनमस्कार मन्त्र पाकर सौधर्म स्वर्ग में देव हो गया। उस वृत्तान्त को जानकर दुष्ट राजा ने सिद्धार्थ मन्त्री से कहा– उन तीनों को भी मार दो। तीनों ने उस समाचार को सुनकर मुनिदत्ता-चार्य के समीप तप ग्रहण किया। परमवैराग्य से घातिकर्मों का क्षय कर मृगध्वज ने केवल ज्ञान उत्पन्न किया।

[६२] लोभ का दोष

गाथार्थ– जामदग्नि राम की गाय को ग्रहण करके लोभ के दोष से सेना तथा कुल सहित कार्यवीर्य निधन को प्राप्त हुआ। [१३६३]

इसकी कथा–अयोध्यानगरी में राजा कार्तवीर्य और रानी पद्मा-बती थी। जंगल में तापसों की वस्ती में तापस जमदग्नि, भार्या रेणुका और (उसके दो पुत्र श्वेतराम और महेन्द्रराम थे। एक बार रेणुका के भाई वरदत्त मुनि ने बस्ती के समीप एक वृक्ष के मूल को ग्रहण किया अर्थात् एक वृक्ष के नीचे बैठे। उन्ही के समीप धर्म सुन-कर रेणुका ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। बहिन के प्रति स्नेह होने के कारण वरदत्तमुनि परशुविद्या और कामधेनु विद्या को देकर चले गये एक बार कार्तवीर्य राजा हाथी पकड़ने के लिए जंगल में आया। जम दग्नि ने कामधेनु के माहात्म्य से महाविभूति से भोजन कराया। लोभ से संग्राम में जमदग्नि को मारकर वह राजा कार्तवीर्य कामधेनु को लेकर चला गया। समिधादिक लेकर श्वेतराम और महेन्द्रराम आए श्वेतराम ने देखकर रेणुका से पूछा– दुःखित होकर क्यों बैठी हो ? रेणुका के द्वारा वृत्तान्त कहे जाने पर दोनों पुत्र युद्ध करने के लिए चल पड़े। रेणुका द्वारा दी हुई परशुविद्या को लेकर अयोध्या में आकर श्वेतराम ने सेना और वाहन के साथ कार्तवीर्य को मार दिया। कार्तवीर्य नरक गया। अनन्तर श्वेतराम परशुराम नामक सार्वभौम राजा हुआ।

(६३) नित्यं च खाद्यमानो भल्लूकेत्यादि

(भल्लुंकीए तिरत्तं खज्जंतो घोरवेदणट्टो वि।
आराधणं पवण्णो झाणेणावंतिसुकुमालो ।।१५३९।।]

अस्य कथा— कौशाम्बीनगर्यां राजा अतिबल., पुरोहित: सोमशर्मनामा भार्या काश्यपी, पुत्रावग्निभूतिवायुभूती। सोमशर्मणि मृते गोत्रिभिर्गृहीत तत्पदं मूर्खत्वात्तयो राज्ञा न दत्तं पदम्। ततो ऽभिमानाद्राजगृहनगरे निज पितृव्यसूर्यमित्रसमीप गतौ। वार्ता च कथिता। तेन च भिक्षाभोजनेन ।।

"षडङ्गानि चतुर्वेदा मीमांसान्यायविस्तर ।
धर्मशास्त्रं पुराण च विद्या एताश्चतुर्दश ।।"

कातिपयदिनै. पाठितौ। कौशाम्बीमागत्य पितु. पदे स्थितौ। अथ राजगृहसूर्यमित्रपुरोहितस्यैकदा सन्ध्यायामादित्यार्घ्यं ददतस्तडागे पद्मोपरि जलेन सह राजकीयमुद्रिका पतिता। रात्रौ भीतेन सुधर्ममुनि: पृष्ट:। अवधिज्ञानेन ज्ञात्वा तेन कथिता। प्रभाते तेन गृहीता। केवलीलोभेन सुधर्ममुनिसमीपे सूर्यमित्रो मुनिरभूत्। केवलीं पुन: पुन: पृच्छन् क्रियामागमं च पाठितो धर्मपरिणतो भूत्वा एकाकी विहरन् कौशाम्ब्यां चर्यार्थमुच्चनीचगृहान् भ्रमन्नग्निभूतिगृहे गत:। अग्निभूतिना च सूर्यमित्रमुने: परमभक्त्या दानं दत्तम्। वायुभूतिना भणितेनापि वन्दना न कृता प्रत्युत निन्दा कृता। सूर्यमित्रमुनिमनुव्रजतोऽग्निभूतिना धर्ममाकर्ण्य तपो गृहीतम्। अग्निभूति—भार्यया सोमदत्तया तां वार्तामाकर्ण्य दु:खितया वायुभूतिर्भणित:— रे निकृष्ट, सूर्यमित्रमुने: प्रणामो न कृत:, निन्दा च कृता, तेन कारणेनाग्नि—भूतिना तपो गृहीतम्। इत्येव वदन्ती सा वायुभूतिना पादेन मुखे हत्वा भणिता— त्वमपि तस्यैवाशुचेर्नग्नस्य पार्श्वे गच्छ। तया रोषान्निदानं

[६३] ध्यान का प्रभाव

गाथार्थ—स्यालिनी के द्वारा तीन रात्रि तक खाया हुआ और वेदना से दु:खी अवन्तिसुकुमाल भी ध्यान से आराधना को प्राप्त हुआ।]१५३९]

इसकी कथा कौशाम्बी नगरी में राजा अतिबल सामशर्मा नामक पुरोहित. भार्या काश्यपी तथा अग्निभूति और वायुभूति नामक दो पुत्र थे। सोमशर्मा के मर जाने पर गोत्र के लोगों द्वारा प्राप्त वह पुरोहित का पद मूर्ख होने के कारण उन दोनों पुत्रों को राजा ने नहीं दिया। तब अभिमान के कारण राजगृह नगर में अपने चाचा सूर्यमित्र के समीप गए और समाचार कहा। चाचा ने भिक्षा का भोजन लेकर छह अङ्गों सहित चारवेद, मीमांसा और न्याय का समूह धर्मशास्त्र और पुराण ये चौदह विद्यायें कुछ ही दिनों में पढ़ा दी। कौशाम्बी में आकर दोनों पिता के पद पर स्थित हो गए। राजगृह का सूर्यमित्र पुरोहित एक बार सन्ध्या समय सूर्य को अर्घ्य दे रहा था, तभी तालाब में कमल के ऊपर जल के साथ राजकीय अंगूठी गिर गई। रात्रि में भयभीत होकर उसने सुधर्ममुनि से पूछा—अवधिज्ञान से जानकर उन्होंने बतला दिया। प्रातः काल सूर्यमित्र पुरोहित ने वह अंगूठी ले ली। केवली लोभ से सूर्यमित्र सुधर्ममुनि के समीप मुनि हो गया। केवली से पुनः पुनः पूछते हुए क्रिया और आगम को पढ़ते हुए धर्मपरिणत होकर एकाकी विहार करते हुए कौशाम्बी में चर्या के लिए उच्च नीच घरों में घूमते हुए अग्निभूति के घर गए। अग्निभूति ने सूर्यभूति मुनि को परमभक्ति से दान दिया। वायुभूति ने कहे जाने पर भी वन्दना नहीं की, प्रत्युत् निन्दा की। सूर्यमित्र मुनि के पीछे चलते हुए अग्निभूति ने धर्म सुनकर तप ग्रहण कर लिया। अग्निभूति की भार्या सोमदत्ता ने उस समाचार को सुनकर दु:खित हो वायुभूति से कहा—रे निकृष्ट! सूर्यमित्र मुनि को प्रणाम नहीं किया तथा निन्दा की, उस कारण अग्निभूति ने तप ग्रहण कर लिया। जब वह यह कह रही थी तब वायुभूति ने उसके मुँह पर लात मारी और उससे कहा—तुम भी उस अशुचि, नग्न के पास जाओ।

कृतम्। जमान्तरे तव पादं सपुत्राह भक्षयामीति। स वायुभूतिर्मुनिनिन्दा-प्रभवपापात्सप्तदिनैरुदुम्बरकुष्ठेन मृत्वा कौशाम्ब्यां नटस्य गर्दभी जाता। मृत्वा तत्रैव गर्तासूकरी। मृत्वा चम्पानगर्यां चाण्डालगृहे कुर्कुरी। पुनस्तत्रैव चाण्डालपुत्री अतीव विरूपका दुर्गन्धान्धा च जाता। जम्बूवृक्षतले महता कष्टेन जम्बूफलानि प्राप्तानि भक्षयन्ती अग्निभूतिमुनिना दृष्टा। भणितं च तेन-- केनापि कर्मणा वराकिका कीदृशी जाता महता कष्टेन जीवति। तच्छ्रुत्वा सूर्यमित्रमुनिनोक्तम् – तवायं भ्राता वायुभूतिर्गर्दभी शूकरी कुर्कुरी भूत्वा चाण्डाली भूता। ततस्तेन सबोध्य पञ्चाणुव्रतानि ग्राहिता। मृत्वा चम्पायां पुरोहितनागशर्मपुत्री नागश्रीर्जाता। नागोद्याने श्रेष्ठिमन्त्र्यादिकन्याभिः सह नागपूजां कृत्वा नागश्रीः सूर्यमित्रमुनेर्विहर-माणस्य तत्रागतस्य समीपे गता। तामालोक्याग्निभूतिमुने स्नेहो जातः। पृष्टेन सूर्यमित्राचार्येण स्नेहकारणं कथितम्। ततोऽग्निभूतिना संबोध्य सम्यक्त्वमणुव्रतानि च ग्राहिता भणिता – हे पुत्रि, यदि तव पिता व्रतानि त्याजयति तदागत्य व्रतानि मम समर्पयेस्त्वमिति। कन्याभिर्नागशर्मणो वार्तायां कथितायां तेनोक्तम्–पुत्रि ब्राह्मणानां सर्वोत्तमवर्णानां न युक्तं क्षपणकधर्मानुष्ठानं कर्तुमतस्त्यज त्वम्। तयोक्तम्– तर्हि तस्यैव मुनेः समर्पयामि। ततस्तां हस्ते धृत्वा मुनिसमीपं चलितः। मार्गे लोकवेष्टितो बद्धः पटहेन वाद्यमानेन शूलिकासमीपं नीयमानः पुरुषो दृष्टः। नागश्रिया पिता पृष्टः–तात, किमयमय बद्धः। कथितं तेन वसन्तसेनो वणिक्कुलं भाण्डद्रव्यं याचमानोऽनेनमारितः। ततो निगृह्यते लग्नः। नागश्रियोक्तम् जीववधे एवंविधो निग्रहो भवति। तत्रैव मया निवृत्तिर्गृहीता। ततस्तेनो-क्तम्–तिष्ठत्विदं व्रतं त्रैदेषूक्तमास्ते ऽन्यानि त्यज॥ अग्रे गच्छन्त्या तया-परः पुरुषो बद्धो दृष्टः। पिता पृष्टश्च। तेन कथितम्–यथा वाणिक् नार-

उसने रोष से निदान किया। दूसरे जन्म में पुत्र के साथ मैं तुम्हारा पैर खाऊँगी। वह वायुभूति मुनिनिन्दा से उत्पन्न पाप के कारण सात दिनों में उदुम्बर कोढ़ से मरकर कोशाम्बी में नटके गधी हुआ। मरकर उसी गड्ढे में सूकरी हुई। सूकरी मरकर चम्पा नगरी में चाण्डाल के घर कुत्ती हुई। पुनः चम्पा नगरी में ही अत्यन्त विरूप, दुर्गन्धा और अन्धी चाण्डाल पुत्री हुई। जामुन के वृक्ष के नीचे बड़े कष्ट से प्राप्त जामुन के फलों को खाती हुई उसे अग्निभूतिमुनि ने देखा। उन्होंने कहा—किसी कर्म से बेचारी कैसी हुई, बड़े कष्ट से जी रही है। उसे सुनकर सूर्यमित्र मुनि ने कहा—तुम्हारा यह भाई वायुभूति गधी, शूकरी, कुत्ती होकर चाण्डाली हुआ है। तब उसने सम्बोधितकर पञ्च अणुव्रत ग्रहण कराए। मरकर चम्पा नगरी में पुरोहित नागशर्मा की पुत्री नागश्री हुई। नागोद्यान में सेठ और मन्त्रि आदि की कन्याओं के साथ नागपूजा कर नागश्री वहीं आए हुए विहार करते हुए सूर्यमित्र मुनि के समीप गई। उसे देखकर अग्निभूति मुनि को स्नेह हुआ। पूछने पर सूर्यमित्र आचार्य ने स्नेह का कारण कहा। तब अग्निभूति ने सबोधित कर सम्यक्त्व और अणुव्रत ग्रहण कराए और कहा—हे पुत्री! यदि तुम्हारे पिता व्रतों का त्याग कराते हैं तो आकर व्रत मुझे सौंप जाना। कन्याओं ने नागशर्मा से समाचार कहा तो उसने कहा—पुत्री! सबसे उत्तम वर्ण वाले ब्राह्मणो के लिए नग्न मुनियों के धर्म का अनुष्ठान करना ठीक नहीं है, अतः तुम इसे त्याग दो। उसने कहा—तो उन्हीं मुनि को सौंपती हूँ। तब उसका हाथ पकड़कर नागशर्मा मुनि के समीप चला। मार्ग में लोगों के द्वारा घेरा हुआ बँधा हुआ पुरुष जो कि नगाड़े के द्वारा बाजे बजाते हुए शूली के पास ले जाया जा रहा था, देखा। नागश्री ने पिता से पूछा—पिताजी! यह किस कारण बँधा है। पिता ने कहा—वणिक्कुल वसन्तसेन ने इससे भाड़े का धन माँगा, उसे इसने मार दिया। अतः दण्ड दिया जा रहा है। नागश्री ने कहा—जीव वध करने पर इस प्रकार निग्रह होता है। मैंने वहाँ इस जीव वध से निवृत्ति ग्रहण की थी। तब उसने (पिता ने) कहा—इस बात को रहने दो, व्रत वेदों में कहे गए हैं, अन्य को छोड़ दो। आगे जाते हुए उस पुत्री ने दूसरा बँधा हुआ पुरुष देखा और पिता से

दनामा व्यलीकवचनैः परं प्रतार्येव सार्टि करोति । एकदा सार्टिं न सह राज्ञो ऽत्र शकटके जाते राज्ञा मृषावादित्वमस्य ज्ञात्वा जिह्वाहस्त-पादादिच्छेदनमस्य भणितम् । शेषं पूर्ववत् ।। एवं चौर्यपरदारातिलोभ-दोषान्निगृह्यमाणपुरुषान् दृष्ट्वा नागशर्मणा भणितम्—पुत्रि, तिष्ठन्तु व्रतान्येतानि किंतु तं क्षपणकं गृहीत्वा आगच्छामि येन स बालानां व्रतं न ददाति । तत्र गत्वा दूरस्थेन तेनोक्तम्—हे मुने, किं मत्पुत्रिका व्रतादिदानेन प्रतारिता त्वया । सूर्यमित्रमुनिनोक्तम्— भो भट्ट, मदीया पुत्री नागश्री-रियं न त्वदीया । एहि पुत्रीति भणिते नागश्रीर्भट्टारकसमीपे गत्वोपविष्टा । ततो भट्टेनान्यायमिति कृत्वा चन्द्रवाहनराजस्य कथितम् । ततः सो ऽपि सर्वनगरजनेन सह मुनिसमीपमागतः । ततो मुनिभट्टयोर्मदीया मदीयेति विवादे मुनिनोक्तम्—चतुर्दशविद्यास्थानानि मया पाठिता मदीयेयम् । राज्ञोक्तम्— तर्हि पाठय । मुनिनोक्तम् —वायुभूते पठ । ततो नागश्रिया यथास्थानं चतुर्दशविद्यास्थानानि पठितानि । विस्मितेन राज्ञोक्तम्—भग-वन्, संबन्धं कथय । ततः पूर्वकथासंबन्धः कथितः । तं श्रुत्वा राजा बहु-राजपुत्रैः सह प्राव्राजीत् । नागशर्मा ऽपि मुनिर्भूत्वा अच्युते देवो जातः नागश्रीरपि तपः कृत्वा अच्युते देवो जातः । अग्निमन्दरांशौ सूर्यमित्राग्नि भूती तु निर्वाणं गतौ ।। तथावन्तिदेशे उज्जयिन्यां नगर्यां इन्द्रदत्तेभ्यस्य गुणवत्यां नागशर्मचरो देवो ऽच्युतादागत्य सुरेन्द्रदत्तनामा पुत्रो जातः । तत्रैव सुभद्रेभ्यस्य पुत्रीं यशोभद्रां परिणीतवान् । तया चैकदावधिज्ञानी मुनिः पृष्टः— मम पुत्रो भविष्यति न वेति । मुनिनोक्तम्—तव पुत्रो भविष्-यति । तन्मुखं दृष्ट्वा श्रेष्ठी तपो ग्रहीष्यति । सो ऽपि मुनिं दृष्ट्वा तपो ग्रहीष्यतीति नागश्रीचरो देवस्तत्पुत्रः सुकुमालनामा जातः । सुरेन्द्रदत्तस्त-स्य श्रेष्ठिपदं बन्धयित्वा मुनिरभूत । सुकुमालश्रेष्ठी च यौवनस्थो द्वात्रिंश-त्प्रासादेषु अप्रतिरूपद्वात्रिंशत्कुलपुत्रिकाभिः सह भोगाननुभवन् स्थितः ।

पूछा। पिता ने कहा—नारद नामक वणिक् झूठ वचनों से दूसरे को ठग-कर ही नीलाम में बोली लगाता है। एक बार नीलाम में बोली लगाने वाले इसके साथ राजा के आगे बकझक होने पर राजा ने इसके झूठ बोलने को जानकर इसकी जीभ, हाथ, पैर आदि छेदने को कहा है। शेष पहले के समान। इस प्रकार चोरी, परस्त्री सेवन तथा अत्यन्त लोभ के दोष से दण्डित किए गए पुरुषों को देखकर नागशर्मा ने कहा—पुत्री! इन व्रतों को रहने दो, किन्तु उस मुनि की निन्दा कर आता हूँ जिससे वह बालकों को व्रत न दे। वहाँ पर जाकर दूर खड़ा होकर उसने कहा—हे मुनि! तुमने क्या मेरी पुत्री को व्रतादि प्रदान कर ठगा है? सूर्यमित्र मुनि ने कहा—हे भट्ट, नागश्री मेरी पुत्री है, तुम्हारी नहीं। आओ पुत्री, ऐसा कहने पर नागश्री मुनि के पास जाकर बैठ गई। तब भट्ट ने 'यह अन्याय है' इस प्रकार आवाज करते हुए चन्द्रवाहन राजा से कहा। तब राजा भी नगर के सब लोगों के साथ मुनि के पास आया। तब मुनि और भट्ट में यह मेरी है, यह मेरी है, ऐसा विवाद होने पर मुनि ने कहा—इसे मैंने चौदह विद्यायें पढ़ाई हैं, अतः यह मेरी है। राजा ने कहा—तो पढ़ाओ। मुनि ने कहा—वायुभूति पढ़ो। तब नागश्री ने यथास्थान चौदह विद्याये पढ़ीं। विस्मित होकर राजा ने कहा—भगवान्! सम्बन्ध कहो। तब मुनि ने पूर्वकथा का सम्बन्ध कहा। उसे सुनकर राजा बहुत से राजपुत्रों के साथ प्रव्रजित हो गया। नागशर्मा भी मुनि होकर अच्युत स्वर्ग में देव हो गया। नागश्री भी तप कर अच्युत स्वर्ग में देव हुई। अग्निमन्दर गिरि पर सूर्यमित्र और अग्निभूति निर्वाण को प्राप्त हुए।

अवन्ती देश में उज्जयिनी नगरी में इन्द्रदत्त धनी की पत्नी गुणवती के गर्भ में नागशर्मा का जीव देव अच्युत स्वर्ग से आकर सुरेन्द्रदत्त नामक पुत्र हुआ। वहीं सुभद्र नामक धनी की पुत्री यशोभद्रा को उसने विवाहा। यशोभद्रा ने एक बार अवधिज्ञानी मुनि से पूछा—मुझे पुत्र होगा या नहीं? मुनि ने कहा—तुम्हारा पुत्र होगा। उसका मुख देखकर सेठ तप ग्रहण करेगा। नागश्री का जीव देव उसका सुकुमाल नामक पुत्र हुआ। सुरेन्द्रदत्त उसे सेठ का पद बाँधकर मुनि हो गया। सुकुमाल सेठ यौवन में स्थित होता हुआ बत्तीस महलों में अप्रतिरूप

निर्मितिना च पूर्वं तस्य आदेशः कृतः। मुनिदर्शनेनायं मुनिर्भविष्यतीति। ततो गृहे मुनीनां प्रवेशो निषिद्धः। एकदा प्रद्योतराज्ञो भ्रमातुकेनानर्घो रत्नकम्बलो दर्शितो राज्ञा ग्रहीतुं न शक्तः। सुकुमालजनन्या तं गृहीत्वा द्वात्रिंशद्वधूनां प्राणहिताः कारिताः। तत्रैका प्राणहिता मांसखण्डं मत्वा सौलिकया नीत्वा चञ्च्वा हत्वा घातिता। राज्ञो गणिकया राज्ञो दर्शिता सुकुमालभार्याप्राणहितेयमिति श्रुत्वा जाताश्चर्यो राजा सुकुमालस्वामिनं द्रष्टुं गृहे गतः। तज्जनन्या अभ्युत्थान कृतम्। एकस्मिन्पट्टे राज्ञा सहोपविष्टस्य मुहुर्मुहुः कण्ठहारारात्रिकोद्द्योतादक्षिगलन सह भुञ्जानस्यैकैकसिक्थभक्षणं दृष्ट्वा राज्ञा तज्जननी पृष्टा तया कारण कथितम्। ततो विस्मितेन राज्ञा भणितम्। अवन्तिसुकुमाल इति नाम कृतम्। भुक्तोत्तरं क्रीडनवाप्यां जलक्रीडां कुर्वतो राज्ञो मुद्रिका वाप्यां पतिता। गवेषयता राज्ञा तत्रानेकमणिकुण्डलाभरणानि दृष्टानि। ततो विस्मतो लज्जयित्वा स्वगृहे गतः। सुकुमालस्वामिमातुलेन गणधराचार्येण सुकुमालस्वामिनः स्वल्पमायुर्ज्ञात्वा तदीयोद्याने आगत्य योगो गृहीतः। यशोभद्रया गृहे प्रवेशः स्वाध्यायघोषश्च योगपरिसमाप्ति यावन्निषिद्ध योगनिष्ठापनक्रियां कृत्वा ऊर्ध्वलोकप्रज्ञप्तिं पठताच्युतस्वर्गे देवानामायुरुत्सेधसौख्यादिव्यावर्णनं कर्तुमारब्धम्। तच्छ्रुत्वा सुकुमालस्वामी जातिस्मरो भूत्वा मुनिसीपे आगतः। मुनिनोक्तम् — त्रीणि दिनानि तवायुर्यज्जानासि तत्कुरु। ततस्तयोगं गृहीत्वा संन्यासं च पादोपयानमरणे स्थितः। या अग्निभूतेर्भार्या कृतनिदाना सा संसारे परिभ्रम्य तत्रैव शृगाली जाता।

बत्तीस कुलपुत्रियों के साथ भोग भोगते हुए रहे । नैमित्तिक ने पहले ही उसके विषय में आदेश किया था कि मुनि के दर्शन से यह मुनि हो जायगा । अत: मुनि के घर में प्रवेश का निषेध किया गया । एक बार प्रद्योत राजा को एक घूमने वाले ने कीमती रत्नकम्बल दिखलाया, किन्तु राजा उसे ग्रहण करने में (खरीदने में) समर्थ नही हुआ । सुकुमाल की माँ ने उसे लेकर बत्तीस बधुओं की पादुकायें बनवा दीं । उनमें से एक पादुका मांस का टुकड़ा मानकर एक कौए ने ले जाकर चोंच मारकर गिरा दी । राजा की गणिका ने राजा को दिखलाई । यह सुकुमाल की पत्नी की पादुका है, यह सुनकर जिसे आश्चर्य उत्पन्न हुआ है, ऐसा राजा सुकुमाल स्वामी को देखने पार गया । उसकी माँ ने उठकर स्वागत किया । एक ही चौकी पर राजा के साथ बैठे हुए बार बार कण्ठके हार की चारों ओर की चकाचौंध से जिसके नेत्रों से आँसू गिर रहे थे तथा जो खाते समय चावल के एक एक सीथ को ग्रहण कर रहे थे ऐसे सुकुमाल को देखकर राजा ने उसकी माँ से पूछा उसने कारण बतलाया । तब विस्मित होकर राजा ने उसका अवन्ति सुकुमाल नाम रख दिया । भोजन के बाद क्रीडा करने की बावड़ी में जलक्रीडा करते हुए राजा की अँगूठी बावड़ी में गिर गई । राजा जब उसे खोज रहा था तब बावड़ी में अनेक मणि, कुण्डल और आभूषण राजा ने देखे । तब विस्मित हो लजाकर राजा अपने घर गया । सुकुमाल स्वामि के मामा गणधराचार्य ने सुकुमाल स्वामि की स्वल्प आयु जानकर इन्हीं के उद्यान में आकर योग ग्रहण किया । यशोभद्रा ने घर में प्रवेश तथा स्वाध्याय का घोष तब तक के लिए निषिद्ध कर दिया, जब तक योग की समाप्ति न हो जाय । योग निष्पादन क्रिया कर ऊर्ध्वलोक प्रज्ञप्ति को पढ़ते हुए अच्युतस्वर्ग में देवों की आयु, शरीर की लम्बाई, सुख आदि का वर्णन करना आरम्भ किया । उसे सुनकर सुकुमाल स्वामी को पूर्वजन्म की स्मृति आ गई । वे मुनि के समीप आए । मुनि ने कहा—तुम्हारी आयु तीन दिन की रह गई है, जो जानते हो, वह करो । तब योग और सन्यास को ग्रहण कर सुकुमाल स्वामी पादोपगमन मरण में स्थित हो गए । अग्निभूति की जिस पत्नी ने निदान किया था, वह संसार में भ्रमण कर वहीं स्यालिनी हुई ।

ततस्तया चतुःपुत्रया पूर्वभववैरसंबन्धेन पादाभ्यामारभ्य खादन्त्या तृतीय-दिने परमसमाधिना कालं कृत्वाऽच्युते देवो जातः । देवैर्महाकाल इति घोषणान्महाकाल यत्र गन्धोदकवर्षस्तत्र गन्धवती नदी । यत्र भार्याभिरागत्य कल कलः कृतस्तत्र कलकलेश्वरो जात इति ॥

[६४] मौद्गिल्लगिरावित्यादि ।

[मोग्गिल्लगिरिम्मि य सुकुसलो वि सिद्धत्थदइयभयवंतो ।
वग्घीए वि खज्जंतो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५४०॥]

अस्य कथा– अयोध्यायां राजा प्रजापालः, श्रेष्ठी सिद्धार्थ–इभ्यः । तस्य द्वात्रिंशद्भार्या अपुत्रास्तासां मध्ये अतीव वल्लभा जयावती । सा पुत्रार्थं यक्षाणां पूजां कुर्वाणा दिव्यज्ञानिमुनिना भणिता– पुत्रि, कुदेव–भक्ति परित्यज्य निश्चला जिनधर्मे भव । येन तव सप्तदिनमध्ये गर्भ-संभूतिर्भवतीति । ततस्तुष्टा दृढा जिनधर्मे सा स्थिता । कतिपयदिनैः सुकोशलनामा पुत्रो जातः । तन्मुखं दृष्ट्वा श्रेष्ठी नयधरमुनिसमीपे मुनिरभूत् । मां बालपुत्रिकां मुक्त्वा गत इति मत्वा सिद्धार्थमुनेरुपरि जयावती अत्यर्थं कुपिता । मुनिना च किमस्य तपो दातुं युक्तमिति कोपाद्गृहे प्रवेशो निषिद्धः । सुकोशलेन क्रमेण वृद्धिं गतेन द्वात्रिंशद्भार्याः परिणीताः । एकदा प्रासादोपरि भूमिस्थितेन जननीधात्रीभार्यासमन्वितेन नगरशोभां पश्यता दिग्देशान्तरं विहृत्यागतश्चर्यायां प्रविष्टः सिद्धार्थमुनिमजानता तेन पृष्टेः । को ऽयम् । जयावत्या कुपितयोक्तम्–रंकः को ऽप्ययं याति । सुकोशलेनोक्तम्–नायं रङ्कः सर्वोत्तमलक्षणयुक्तत्वात् । ततः सुनन्दाधात्र्या श्रेष्ठिनी भणिता । तव कुलप्रभोः परममुनेश्च निन्दावचनं वक्तुं न युक्तम् । ततः श्रेष्ठिन्या सा भणिता – मौनेन तिष्ठ । अक्षिसंज्ञया

अनन्तर उसके द्वारा चार पुत्रों के साथ पूर्वभव के वैर के सम्बन्ध से पैर से आरम्भ कर खाते हुए तीसरे दिन परमसमाधि से काल बिताकर अच्युत स्वर्ग में (सुकुमाल) देव हुए। देवों ने जहाँ महाकाल यह घोषणा की वहाँ महाकाल हुआ तथा वहाँ गन्धोदक की वर्षा हुई वहाँ गन्धवती नदी हुई। जहाँ भार्याओं ने आकर कोलाहल किया वहाँ कलकलेश्वर हो गया।

(६४) रत्नत्रय का निर्वाह

गाथार्थ—मौद्गिल्ल नामक पर्वत पर सिद्धार्थ सेठ के पुत्र सुकोशल व्याघ्री के द्वारा खाए जाते हुए उत्तम अर्थ (रत्नत्रय का निर्वाह) को प्राप्त हुए। [१५४०]

इसकी कथा—अयोध्यानगरी में राजा प्रजापाल तथा धनी सेठ सिद्धार्थ थे। उस सेठ की बत्तीस पत्नियाँ पुत्र रहित थीं। उन पत्नियों के मध्य सेठ को जयावती अत्यन्त प्रिय थी। वह पुत्र हेतु यक्षों की पूजा कर रही थी। उससे दिव्यज्ञानी मुनि ने कहा—पुत्री! कुदेव के प्रति भक्ति को छोड़कर जिनधर्म में स्थिर होओ, जिससे तुम्हें सात दिन में गर्भ की संभूति होगी। तब वह सन्तुष्ट होकर दृढ़ता से जिनधर्म में स्थिर हो गई। कुछ दिनों में (उसके) सुकोशल नामक पुत्र हुआ। उसके मुख को देखकर सेठ नयंधर मुनि के समीप मुनि हो गया। मुझ बाल पुत्री को छोड़कर चले गए, यह मानकर जयावती सिद्धार्थ मुनि के ऊपर अत्यधिक कुपित हुई। क्या इस मुनि के द्वारा तप दान किया जाना युक्त है, इस प्रकार कोप से उसने मुनि के घर में प्रवेश निषिद्ध कर दिया। क्रम से वृद्धि को प्राप्त करते हुए सुकोशल ने बत्तीस स्त्रियों से विवाह किया। एक बार महल की ऊपरी भूमि पर स्थित माता, धाय तथा पत्नी से युक्त नगर की शोभा देखते हुए दिग्देशान्तरों में विहार कर आए। चर्या के लिए प्रविष्ट सिद्धार्थ नामक मुनि को न जानते हुए सुकोशल ने पूछा—यह कौन है? जयावती ने कुपित होकर कहा—यह कोई रंक या रक्षा है। सुकोशल ने कहा—यह कोई रङ्क नहीं है, क्योंकि उत्तम लक्षणों से युक्त है। तब सुनन्दा धाय ने सेठानी से कहा—तुम्हें कुलप्रभु तथा पद्ममुनि से निन्दा के वचन कहना ठीक नहीं है। तब सेठानी ने

च सा वारिता । प्रतारितोऽहमनयेति चिन्तयन्सुकोशलः सूपकारेण भणितः— भोजनवेला संजातेति । ततो जननीधात्रीभार्याभिर्भणितो भोजनं क्रियतामिति । तेनोक्तम्—मयास्योत्तमपुरुषस्य स्वरूपं ज्ञात्वा भोक्तव्य- मिति । तत सुनन्दया यथार्थे पूर्ववृत्तान्ते कथिते सुकोशलो मुनिसमीपे गतो निजभार्यायाः सप्रभाया गर्भस्थितपुत्रस्य श्रेष्ठिपट्टं बन्धयित्वा सिद्धार्थ- समीपे मुनिर्जातः । आर्तेन मृत्वा जयावती मगधदेशे मौद्गिल्लगिरौ व्याघ्री त्रिपुत्रा जाता । तौ द्वौ मुनि विहरमाणौ मौद्गिल्लगिरौ चतुर्मा- सोपवासेन योग गृहीत्वा योगावसाने चर्यायां प्रविष्टौ ता व्याघ्रीमालो- क्य सन्यासेन स्थितौ तया क्रमेण भक्षितौ सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नौ सुकोशलहस्ते लाञ्छनमालोक्य व्याघ्री जातिस्मरी जाता । हा त्यक्तजिनधर्माः प्राणिनः ससारे परिभ्रमन्त. पुत्रादीनपि भक्षयन्तीति ससारनिन्दा कृत्वा सन्यासेन मृत्वा सौधर्म गता ॥

(६५) आर्द्राजिनमिवेत्यादि ।

[भूमीए समं कीलाकोट्टिददेहो वि अल्लचम्मं व ।
भयव पि गयकुमारो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५४१॥]

अस्य कथा— द्वारवतीनगर्यां राजा वासुदेवो, राज्ञी गान्धर्वसेना, पुत्रो गजकुमार. । पोदनपुरे राजा अपराजितो वासुदेवस्य न सिध्यति । ततो वासुदेवेन घोषणादायि, यो ऽपराजितं बन्धयित्वा आनयति तस्मै वरमी- प्सितं ददामीति । गजकुमारेण पोदनपुरं गत्वा युद्धे जित्वा ऽपराजितं बन्ध- यित्वा आनीय वासुदेवस्य समर्पितः । ततः कामचारं वरं वरयित्वा द्वारा- वतीस्त्रीजनं सेवमानः पांसुलश्रेष्ठिनो या सुरपतिनामा भार्या तस्यामा—

उससे कहा–मौन रहो तथा उसे आँख के इशारे से रोक दिया। इसने मुझे प्रतारित कर लिया, ऐसा सोचते हुए सुकोशल से रसोइए ने कहा–भोजन का समय हो गया है। अनन्तर जननी, धाय तथा भार्या ने कहा–भोजन करो। उसने कहा–मैं इस उत्तम पुरुष का स्वरूप ज्ञात कर भोजन करूंगा। तब सुनन्दा के द्वारा पूर्ववृत्तान्त यथार्थ रूप में कहे जाने पर सुकोशल मुनि के समीप गए। अपनी भार्या सुप्रभा के गर्भस्थित पुत्र को श्रेष्ठि पद बाँधकर सिद्धार्थ के समीप मुनि हो गए।

आर्तध्यान से मरकर जयावती मगध देश में मौद्गिल्य पर्वत पर तीन पुत्र वाली व्याघ्री हुई। वे दोनों मुनि विहार करते हुए मौद्गिल्लपर्वत पर चार माह के उपवास सहित योग ग्रहण कर योग की समाप्ति पर चर्या के लिए जब प्रविष्ट हुए तो उस व्याघ्री को देखकर सन्यासपूर्वक स्थित हो गए। उस व्याघ्री ने उन्हें क्रमशः खा लिया। दोनों सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए। सुकोशल के हाथ में निशान देखकर व्याघ्री को पूर्वजन्म का स्मरण हो गया। हाय जिनधर्म का परित्याग किए हुए प्राणी संसार में परिभ्रमण करते हुए पुत्रादि का भी भक्षण कर लेते हैं, इस प्रकार संसार की निन्दा कर संन्यासपूर्वक मरणकर सौधर्म स्वर्ग में गई।

[६५] सहिष्णुता

गाथार्थ–भूमि में गीले चमड़े के समान जिनका शरीर कीलों से बेध्या गया है, ऐसे भगवान् गजकुमार उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए। (१५४१)

इसकी कथा–द्वारवती नगरी में राजा वासुदेव, रानी गान्धर्व सेना तथा पुत्र गजकुमार था। पोदनपुर में राजा अपराजित वासुदेव के वश में नहीं होता था। तब वासुदेव ने घोषणा दिलाई, जो अपराजित को बाँधकर लायेगा उसे अभीष्ट वर दूँगा। गजकुमार ने पोद–नपुर में जाकर युद्ध में जीतकर अपराजित को बाँधकर लाकर वासु-देव को समर्पित कर दिया। तब इच्छानुसार वर का वरण कर द्वारावती स्त्रियों का सेवन करता हुआ पांसुल सेठ की जो सुरपति नामक

स्कत । पांसुलः कोपेन प्रज्वलत्तिष्ठति । एकदारिष्टनेमिजिनागमेन गजकुमारो धर्ममाकर्ण्य तपो गृहीत्वा विहृत्योर्जयन्तोद्याने पादोपगमनमर-णमुररीकृत्य संन्यासेन स्थितः । पांसुलो लोहकीलैस्त सर्वतः कीलयित्वा नष्टः । सो वेदनामगणयित्वा परमसमाधिना काल कृत्वा स्वर्गं गतः ॥

(६६) अरुचिद्धरेत्यादि [१]

[कच्छुजरखाससोसो भत्तच्छद्द च्छिकुच्छिदुक्खाणि ।
अहियासियाणि सम्मं सणक्कुमारेण वाससयं ॥१५३२॥]

अस्य कथा– हस्तिनागपुरे राजा विश्वसेनो, राज्ञी सहदेवी, पुत्रः सनत्कुमारश्चतुर्थचक्रवर्ती । एकदा सौधर्मेन्द्रस्य सभायामीशानस्वर्गा-त्संगमनामो देवः समायातः । तत्तेजसा सभास्थितदेवानां तेजो लुप्तमा-दित्ये समुत्थिते नारकाणामिव । तैर्देवैरिन्द्रः पृष्टः–किं देवानामेवैवं तेजो रूपं च किंवा मनुष्याणामपि संभवतीति । कथितमिन्द्रेण । सनत्कुमारचक्र-वर्तिनस्तेजोरूपे देवेभ्यो ऽप्यधिके । ततः कौतुकाद्ब्राह्मणवेषेणागत्य विज यवैजयन्तदेवाभ्यां प्रतीहारप्रवेशिताभ्यां सगन्धतैलाभ्यङ्गं कृत्वा पादविक्षेपं कुर्वतस्तस्य तेजोरूपे दृष्ट्वा भणितम्– भो चक्रवर्तिन्, यथाभूते सौधर्मेन्द्रेण व्यावर्णिते त्वदीये तेजोरूपे सत्ये । तच्छ्रुत्वा चक्रवर्तिनोक्तम्–किं दृष्ट भवद्भ्याम् । प्रतीक्षेथां दर्शयामि । ततः स्नात्वा मण्डन भूषणं च गृहीत्वा सिंहासने स्थित्वा देवौ समाहूय दर्शितमात्मरूपम् । तं दृष्ट्वा देवाभ्यां भणितम् –प्रथमावलोकने संपूर्णं दृष्ट रूपादिक तदेदानीं किंचिदूनं जात जलपूर्णघटे गतबिन्दुमात्रमिव न लक्ष्यते । इत्युक्त्वा देवौ गतौ । देवकुमार

भार्या, उसमें आसक्त हो गया। पांसुल क्रोध से जलता हुआ ठहरा था। एक बार अरिष्टनेमि जिन के आगमन पर गजकुमार धर्म सुनकर, तप ग्रहण कर, विहारकर गिरनार पर्वत के उद्यान में पादोपगमन मरण स्वीकार कर सन्यास पूर्वक स्थित हो गए। पांसुल लोहे की कीलों से उन्हें सब ओर से कीलितकर भाग गया। उस वेदना की परवाह न कर गजकुमार परमसमाधि से समय पूर्ण कर स्वर्ग चले गए।

(६६) समता भाव

गाथार्थ—सनत्कुमार मुनि सौ वर्ष तक खाज, ज्वर, खाँसी, शोस, तीव्र क्षुधा, अग्नि की बाधा, वमन, नेत्रपीड़ा, उदरपीड़ा इत्यादि अनेक रोग जनित दुःख को भोगते हुए समता भाव से सहते रहे। [१५४२]

इसकी कथा—हस्तिनागपुर में राजा विश्वसेन, रानी सहदेवी तथा पुत्र चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमार था। एक बार सौधर्म इन्द्र की सभा में ईशान स्वर्ग से संगम नामक देव आया। उसके तेज से सभा में स्थित देवों का तेज उसी प्रकार लुप्त हो गया, जिस प्रकार सूर्य के उगने पर नारकियों का। उन देवों ने इन्द्र से पूछा—क्या देवताओं जैसा तेज और रूप मनुष्यों के भी सभव है। इन्द्र ने कहा—सनत्कुमार चक्रवर्ती तेज और रूप में देवों से भी अधिक हैं। तब कौतुक से विजय और वैजयन्त दो देव ब्राह्मण वेष में आए और द्वारपाल के द्वारा प्रवेश कराए जाने पर सुगन्धित तेल का मर्दनकर भरण विक्षेप करते हुए सनत्कुमार चक्रवर्ती के तेज और रूप को देखकर कहने लगे—हे चक्रवर्ती! सौधर्मेन्द्र ने तुम्हारे तेज और रूप का जैसा वर्णन किया था वह ठीक उसी प्रकार सत्य है। उसे सुनकर चक्रवर्ती ने कहा—आप दोनों ने क्या देखा? प्रतीक्षा करो, दिखलाऊँगा। तब स्नान कर मण्डन और भूषण धारणकर सिंहासन पर बैठकर दोनों देवों को बुलाकर अपना रूप दिखाया। उसे देखकर दोनों देवों ने कहा—पहली दृष्टि में सम्पूर्ण रूप को देखा गया तुम्हारा रूपादिक इस समय कुछ कम हो गया है, किन्तु वह जलपूर्ण घड़े से गए हुए एक बिन्दुमात्र के समान लक्षित नहीं होता है। ऐसा कहकर देव चले गए। देवकुमार

पुत्राय राज्यं दत्त्वा सनत्कुमारो मुनिरभूत् । षष्ठाष्टमाद्युपवासान् कृत्वा कञ्जिकाहारादिना पारणकं कुर्वाणस्य कण्ड्वादयो रोगा संजाताः । उग्रतपो ऽनुतिष्ठतो जल्लोषध्यादय ऋद्धयो जाताः । पुनः सौधर्मेण मुनि-गुणव्याख्यानं कुर्वता सनत्कुमारस्य शरीरनिःस्पृहत्वं व्यावर्णितम् । पुनस्तौ देवौ वैद्यरूपेणाटव्यां तत्समीपमायातौ व्याधीन् स्फेटयाम इति पुनः पुन-र्भणन्तौ मुनिनोक्तौ – मे संसारव्याधिं स्फेटयथः । अमी रोगा. मम करस्प र्शादेव नश्यन्ति । किमेभिर्नष्टैः । तथा प्रतीतिश्च कृता तयोः संसारव्याधि त्वमेव भगवन् स्फेटयितु समर्थ इति भणित्वा प्रकटीभूय प्रशस्य च प्रणम्य च गतौ । कतिपयदिनैः स सनत्कुमारमुनिः कर्मनिजरां कृत्वा मोक्षं गत. ।।

[६७] मध्ये गङ्गमित्यादि !

(णावाए णिब्बुडाए गंगामज्झे अमुज्झमाणमदी ।
आराधण पवण्णो कालगओ एणियापुत्तो ।।१५४३।।)

अस्य कथा– पणीश्वरनगरे राजा प्रजापालः, श्रेष्ठी सागरदत्तः, श्रेष्ठिनी पणिका, तत्पुत्रः पणिको नामा । स वर्धमानस्वामिनं पृष्ट्वा निजायुः स्तोकं ज्ञात्वा तपोगृहीत्वैकविहारी जातः । गङ्गामुत्तरतस्तस्य नौर्बुड्डा । स च केवलज्ञानमुत्पाद्य निर्वाणं गतः ।।

[६८] अवमोदरेण तपसेत्यादि ।

(ओमोदरिए घोराए भद्दबाहू असंकिलिट्ठमदी ।
घोराए तिगिंछाए पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ।।१५४४।।]

अस्य कथा– पुण्ड्रवर्धनदेशे कोटीनगरे राजा पद्मरथः, पुरोहितः सोम शर्मा, भार्या श्रीदेवी, पुत्रो भद्रबाहुः । मौञ्जीबन्धे कृते बहुब्रह्मचारि-

नामक पुत्र को राज्य देकर सनत्कुमार मुनि हो गए। छह, आठ, इत्यादि उपवासों को कर कञ्जिका के आहार आदि से पारणा करते हुए उन्हें खुजली आदि रोग हो गए। उग्र तप का अनुष्ठान करते हुए उन्हें जल्ल आदि ऋद्धियाँ हो गईं। पुनः सौधर्मेन्द्र ने मुनि के गुण का वर्णन करते हुए उनकी शरीर के प्रति निःस्पृहता का वर्णन किया। पुनः वे दोनों देव वैद्य के रूप में आकर मुनि के समीप 'हम व्याधियों को नष्ट करते हैं,' इस प्रकार पुनः पुनः कहने लगे। मुनि ने कहा- मेरी संसार रूपी व्याधि को मिटाओ। ये रोग तो मेरे हाथ के स्पर्श से ही भाग जाते हैं, इनके नष्ट करने से क्या? उसी प्रकार की प्रतीति भी करा दी अर्थात् हाथ के स्पर्श से रोगों को भगा दिया। वे दोनों भगवन्! संसार की व्याधि को मिटाने में तुम्हीं समर्थ हो, ऐसा कहकर प्रकट होकर, प्रशंसाकर तथा प्रणाम कर चले गए। कुछ दिनों में वह सनत्कुमार मुनि कर्मों की निर्जरा कर मोक्ष चले गए।

[६७] मोह विमुक्ति

गाथार्थ—मोहरहित बुद्धि वाला एणिका पुत्र गंगा के मध्य नाव डूब जाने पर (चारों) आराधनों को प्राप्त हो कालगत हुआ। [१५४३]

इसकी कथा—पणीश्वरनगर में राजा प्रजापाल, सेठ सागरदत्त, श्रेष्ठिनी पणिका तथा उसका पणिक नामक पुत्र था। वह वर्द्धमान स्वामी से पूछकर अपनी आयु को थोड़ा जानकर तप ग्रहण कर अकेला विहार करने लगा। गंगा पार करते हुए उसकी नाव डूब गई। वह केवलज्ञान उत्पन्न कर निर्वाण को प्राप्त हुआ।

[६८] अवमोदर्य व्रत

गाथार्थ-घोर क्षुधावेदना से पीडित भद्रबाहु मुनि संक्लेशरहित बुद्धि का अवलम्बन कर घोर अवमोदर्य व्रत के कारण उत्तम स्थान को प्राप्त हुए। [१५५४]

इसकी कथा—पुण्ड्रवर्द्धन देश में कोटीनगर में राजा पद्मरथ, पुरोहित सोमशर्मा, भार्या श्रीदेवी तथा पुत्र भद्रबाहु था। मौञ्जी

भिःसह बहिः क्रीडता तेनैकदिवसोपरि क्रमेण त्रयोदश वट्टा वृताः । वर्धमानस्वामिनि मोक्षं गते पञ्चानां चतुर्दशपूर्वधारिणां मध्ये यश्चतुर्थश्चतुर्दशपूर्वधरो गोवर्धननामा मुनिस्तैनोर्जयन्ते वन्दनार्थं गच्छता तद्वट्टविज्ञानमालोक्योक्तम् । पश्चिमपञ्चचतुर्दशपूर्वधरो ऽयं भद्रबाहुः श्रुतकेवली भविष्यतीत्युक्त्वा पितृहस्तान्नीत्वा सर्वशास्त्राणि पाठयित्वा गृहं प्रेषितः । पुनरागत्य कुमारो ऽपि गोवर्धनमुनिसमीपे मुनिर्भूत्वा चतुर्दश पूर्वाणि पठित्वा सघधरो भूत्वा गोवर्धनगुरौ देवलोकं गते संघेन सह विहरन्नुज्जयिन्यामागत. चर्यायां प्रविष्टो खोल्लिकायां स्थितेनाव्यक्तबालेन भणित – भगवन् मठ गच्छ । तच्छ्रुत्वा द्वादशवर्षानावृष्टिर्दुर्भिक्षं भविष्यतीति ज्ञात्वालाभेन गतः । अपराह्णे सकलमुनीनां कथितम्–अत्र देशे द्वादशवर्षाणि दुर्भिक्ष भविष्यति । स्वल्पायुरहमत्र तिष्ठामि । यूय दक्षिणापथ गच्छत । इत्युक्त्वा स्वशिष्यो दशपूर्वधरो विशाखाचार्य. स सर्वसंघेन सह दक्षिणापथे प्रेषित । तत्रत्यश्चन्द्रगुप्तो राजा गुरुवियोगमसहमानो भद्रबाहुःसमीपे मुनिरभूत । तीव्रबुभुक्षातृष्णाश्चानुभूयोज्जयिन्यां भद्रबाहुर्भगवान् भद्रवरसमीपे संन्यासात्स्वर्ग गतः ॥

(६९) कौशाम्ब्यां ललितघटेत्यादि ।

(कोसंबीललियघडा वूढा णइपूरएण जलमज्झे ।
आराधणं पवण्णा पाओवगदा अमूढमदी ।।१५४५।।)

अस्याः कथा– कौशाम्बीनगर्यामिन्द्रदत्तादयो द्वात्रिंशदिभ्यास्तेषां समुद्रदत्तादयो द्वात्रिंशत्पुत्राः परस्पर मित्रत्वमागताः । सम्यग्दृष्टयः केवलीसमीपे ऽतिस्वल्पं निजजीवितं ज्ञात्वा तपो गृहीत्वा ते समुद्रदत्तादयो यमुनातीरे पादोपयानमरणेन स्थिताः । अतिवृष्टौ जातायां जलप्रवाहेण यमुनाद्रहे पातिताः । परमसमाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गताः ॥

बन्धन किए जाने पर बहुत से ब्रह्मचारियों के साथ बाहर क्रीड़ा करते हुए उसने एक दिन में क्रम से तेरह रस्सियाँ बटीं। वर्द्धमान स्वामि के मोक्ष के चले जाने पर पांचचौदह पूर्वधारियों के मध्य जो चौदह पूर्वधर गोवर्द्धन नामक मुनि थे उन्होंने गिरनार पर्वत पर वन्दना के लिए जाते हुए उसके रस्सी बटने के विज्ञान को देखकर कहा। यह अन्तिम पाँचवाँ चौदहपूर्वधारी भद्रबाहु श्रुतकेवली होगा, ऐसा कहकर पिता के हाथ से लेकर समस्त शास्त्र पढ़ाकर घर भेज दिया। कुमार पुन: आकर गोवर्द्धन मुनि के समीप मुनि होकर चौदह पूर्व पढ़कर संघ-धर होकर गोवर्द्धन गुरु के देव लोक को चले जाने पर संघ के साथ विहार करते हुए उज्जयिनी में आकर चर्या के लिए प्रविष्ट हुए। पालने में स्थित अव्यक्त (वाणी वाले) बालक ने कहा—भगवन्! मठ को जाओ। उसे सुनकर बारह वर्ष तक सूखे के कारण दुर्भिक्ष होगा, ऐसा जानकर बिना आहार लाभ किए ही चले गए। अपराह्न में समस्त मुनियों से कहा— यहाँ पर बारह वर्ष का दुर्भिक्ष होगा। मेरी आयु थोड़ी रह गई है, अतः मैं यहीं ठहरता हूँ। आप सब दक्षिणा पथ की ओर जाओ, ऐसा कहकर अपने शिष्य दशपूर्वधर विशाखाचार्य को समस्त संघ के साथ दक्षिणा पथ में भेज दिया। वहाँ स्थित चन्द्र-गुप्त राजा गुरु के वियोग को सहन न करता हुआ भद्रबाहु के समीप मुनि हो गया। तीव्र भूख और प्यास का अनुभव कर उज्जयिनी में भद्रबाहु भगवान्! भद्रधर के समीप संन्यास धारण कर स्वर्ग चले गए।

[६९] तपाचरण

गाथार्थ—कौशाम्बी नगरी में ललित घटा नामक बत्तीस महा-मुनि जल के बीच नदी प्रवाह में डूब गए और मोह रहित हो प्रायोप-गमन संन्यास को प्राप्त हो आराधना को प्राप्त हुए। [१५४५]

इसकी कथा—कौशाम्बी नगरी में इन्द्रदत्तादि बत्तीस धनी थे, उनके समुद्रदत्त आदि बत्तीस पुत्र परस्पर मित्रता को प्राप्त हुए। सम्यग्दृष्टि केवली के समीप अपने जीवन को अत्यन्त स्वल्प जानकर तप ग्रहण कर वे समुद्रदत्त आदि यमुना के किनारे पादोपगमन मरण पूर्वक स्थित हो गए। अतिवृष्टि होने पर जल के प्रवाह से यमुना की

[७०] कृतमासक्षपणविधिरित्यादि ।

(चपाए मासखमणं करित्तु गगातडम्मि तण्हाए ।
घोराए धम्मघोओ पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥१५४६॥]

अस्य कथा- चम्पाया मासोपवासं कृत्वा धर्मघोषो मुनिरुद्भगमुनेर्गोष्ठे पारणकं कृत्वा चलितः । मार्गे नष्टे हरितकायापरि गमनमकुर्वन् तृषापीडितो गङ्गातटे वटवृक्षतले विश्रान्तः । त दृष्ट्वा गङ्गादेव्या प्रासुकजलभृत कलश गृहीत्वा आगत्य प्रणम्योक्तम्—भगवन् पानीयं पिबेति । तेनोक्तम्—न कल्पते । ततो गङ्गादेवतया पूर्वविदेह गत्वा केवलज्ञानी पूर्ववृत्तान्त कथयित्वा पृष्ट. । केन कारणेन पानीय न पीतम् । तेन मुनिना कथित केवलिनां । देवहस्तेनाहारो न कल्पते मुनीनाम् । तत. शीघ्रमागत्य सुगन्धशीतलगन्धोदकवृष्टौ कृतायां केवलज्ञानमुत्पाद्य धर्मघोषमुनिर्मोक्षं गत. ॥

(७१) चिरवैरसुरविनिर्मितेत्यादि ।

(सीदेण पुव्ववइरियदेवेण विकुव्विएण घोरेण ।
सतत्तो सिद्धिदिण्णो पडिवण्णो उत्तम अत्थ ॥१५४७॥)

अस्य कथा—इलावर्धननगरे राजा जितशत्रुर्भार्या इला, पुत्र. श्रीदत्त: अयोध्यायामंशुमतो राज्ञः पुत्रीमंशुमतीं स्वयवरे परिणीतवान् । अंशुमत्याः सहैकः शुकः समायातः । स श्रीदत्तांशुमत्योर्द्यूते रममाणयोः श्रीदत्तजये (१) एकां रेखां ददाति । अंशुमतीजये द्वे रेखे ददाति । ततः श्रीदत्तेन कोपाद् ग्रीवायां चम्पितो मृतो व्यन्तरदेवो जातः । श्रीदत्तोऽप्येकदा प्रासादस्थो मेघविनाशमालोक्य वैराग्यान्मुनिर्भूत्वा विहरन्नेकाकी

(१) जये ऽसि एकां

गहरी झील में गिरा दिए गए। परमसमाधि से मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग चले गए।

(७०) तृषा परिषहजय

गाथार्थ- चम्पा नगरी में गंगा के तट पर धर्मघोष नामक महामुनि एक माह का उपवास धारण कर घोर तृषा की वेदना से उत्तम आराधना सहित मरण को प्राप्त हुए। [१५४६]

इसकी कथा—चम्पा में मासोपवास कर धर्मघोष मुनि उद्भग मुनि के गोष्ठ में पारणा कर चले गए। मार्ग भूल जाने पर हरितकाय के ऊपर गमन न कर प्यास पीडित होते हुए गङ्गा के तट पर वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। उन्हे देखकर गगा देवी ने प्रासुक जल से भरा कलश लेकर आकर प्रणाम कर कहा—भगवन्! पानी पीजिए। मुनि ने कहा—सभव नही है। तब गगा देवी ने पूर्वविदेह जाकर केवलज्ञानी से पूर्ववृतान्त कहकर पूछा—किस कारण (मुनि ने) पानी नहीं पिया है? केवली ने उन मुनि से कहा—मुनि लोग देवताओं के हाथ से आहार नहीं लेते हैं। तब शीघ्र आकर सुगन्धित शीतल गन्धोदक की वृष्टि गगा देवी ने की। केवलज्ञान उत्पन्न कर धर्मघोष मुनि मोक्ष चले गए।

[७१] शीतपरिषहजय

गाथार्थ—पूर्वजन्म के वैरी देव के द्वारा शीत से घोर विक्रिया करने से सन्तप्त हुए श्रीदत्त नामक मुनि उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए। [१५४७]

इसकी कथा—इलावर्धन नगर में राजा जितशत्रु, भार्या इला और पुत्र श्रीदत्त था। अयोध्या में अंशुमान राजा की पुत्री अंशुमती को स्वयंवर में विवाहा। अंशुमती के साथ एक तोता आया। वह श्रीदत्त और अंशुमती के जुआ में रत होने पर श्रीदत्त की विजय होने पर एक रेखा खींच देता था। अंशुमती के जीतने पर दो रेखायें खींच देता था। तब श्रीदत्त ने क्रोधित होकर मर्दन में प्रहार किया। मरकर व्यन्तर देव हुआ। श्रीदत्त एक बार जब प्रासाद पर खड़ा

निजनगरमायातः शीतकाले बहिः कायोत्सर्गेण स्थितः । तेन व्यन्तर-देवेन घोरशीतवातो कृत्वा शीतलजलेन सिक्तः परमसमाधिना निर्वाणं गतः ॥

(७२) उण्णमित्यादि ।

(उण्हं वादं उण्हं सिलादलं आदवं च अदिउण्हं ।
सहिदूण उसहसेणो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५४७॥]

अस्य कथा– उज्जयिन्यां राजा प्रद्योत एकदा गजधरणार्थमटव्यां गतो मत्तगजारूढः । तेन च वनगजेन दूरमटवीं प्रवेशितः । वृक्षशाखा-मवलम्ब्यावतीर्णो व्याघुट्यैकाकी खेटग्रामे कूपतटे समुपविष्टः । ग्राम-कूटजिनपालः तस्य पुत्री जिनदत्ता पानीय भर्तुमायाता । तेन जलं पातुं याचिता महापुरुषं ज्ञात्वा जल पाययित्वा तया पितुः कथितम् । तेन गत्वानीय स्नानभोजनादौ कारिते भृत्यलोकाः मिलिताः । जिनदत्ता राज्ञा परिणीता वल्लभा पट्टराज्ञी जाता । कतिपयदिनैर्यस्यां रात्रौ तस्याः पुत्रोत्पत्तिर्जाता तस्यां रात्रौ स्वप्ने वृषभो दृष्टः । ततस्तस्य वृषभसेन इति नाम कृतम् । एवमष्टवर्षेषु गतेषु राज्ञा तपो गृहीतुकामेन पुत्र, राज्यं प्रतिपालय अहं परलोकं साधयामीत्युक्तम् । तेनोक्तम्–राज्यं कुर्वता किं परलोकसिद्धिर्न भवति । पुत्र, न भवति तपः साध्य-त्वात्परलोकस्य । यद्येवं तात, ममापि राज्यकरणे निवृत्तिरस्ति । ततः भ्रातृव्यस्य राज्यं दत्त्वा द्वावपि मुनि जातौ । वृषभसेन एकाकी विहरन् कौशाम्बीपुरीसमीपे हृतवातपर्वत शिलायां ज्येष्ठमासे नित्यमातापनं ददाति सर्वे लोका जिनधर्मे ऽतीव रता जाताः । तत ईर्ष्यावशाद् बुद्धदासोपा-सकेनाग्निवर्णा शिला कृता । चर्यां कृत्वा आगत्य मुनिना शिलामालोक्य सन्यासं गृहीत्वा तत्रातापनस्थिते केवलज्ञानमुत्पादितम् ॥

था तो मेघ का विनाश देखकर वैराग्य से मुनि होकर विहार करता हुआ अकेला अपने नगर आया। शीतकाल में बाहर कायोत्सर्ग पूर्वक खड़ा रहा। उस व्यन्तरदेव ने घोर ठंडी हवा कर शीतल जल छिड़का परमसमाधि से श्रीदत्त निर्वाण को प्राप्त हो गए।

[७२] उष्णपरिषहजय

गाथार्थ—वृषभसेन नामक मुनि उष्णपवन, उष्ण शिलातल तथा अत्यन्त उष्ण सूर्य के आताप को सहकर उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए। [१५४७]

इसकी कथा—उज्जयिनी नगरी में राजा प्रद्योत एक बार हाथी पकड़ने के लिए जंगल में जाकर मतवाले हाथी पर आरूढ़ हुए। उस वन्य हाथी ने उन्हें जंगल में दूर प्रविष्ट करा दिया। वृक्ष की शाखा का सहारा लेकर उतरकर लौटे हुए वह अकेले खेट ग्राम में कुए के तट पर बैठे थे। गाँव का मुखिया जिनपाल और उसकी पुत्री जिनदत्ता पानी भरने के लिए आई। प्रद्योत के द्वारा पीने के लिए जल माँगने पर महापुरुष जानकर जल पिलाकर उसने पिता से कहा- पिता ने जाकर लाकर स्नान भोजनादि कराया। अनन्तर सेवक लोग मिल गए। जिनदत्ता को राजा ने विवाहा। वह राजा की प्रिय पट्ट-रानी हो गई। कुछ दिनों में जिस रात में उसकी पुत्रोत्पत्ति हुई उसी रात में राजा ने स्वप्न में बल देखा। तब उसका वृषभसेन यह नाम रखा। इस प्रकार आठ वर्ष बीत जाने पर राजा ने तप ग्रहण करने की इच्छा से कहा—पुत्र! राज्य का पालन करो, मैं परलोक साधता हूँ। उसने कहा—राज्य करते हुए क्या परलोक की सिद्धि नहीं होती है। यदि ऐसा है तो पिताजी! मुझे भी राज्य करने में निवृत्ति है अर्थात् मैं राज्य नहीं करना चाहता हूँ। तब भतीजे को राज्य देकर दोनों मुनि हो गए। वृषभसेन अकेला विहार करता हुआ कौशाम्बी नगरी के समीप वायुरहित पर्वत की शिला पर जेठ मास में नित्य आतापन योग करता था। (अत:) सब लोग जैनधर्म में अत्यन्त रत हो गए। तब ईर्ष्यावश बुद्धदास उपासक ने शिला अग्नि वर्ण वाली बना दी (अर्थात् तपा दी)। चर्या कर आकर मुनि ने

[७३] क्रौञ्चेनेत्यादि ।

(रोहेडयम्मि सत्तीए हओ कोंचेण अग्गिदइदो वि ।

त बेदणमधियासिय पडिवण्णो उत्तम अट्ठ ॥१५४६॥

अस्य कथा– कार्तिकपुरे राजाग्निर्भार्या वीरमतिः, पुत्री कृत्तिका । एकदा नन्दीश्वराष्टम्यामुपवास कृत्वा जिनपूजा विधाय पितुर्देवशेषां दत्त्वा गच्छन्त्यास्तस्या रूपं दृष्ट्वा ऽग्निराजेनासक्तेन सर्वलिङ्गिनो द्विजा व्यवहारिणश्च पृष्टाः । मम गृहे रत्नमुत्पन्नं कस्य तद्भवति । सर्वैर्भणितम् तवैव भवति । मुनिभिरुक्तम्–कन्यारत्न वर्जयित्वान्यत्तव भवति । ततो ऽनिष्टांस्तान्देशान्निर्घाट्य कृत्तिका परिणीता । कतिपयदिनैः कार्तिकेयः पुत्रो वीरमती पुत्री च तस्या जाता । रोहेडनगरे क्रौञ्चेन राज्ञा सा परिणीता । कार्तिकेयस्य नमिप्रभृतिकुमारैः सह क्रीडां कुर्वतश्चतुर्दश–वर्षाणि गतानि । सर्वकुमाराणा मातामहप्रेषितवस्त्राभरणान्यालोक्य तेन माता पृष्टा– को मे मातामहः, किं न किमपि प्रेषयति । कथित तया-श्रुपात कुर्वत्या । मम तवोप्येक एव पिता । पुनः पृष्ट तेन अय किं केनापि न निषिद्धो राज्ञा । कथित तया–मुनिभिर्निषिद्धः । ते च देशा-न्निर्घाटिताः । पुन. पृष्टम्– कीदृशास्ते, क्व तिष्ठन्ति । निर्ग्रन्था. पिच्छ-कमण्डलुधारिणः परदेशेषु तिष्ठन्ति । इत्याकर्ण्य निर्गतो मुनीनालोक्य मुनिर्भूतः । माता तदार्तेन मृत्वा व्यन्तरदेवी जाता । कार्तिकेयमुनिर्विह-रन् रोहेडनगरे ज्येष्ठामावास्यायां चर्यायां प्रविष्टो वीरमतिभगिनी प्रासादोपरिमभूमिस्था मम भ्रातेति परिज्ञायोत्संगस्थ भर्तुः शीर्षं परि-त्यज्य शीघ्रं गत्वा तत्पादयोर्लग्ना । क्रौञ्चेन तां तथा दृष्ट्वा संजात कोपेन मुनिः शक्तया हतो मूर्च्छितो जननीचरव्यन्तरदेव्या मयूररूपेण

शिला देखकर संन्यास ग्रहण कर उस पर आतापन योग में स्थित हो केवलज्ञान उत्पन्न किया।

(७३) सहन शक्ति

रोहेडग नामक नगर में अग्नि नामक राजा का पुत्र क्रौंच नामक वैरी के द्वारा शक्ति नामक आयुध से मारा गया और उसकी वेदना को सहकर उत्तम अर्थ को प्राप्त हुआ। [१५४६]

इसकी कथा--कार्तिकपुर में राजा अग्नि, भार्या वीरमती तथा पुत्री कृत्तिका थी। एक बार नन्दीश्वर पर्व की अष्टमी को उपवास कर जिनपूजा कर शेष पितृ देव को देकर जाती हुई उसके रूप को देखकर आसक्त अग्निराज ने समस्त लिङ्गी, द्विज और न्यायाधीशों से पूछा--मेरे घर में रत्न उत्पन्न हुआ है, वह किसका होता है? सभी ने कहा--तुम्हारा ही होता है। मुनियों ने कहा--कन्यारत्न को छोड़कर अन्य सब तुम्हारा होता है। तब अनिष्ट उन्हें घर से निकाल कर कृत्तिका से राजा ने विवाह कर लिया। कुछ दिनों में उसके कार्तिकेय पुत्र और वीरमती पुत्री उत्पन्न हुई। रोहेडनगर के क्रौञ्च राजा ने (वीरमती) से विवाह किया। कार्तिकेय के नमिप्रभृतिकुमारों के साथ क्रीडा करते हुए चौदह वर्ष बीत गए। समस्त कुमारों के मातामहों (नानाओं) द्वारा भेजे गए वस्त्र और आभरण देखकर उसने माता से पूछा--मेरा नाना कौन है, क्या कुछ नहीं भेजता है? उसने आँसू गिराते हुए कहा--मेरा और तुम्हारा पिता एक ही है। पुनः उसने कहा--क्या किसी ने राजा को नहीं रोका? उसने कहा--मुनियों ने रोका था। वे देश से निकाल दिए गए। पुनः पूछा--वे कैसे है? कहाँ हैं? निर्ग्रन्थ, पिच्छिका और कमण्डलु को धारण करने वाले वे परदेश में हैं। यह सुनकर मुनियों को देखकर मुनि हो गया। माता उससे दुःखी होकर व्यन्तर देवी हुई। कार्तिकेय मुनि विहार करते हुए रोहेडनगर में ज्येष्ठ मास की अमावस्या को चर्या के लिए प्रविष्ट हुए। प्रासाद की ऊपरी भूमि में स्थित वीरमति बहिन मेरे भाई आए हैं, यह जानकर गोद में स्थित पति के सिर को छोड़कर शीघ्र आकर उनके पैरों में पड़ गई। क्रौञ्च ने उसे वैसा देखकर कुपित होकर मुनि

शीतलस्वामिगृहे धृतः । समाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गतः । देवैः पूजा कृता । ततः स्वामिकार्तिकेय इति तीर्थं जातम् । वीरमतीसंबन्धेन भाउ आइका [?] पर्व संजाता ॥

[७४] यतिरभयघोषनामेत्यादि ।

[काइंदि अभयघोसो वि चडवेगेण छिण्णसव्वगो ।
तं वेयणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५०॥]

अस्य कथा– काकन्दीनामनगर्यां राजा अभयघोषो राज्ञी अभयमतिः । एकदा बहिर्गतेन राज्ञा चतुःपादेषु बद्ध्वा जीवन्तं कच्छपं स्कन्धे यष्ट्यावलम्ब्यागच्छन् धीवरो दृष्टः । राज्ञा चक्रेण कच्छपस्य चत्वारः पादाः छिन्नाः । कच्छपो ऽतिदुःखेन मृत्वा तस्यैव राज्ञः पुत्रश्च ण्डवेगनामा जातः । एकदा चन्द्रग्रहणमालोक्याभयघोषश्चण्डवेगाय राज्यं दत्त्वा मुनिर्भूत्वैकाकी विहृत्य काकन्द्यामुद्याने वीरसेनेन स्थितः । पूर्ववैराच्चण्डवेगेन चक्रेन हस्तौ पादौ च छिन्नौ । परसमाधिना केवलज्ञानमुत्पाद्य मुनिर्मोक्षं गतः ॥

[७५] दंशरपीत्यादि ।

(दंसेहिं य मसएहिं य खज्जंतो वेदणं परं घोरं ।
विज्जुच्चरो धियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५१॥)

अस्य कथा–मिथिलानगर्यां राजा वामरथः, तलारो यमदण्डः, चोरो विद्युच्चरनामा नानाविज्ञानोपेतः । दिवसे शून्यदेवकुले शूनहस्तपादकुष्ठी रङ्को भूत्वा तिष्ठति । रात्रौ चोरिकायां भोगानुभवनं च दिवि दिव्यरूपेण करोति । एकदा वामरथराजस्य हारस्तेन हृतः । प्राते (ता) राज्ञा यमदण्डो भणितः । रात्रौ दिव्यरूपेण चोरेण मां मोहयित्वा हारो नीतः

को शक्ति नामक आयुध से मारा। मूर्च्छित उन्हें माता के जीव व्यन्तर देवी ने मयूर रूप धारण कर उन्हें शीतलस्वामि के घर में रखा। समाधि से मृत्युप्राप्त कर वे स्वर्ग गए। देवों ने पूजा की। तब से स्वामिकार्तिकेय यह तीर्थ हो गया। वीरमती के सम्बन्ध से 'भाउआएका पर्व हो गया।

(७४) परमसमाधि

गाथार्थ– काकन्दी में अभयघोष भी चण्डवेग के द्वारा काटे गए सर्वाङ्ग वाला होकर उस वेदना को सहनकर परमस्थान को प्राप्त हुआ। (१५५०)

इसकी कथा– काकन्दी नामक नगरी में राजा अभयघोष और रानी अभयमति थी। एक बार बाहर गए हुए राजा ने चारों पैर बांधकर जीते हुए कछुए को कन्धे पर लाठी के सहारे अलम्बन कर जाते हुए धीवर को देखा। राजा ने चक्र से कछुए के चारों पैर काट दिए। कछुआ अत्यन्त दुःख से मरकर उसी राजा का चण्डवेग नामक पुत्र हुआ। एक बार चन्द्रग्रहण देखकर अभयघोष चण्डवेग को राज्य देकर मुनि होकर एकाकी विहारकर काकन्दी के उद्यान में वीरसेन के सा‹ बैठे थे। पूर्वजन्म के वैर से चण्डवेग ने चक्र से दोनों हाथ और पैर काट दिए। परमसमाधि से केवलज्ञान उत्पन्न कर मुनि मोक्ष चले गए।

[७५] दंशमशक परिषहजय

गाथार्थ– डाँस और मच्छरों से खाया जाता हुआ अत्यधिक घोर वेदना को सहकर विद्युच्चर उत्तम अर्थ को प्राप्त हुआ। (१५५१)

इसकी कथा मिथिला नगरी में राजा वामरथ, नगररक्षक यमदण्ड तथा नाना विज्ञान से युक्त विद्युच्चर चोर था। दिन में सूने मन्दिर में सूजे हुए हाथ पैर से युक्त गरीब कोढ़ी होकर बैठता था। रात में चोरी करने पर भोगों का अनुभव स्वर्ग के दिव्यरूप से करता था। एक बार वामरथ राजा का हार उसने हर लिया। प्रातः काल राजा ने यमदण्ड से कहा। रात्रि में दिव्य रूप से युक्त चोर ने मुझे मोहित

तं हारं सप्तरात्रेणानयान्यथा तव निग्रहं करिष्यामीति । सप्तमदिने ऽन्नाथशालायाः स कुष्ठी धृत्वा तलारेण राजाग्रे नीतः । चौरो ऽयमिति भणितम् । तेनोक्तम्-नाहं चौरः । तलारेणोक्तम् । देवायमेव चौरः । ततो लोकैरुक्तम् । देव तलारश्चौरमप्राप्नुवन् रङ्कं पर्यटकं मारयति । तलारेण निजगृहं नीत्वा माघमासे रात्रौ सेचनबन्धनताडनदाहनादिद्वात्रिंशत्कदर्थनाभिः कदर्थितः । तथापि नाहं चौर इति वदति । प्रभाते राजाग्रे नीत्वा तलारेणोक्तम्-देव चौरो ऽयमिति । चौरेणोक्तम् -नाहं चौर इति । अभयप्रदानं दत्त्वा राज्ञा स भणितः । किं त्वं चौरो न वा । ततस्तेनोक्तम्-चौरो ऽहम् । पुनः पृष्टं राज्ञा-कथं त्वया द्वात्रिंशत्कदर्थनाः दुःसहाः सोढाः । कथितं तेन-मया मुनिपार्श्वे नरकदुःखं श्रुतम् तस्मात्को'टभागमिद न भवतीति संचिन्त्य सोढं दुःखम् । तुष्टेन राज्ञा वरं प्रार्थयेत्युक्त । भणितं तेनास्य तलारस्य मम मित्रस्याभयप्रदानं दीयताम् । राज्ञा पृष्टम्-कथं तव मित्रमेषः । स कथयति । दक्षिणापथे ऽभीरदेशे वेनानदीतीरे वेनातटनगरे राजा जितशत्रुर्भार्या जयावली तत्पुत्रो ऽहं विद्युच्चौरः । तत्र तलारो यमपाशो, भार्या यमुना, तत्पुत्रो ऽयं यमदण्डः । एकोपाध्यायपार्श्वे मया चौरशास्त्रं शिक्षितमनेन च तलारशास्त्रम् । द्वाभ्यां प्रतिज्ञा कृता । मयोक्तम्-यत्र त्वं तलारस्तत्रावश्यं मया चोरिका कर्तव्या । अनेन चोक्तम्-यत्र त्वं चौरस्तत्रावश्यं मया रक्षितव्यम् । एकदा राजा मम निजपदं समर्प्य मुनिर्जातः । तलारो ऽप्यस्य निजपदं समर्प्य मुनिर्जातः । मदीयभयादागत्य तवायं तलारो जातः । अमुं गवेषयितुमत्र गत्याहं प्रतिज्ञावशाच्चौरो जातः । पत्तनद्रव्यं हारपर्यन्तं सर्वं कथयित्वा पञ्चशतमुनिभिः सह विहरन् ताम्रलिप्तपत्तनं गतः । पत्तनप्रवेशे स चामुण्डया आगत्य वारितः- भगवन्मम पूजा यावत्समाप्यते तावत्पत्तनं मा प्रविश त्वम् । शिष्यैः प्रेरितस्तत्र प्रविश्य पश्चिम

कर हार ले लिया। उस हार को सात दिन के अन्दर ले आओ, नहीं तो तुम्हें दण्ड दूंगा। सात दिन अनाथशाला से उस कैदी को पकड़-कर नगररक्षक राजा के आगे ले गया तथा कहा कि यह चोर है। उसने कहा—मैं चोर नहीं हूँ। नगररक्षक ने कहा—महाराज! यही चोर है। तब लोगों ने कहा—महाराज! नगररक्षक चोर को न पाता हुआ रंक पर्यटक को मार रहा है। नगररक्षक ने अपने घर ले जाकर माघ के माह में रात्रि में खींचना, बाधा पहुंचाना, ताड़ना, जलाना आदि बत्तीस प्रकार से पीड़ित कर तिरस्कृत किया तो भी, मैं चोर नहीं हूँ, यही कहता था। प्रातःकाल राजा के आगे ले जाकर नगररक्षक ने कहा—महाराज यह चोर है। चोर ने कहा—मैं चोर नहीं हूँ। अभयदान देकर राजा ने उससे कहा—क्या तुम चोर हो या नहीं? तब उसने कहा—मैं चोर हूँ। पुन राजा ने पूछा—तुमने कैसे बत्तीस पीड़ायें सहन कीं। उसने कहा-मैंने मुनि के पास नरक दुःख सुना था। उससे करोड़वाँ भाग भी यह नहीं हो रहा है, ऐसा सोचकर दुःख सहा। राजा ने सन्तुष्ट होकर वर माँगो, ऐसा कहा। उसने कहा- मेरे इस मित्र नगर रक्षक को अभयदान दो। राजा ने पूछा- यह तुम्हारा मित्र कैसे है? वह कहने लगा दक्षिणा पथ में अभीर देश में बेना नदी के किनारे बेनातट नगर में राजा जितशत्रु, भार्या जयावती और उसका पुत्र मैं विद्युच्चोर हूँ। वहाँ पर नगररक्षक यमपाश, भार्या यमुना और उसका पुत्र यह यम-दण्ड है। एक उपाध्याय के पास मैंने चौर शास्त्र सीखा और इसने तलार शास्त्र। दोनों ने प्रतिज्ञा की। मैंने कहा—जहाँ तुम नगररक्षक बनोगे वहाँ मैं अवश्य चोरी करूंगा। इसने कहा-जहाँ तुम चोर होगे, वहाँ मैं अवश्य रक्षा करूंगा। एक बार राजा मुझे अपना पद सौंप-कर मुनि हो गए। नगररक्षक भी इसे अपना पद सौंपकर मुनि हो गया। मेरे भय से आकर यह तुम्हारा नगररक्षक हो गया। इसे खोजने के लिए यहाँ आकर मैं प्रतिज्ञावश चोर हो गया। पत्तन का धन हार पर्यन्त सब कहकर पाँच सौ मुनियों के साथ विहार करते हुए ताम्रलि-प्तपत्तन को गया। पत्तन प्रवेश करते समय उसे चामुण्डा ने आकर रोका-भगवन्! जब तक मेरी पूजा समाप्त होती है, तब तक तुम पत्तन में प्रवेश मत करो। शिष्यों के द्वारा प्रेरित किए जाने पर वहाँ प्रवेश

दिशि प्राकारसमीपे रात्रौ प्रतिमायोगेन स्थितः । चामुण्डया कपोतप्रमाण दंशमशकैस्तस्योपसर्गः कृतः । विद्युच्चरमुनिस्तमुपसर्गमनुभूय मोक्ष गतः ॥

(७६) हस्तिनागपुरगुरुदत्त इत्यादि ।

[हत्थिणपुरगुरुदत्तो संबलिथाली व दोणिमंतम्मि ।
उज्झतो अधियासिय पडिवण्णो उत्तम अट्ठ ॥१५५०॥

अस्य कथा– हस्तिनागपुरे राजा विजयदत्तो, राज्ञी विजया, पुत्रो गुरुदत्तः । तस्मै राज्यं दत्त्वा विजयदत्तो मुनिरभूत् । लाटदेशे द्रोणीपर्वत–समीपे चन्द्रपुरीनगर्यां राजा चन्द्रकीर्तिर्भार्या चन्द्रलेखा, पुत्री अभयमतिः गुरुदत्तेन परिणेतुं याचिता न दत्ता । कोपाद् गुरुदत्तेन गत्वा चन्द्रपुरी वेष्टिता । अभयमत्या वार्तामाकर्ण्य जातानुरागया चन्द्रकीर्तिर्भणितः– तात मां गुरुदत्ताय देहि । ततो दत्ता गुरुदत्तस्य । लोकै कथितम् –द्रोणीमति–पर्वते व्याघ्रीस्तिष्ठति । तेन समस्तो देश उद्वासितः । तच्छ्रुत्वा सर्वजनेन सह गत्वा वेष्टितो व्याघ्रः । स च गुहायां प्रविष्टः । गुहायमभ्यन्तरे काष्ठानि प्रक्षिप्याग्निः प्रज्वालितः । चन्द्रपुरीनगर्यां ब्राह्मणो भरतो, भार्या विश्वदेवी. व्याघ्रो मृत्वा तत्पुत्र. कपिलनामा जातः । गुरुदत्ताभयमत्योः सुवर्णभद्रनामा पुत्रो जातः । तस्मै राज्यं दत्त्वा गुरुदत्तो मुनिरभूत । विहरत्कपिलक्षेत्रसमीपे कायोत्सर्गेण स्थितः । कपिलो ऽपि निजभार्यां कपिलां भोजनं गृहीत्वा शीघ्रं त्वमागच्छेत्युक्त्वा तत्क्षेत्रे गतः । तत्क्षेत्रं कर्षणा–योग्यं मत्वा भट्टारको भणितस्तेन । मदीयब्राह्मण्या. कथयेस्त्वं तव भर्तान्य–क्षेत्रं गत इति भणित्वा गतः । ब्राह्मण्या आगत्य पृष्टो मुनिर्मौनेन स्थितो

कर पश्चिम दिशा में प्राकार के समीप रात्रि में प्रतिमायोग से विद्यु-च्चोर स्थित हो गया। चामुण्डा ने कबूतर के बराबर दश मशकों से उनके ऊपर उपसर्ग किया। विद्युच्चर मुनि उस उपसर्ग का अनुभव कर मोक्ष चले गए।

[७६] परम ध्यान

गाथार्थ– हस्तिनापुर में गुरुदत्त नामक मुनि द्रोणिमति नामक पर्वत पर सबलिथाली के समान दग्ध होते हुए भी उसे सहकर उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए। (१५५२)

नोट– हरे धान्य के कणों को घड़े में भरकर भूमि में कुछ गाड़-कर ऊपर से अग्नि प्रज्वलित कर धान्य को पकाने का नाम संबलि-थाली है।

इसकी कथा— हस्तिनागपुर में राजा विजयदत्त, रानी विजया और पुत्र गुरुदत्त थे। गुरुदत्त को राज्य देकर विजयदत्त मुनि हो गये। लाट देश में द्रोणी पर्वत के समीप चन्द्रपुरी नगरी में राजा चन्द्रकीर्ति भार्या चन्द्रलेखा, तथा पुत्री अभयमति थी। गुरुदत्त ने अभयमती को परिणय हेतु माँगा, किन्तु वह नहीं दी गई। कोप से गुरुदत्त ने आकर चन्द्र पुरी को घेर लिया। अभयमती ने समाचार सुनकर अनुरक्त हो चन्द्र-कीर्ति से कहा– पिता जी! मुझे गुरुदत्त को दे दो। तब गुरुदत्त को दे दी गई। लोगों ने कहा– द्रोणीमति पर्वत पर व्याघ्र है। उसने सारे देश को निकाल दिया है। उसे सुनकर सब जनों के साथ जाकर व्याघ्र को घेर लिया। व्याघ्र गुहा में घुस गया। गुफा के भीतर लकड़ियाँ फेंककर आग लगा दी।

चन्द्रपुरी नगरी ब्राह्मण भरत तथा भार्या विश्वदेवी थी, व्याघ्र मरकर उसका कपिल नामक पुत्र हुआ। गुरुदत्त और अभयमती के सुवर्णभद्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे राज्य देकर गुरुदत्त मुनि हो गया। विहार करते हुए कपिल के खेत के पास कायोत्सर्गपूर्वक खड़ा हो गया। कपिल भी अपनी पत्नी कपिला को भोजन लेकर तुम शीघ्र आओ, ऐसा कहकर उस खेत में चला गया। उस खेत को जोतने अयोग्य मानकर उसने भट्टारक (मुनि) से कहा– मेरी ब्राह्मणी से तुम

ब्राह्मणी गृहं गता । बृहद्वेलायां कपिलेनागत्य ब्राह्मणी निर्भर्त्सिता । भट्टारकं पृष्ट्वा किं नायातासि । तयोक्तम्–पृष्टो ऽपि स न कथयति । ततो रुष्टेन तेन वस्त्रा शाल्मलितूलेन वेष्टयित्वाग्निः प्रज्वालितः । मुनिना परमध्यानेन केवलज्ञानमुत्पादितम् । देवागमने जाते आत्मानं निन्दयित्वा तस्यैव समीपे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः ॥

[७७] गाढप्रहारविद्ध इत्यादि ।

[गाढप्पहारविद्धो मूइंगलिया हि चालणी व कदो ।
तध वि य चिलाधपुत्तो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठ ॥१५५३॥

अस्य कथा– राजगृहनगरे राजा श्रेणिक एकदा वाह्यात्यागतो दुष्टाश्वेन महाटवीं नीतः । तत्राटविकयमदण्डराजेन तिलकावत्याः पुत्रस्य त्वया राज्यं दातव्यमिति भणित्वा निजपुत्री तिलकावतीं परिणाय्य राजगृहं प्रेषितः । तिलकावत्याश्चिलातपुत्रनामा पुत्रो जातः । एकदा राज्ञा मम बहुपुत्राणा मध्ये को राजा भविष्यतीति संचिन्त्य नैमित्तिकः पृष्ठः कथितं तेन– सिंहासनस्थो भेरीं ताडयन् कुक्कुराणां क्षैरेयीं ददानो यो भुङ्क्ते अग्निदाहे च यो हस्तिसिंहासनच्छत्रादिकं निःसारयति स राजा भविष्यति । शुभदिने परीक्षार्थमेकदा सिंहासनभेरीसमीपे सर्वेषां राजकुमाराणां भोक्तुमुपविष्टानां क्षैरेयीं परिवेषयित्वा पञ्चशतानि कुकुराणां मुक्तानि । ततः सर्वे ते नष्टाः । श्रेणिकेन सर्वाणि क्षैरेयीभृतभाजनान्यात्मसमीपे धृत्वा एकैक भाजनं कुकुराणां मुञ्चता भेरीमाताडयता सिंहासने उपविश्य क्षैरेयीं भुङ्क्तवा अग्निदाहे च जाते हस्तिसिंहासनच्छत्रादिकं निःसारितं ज्ञात्वा राजा शत्रुभयात्कुकुरविट्टालणादिदोषं दत्त्वा देशान्निर्घाटितो द्राविडदेशे काञ्चीपुरे गत्वा स्थितः । एकदा

कहना कि तुम्हारा पति दूसरे खेत को गया है। ब्राह्मणी ने आकर मुनि से पूछा। मुनि मौन खड़े थे। ब्राह्मणी घर चली गई। बड़ी देर होने पर कपिल ने आकर ब्राह्मणी को फटकारा। भट्टारक से पूछकर क्यों नहीं आई? उसने कहा— पूछने पर भी उन्होंने नहीं बतलाया। तब रुष्ट होकर कपिल ने जाकर सेमर की रुई से लपेट कर अग्नि जला दी। मुनि ने परमध्यान से केवलज्ञान उत्पन्न किया देवों का आगमन होने पर अपनी निन्दा कर उन्हीं के समीप धर्म के सुनकर कपिल मुनि हो गया।

[७७] समभाव

गाथार्थ— रुढ़ आयुध प्रहार से विद्ध, चालनी के समान किए गए भी चिलातपुत्र [समभावों के कारण] उत्तम स्थान को प्राप्त हुए। (१५५३)

इसकी कथा— राजगृह नगर में राजा प्रश्रेणिक जब एक बार अश्वक्रीडनक स्थान को गया हुआ था तो उसे एक दुष्ट अश्व महा-वन में ले गया। वहाँ पर आटविक यमदण्ड राजा ने तिलकावती के पुत्र को तुम राज्य देना, ऐसा कहकर तिलकावती का विवाह कर राजगृह को भेजा। तिलकावती के चिलातपुत्र नामक पुत्र हुआ। एक बार राजा ने मेरे बहुत से पुत्रों के मध्य कौनराजा होगा? ऐसा विचारकर नैमित्तिक से पूछा। नैमित्तिक ने कहा— सिंहासन पर स्थित हो भेरी बजाता हुआ कुक्करों को खीर देता हुआ जो खायेगा तथा जो अग्निदाह होने पर हाथी, सिंहासन तथा छत्रादिक निकालेगा, वह राजा होगा। शुभ दिन में परीक्षा के लिए एक बार सिंहासन तथा भेरी के समीप सभी राजकुमार जब खाने बैठे हुए थे तब उन्हें खीर भिजवाकर पाँच सौ कुत्ते छोड़ दिए गए। तब वे सब राजकुमार भाग गए। श्रेणिक ने खीर से भरे समस्त बर्तनों को अपने पास रखकर एक—एक बर्तन कुत्तों को छोड़ते हुए, भेरी बजाते हुए, सिंहासन पर बैठकर खीर खाकर अग्निदाह होने पर हाथी, सिंहासन, छत्रादिक निकाल दिए। यह जानकर राजा ने शत्रु के भय से कुत्तों को भगाने इत्यादि का दोष लगाकर श्रेणिक को निकाल दिया।

चिलातपुत्राय राज्यं दत्त्वा प्रश्रेणिको मुनिरभूत्। चिलातपुत्रो ऽन्याय-पर:। तत: श्रेणिकेनागत्य निर्घाटितो महाटव्यां दुर्गं कृत्वा देशाकरं गृहीत्वा कालं गमयति । अस्य सखा भर्तृमित्र.। तस्य मातुलो रुद्रदत्तो भर्तृमित्रस्य निजपुत्री सुभद्रां न ददाति। ततो भर्तृमित्रवचनात्पञ्च-शतसुभटै. सह राजगृहमागत्य चिलातपुत्रो विवाहस्नानकाले तां छलेन हृत्वा गत:। तच्छ्रुत्वा सर्वबलेन सह श्रेणिक: पृष्ठे लग्न:। पलायितु-मसमर्थेन तेन मारिता सुभद्रा व्यन्तरदेवी जाता। चिलातपुत्रेण नश्यता वैभारपर्वतस्योपरि पञ्चशतमुनिसमन्वितं दत्तमुनिं दृष्ट्वा तेनोक्तम्-भगवन्मे तपो देहि। स्वकार्यं साधयामि। मुनिनोक्तम्-पुत्र गृहीत्वा तप: स्वकार्यं शीघ्रं साधय अष्टदिनान्येव तवायुरस्ति। ततस्तपो गृहीत्वा पादोपयानमरणे स्थित:। श्रेणिकस्तं तथा स्थितं दृष्ट्वा वन्दित्वा प्रशस्य च व्याघुट्य गत.। सुभद्रया च व्यन्तरदेव्या पूर्ववैरात्सौलिकारूपेण तन्मस्तके स्थित्वा लोचने तस्योत्पाटिते स्थूलशिरो मधुमक्षिकारूपं विकृत्याष्टदिनान्यनवरत भक्ष्यमाणो ऽपि समाधिना मृत्वा सर्वार्थसिद्धा-वुत्पन्न:॥

[७८] धन्यो यमुनाचक्रेणेत्यादि।

[धण्णो जउणावकेण तिक्खकंडेहि पूरिदंगो वि।
त वेयणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं॥१५५४॥]

अस्य कथा- जम्बूद्वीपपूर्वविदेहे वीतशोकपुरे राजा अशोको धान्यगाह (ल) नकाले बलीवर्दानां मुखबन्धनं कारयति। महानसे च पाकं कुर्वन्तीनां स्तनबन्धं कारयित्वा बालानां स्तनं पातुं न ददाति। एकदा शिरसि मुखे च तस्य रोगो ऽभूत्। ततस्तस्य स्फेटनार्थं वरौषधं पाचयित्वा भाजने भोजनाय गृहीतम्। तत्प्रस्तावे चर्यागतमुनये तदौषधं दिव्यपथ्यं च दत्तं

श्रेणिक द्राविड देश में काञ्चीपुर में आकर रहे। एक बार चिलात पुत्र को राज्य देकर प्रश्रेणिक मुनि हुए। चिलातपुत्र अन्याय परायण था। अतः श्रेणिक ने आकर निकाल दिया। वह महाजंगल में दुर्ग बनाकर कुछ कर लेकर काल बिताता था। चिलातपुत्र का मित्र भर्तृमित्र था। भर्तृमित्र का मामा रुद्रदत्त भर्तृमित्र को अपनी पुत्री सुभद्रा नहीं देता था। तब भर्तृमित्र के वचनों से पाँच सौ सुभटों के साथ राजगृह में आकर चिलातपुत्र विवाह के स्नान के समय उसे (सुभद्रा को) छलपूर्वक मारकर चला गया। यह सुनकर श्रेणिक सारी सेना के साथ पीछे लग गया। भागने में असमर्थ उसके द्वारा मारी गई सुभद्रा व्यन्तरी हुई। चिलातपुत्र ने भागते हुए वैभार पर्वत के ऊपर पाँच सौ मुनियों से युक्त दत्तमुनि को देखकर उनसे कहा— भगवन्! मुझे तप दो। अपना कार्य सिद्ध करूँगा। मुनि ने कहा— पुत्र तप ग्रहण कर अपना कार्य शीघ्र सिद्ध करो, तुम्हारी आयु आठ दिन की ही है। तब तप ग्रहण कर पादोपगमन मरण में स्थित हो गए। श्रेणिक उन्हें वैसा स्थित देखकर वन्दना कर तथा प्रशंसा कर लौट गया। सुभद्रा के जीव व्यन्तरदेवी ने पूर्व वैर से सौलिका (एक पक्षी) के रूप में उनके मस्तक पर बैठकर उनके दोनों नेत्र उखाड़ लिए। बड़े सिर वाली मधुमक्खी का रूप बनाकर वह आठ दिन तक लगातार उन्हें खाती रही। इतना होने पर भी चिलातपुत्र मुनि समाधिपूर्वक मरे और सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए।

[७८] समाधि का बल

गाथार्थ— यमुनावक्र के तीक्ष्ण बाणों से पूरित अंग वाले धण्ण मुनि उस वेदना को सहन कर उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए। (१५५४)

इसकी कथा— जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में वीतशोकपुर में राजा अशोक धान्य निकालते समय बैलों के मुख में बन्धन लगवाता था तथा रसोई बनाती हुई स्त्रियों का स्तनबन्धकराकर बालकों को स्तनपान नहीं करने देता था। एक बार उसके सिर और मुँह में रोग हो गया। तब उस रोग को दूर करने के लिए श्रेष्ठ औषधियों को पकवाकर पात्र में भोजन ग्रहण किया। उसी समय चर्या के लिए आए हुए

यो मे रोगः सो ऽस्यापीति ज्ञात्वा । ततो द्वादशवार्षिको रोगो मुनेर्नष्टः । भरतक्षेत्रे आमलकण्ठनगरे राजानिष्टसेनो राज्ञी नदीमतिः । अशोकराजो भूत्वा तद्दानफलात्पुत्रो धन्यनामा जातः । अरिष्टनेमितीर्थंकरपादमूले धर्ममाकर्ण्य स्वल्पायुर्ज्ञात्वा मु निर्जातः । पूर्वकर्मोदयाद्भिक्षामलभमानो ऽप्युग्रोग्र तपः कुर्वाणः सवरीपुरे यमुनायाः पूर्वतटे आतापनस्थः पापर्द्धिगतेन व्याघुटितेन यमुनाचक्रेण राज्ञा अपशकुनाद् बाणैः पूरितो ऽपि समाधिना सिद्धि गतः ॥

[७९] अर्धसहस्रप्रमिता इत्यादि ।

[अभिणंदणादिगा पंच सया णयरम्मि कुम्भकारकडे ।
आराधणं पवण्णा पीलिज्जंता वि जंतेण ॥१५५५॥]

एतेषां कथा– दक्षिणापथे भरतदेशे कुम्भकारकटनगरे राजा दण्डको, राज्ञी सुव्रता, मन्त्री बालकः । तत्राभिनन्दनादयः पञ्चशतमुनयः समायाताः । खण्डकमुनिना बालकमन्त्री वादे जितः । ततो रुष्टेन तेन भण्डो मुनिरूपं कारयित्वा सुव्रतया सम रममाणो राज्ञो दर्शितः । भणितं च तेन– देव, दिगम्बरेषु भक्त्यातिमुख्यो ऽसि येन भार्यामपि तेभ्यो दातुमिच्छसि । ततो रुष्टेन राज्ञा मुनयो यन्त्रे निपीलिताः । ते तमुपसर्गं प्राप्य परमसमाधिना सिद्धि गताः ॥

(८०) गोष्ठे प्रायोपगत इत्यादि ।

(गोट्ठे पाओवगदो सुबंधुणा गोव्वरे पलिविदम्मि ।
डज्झंतो चाणक्को पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५६॥]

अस्य कथा– पाटलिपुत्रनगरे राजा नन्दः, कावि सुबन्धुशकटालास्त्रयो मन्त्रिणः, पुरोहितः कपिलो, भार्या देविला, पुत्रश्चाणक्यो वेद–

मुनि को यह जानकर कि जो मुझे रोग है, वह इन्हें भी है, वह औषध तथा दिव्य पथ्य दिया। उससे मुनि का बारह वर्ष का (पुराना) रोग नष्ट हो गया। भरतक्षेत्र में आमलकण्ठ नगर में राजा अनिष्ट सेन और रानी नदीमति थी। अशोकराज मरकर उस दान के फल से धन्य नामक पुत्र हुआ। अरिष्टनेमि तीर्थंकर के पादमूल में धर्म सुन कर वह अपने को स्वल्पायु जान मुनि हो गया। पूर्व कर्म के उदय से भिक्षा न प्राप्त करने पर भी अत्यधिक उग्र तप करते हुए संवरी पुर में यमुना के पूर्व तट पर आतापन योग में स्थित हो शिकार से लौटे हुए यमुनाचक्र राजा के द्वारा अपशकुन के कारण बाणों से पूरित होने पर भी समाधि [के बल] से सिद्धि को प्राप्त हुआ।

[७९] परम सिद्धि

गाथार्थ– कुम्भकार कट नामक नगर में यन्त्र [घानी] में पीले जाते हुए पाँच सौ मुनि आराधना को प्राप्त हुए। (१५५५)

इनकी कथा– दक्षिणापथ में भरत देश में कुम्भकारकट नगर में राजा दण्डक, रानी सुव्रता और मन्त्री बालक था। वहाँ पर अभि–नन्दनादि पाँच सौ मुनि आए। खण्डक मुनि ने बालक मन्त्री को वाद में जीत लिया। तब रुष्ट होकर उसने भण्ड को मुनि बनाकर सुव्रता से रमण करते हुए राजा को दिखा दिया तथा उससे [राजा से] कहा– महाराज! दिगम्बरों में अपकी भक्ति अधिक है, जिसके कारण अपनी भार्या भी उन्हें देना चाहते हो। तब रुष्ट होकर राजा ने मुनियों को यन्त्र में पील दिया। वे उस उपसर्ग को पाकर परमसमाधि से सिद्धि को प्राप्त हो गए।

(८०) उपसर्ग विजय

गाथार्थ– सुबन्धु के द्वारा गोष्ठ में आग लगाए जाने पर गोबर में प्रायोपगमन संन्यास को धारण किए हुए चाणक्य मुनि जलकर उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए। (१५५६)

इसकी कथा– पाटलिपुत्र नगर में राजा नन्द, कवि सुबन्धु और शकटाल नामक तीन मन्त्री, कपिल पुरोहित, देविला भार्या तथा वेद

पारगः । एकदा काविमन्त्रिणा नन्दस्य कथितम्- देव, तवोपरि प्रत्यन्त-वासिनो राजानश्चलिताः । नन्देनोक्तम्-द्रव्य दत्त्वा तान्निवारय । ततः काविना यथायोग्यं द्रव्यं दत्त्वा ते निवारिताः । एकदा नन्देन भाण्डागारिको भाण्डागारे द्रव्यं पृष्टः । तेनोक्तम्-काविना सर्वं द्रव्यं प्रत्यन्त-वासिनां दापितं वर्तते । रुष्टेन नन्देन सकुटुम्बः काविरन्धकूपे निक्षिप्तः संकटद्वारे तत्रैकैक भक्तशराव स्तोकजलं च वरत्राबन्धं तस्य दीयते । काविना भणितम्-सकुटुम्ब नन्दं यो विनाशयति स 'भुञ्ज्यादिति । [१] सर्वैर्भणितम्-त्वमेवात्र समर्थः । ततः कूपतटे बिलं कृत्वा तत्र भोजन कुर्वाणस्त्रीणि वर्षाणि स्थितः । मृत कुटुम्बम् । प्रत्यन्तवासिनां क्षोभे जाते नन्देन स्मृत्वा काविः कूपान्निःसार्य मन्त्रिपदे धृतः । एकदा नन्दवंशविनाशार्थं पुरुषमन्वेषयता काविनाटवीमध्ये सच्छात्रं दर्भसूचीं खनन्तं चाणक्यं दृष्ट्वा पृष्टः । किमर्थमिमां खनसि । कथित तेन । विद्धो ऽहमनयेति । काविनोक्तम्-पूर्यते बहु क्षमां कुरु । चाणक्येनोक्तम्- न च खनेद्यस्य न मूलमुद्धरेन्न तद्वध्येद्यस्य शिरो न कृन्तयेदिति । एतदाकर्ण्य चिन्तित काविना नन्दवंशविनाशने ऽयं योग्य इति । यशस्वत्या चाणक्यभार्यया चाणक्यो भणितः-देव नन्द कपिलां ददाति तां त्वं गृहाण । तेनोक्तम्-गृह्णामि । तं ज्ञात्वा काविना नन्दो भणितः- कपिलासहस्रं देहि । तेनोक्त ददामि । ब्राह्मणानानय । तन्निमित्तं काविना नन्दो भणित । चाणक्यो ऽग्रासने धृतस्तेन च कुडीभिः [?] बहून्यासनानि स्वीकृतानि । तमालोक्य काविना स भणितो भट्टः । नन्दो भणति बहवो ब्राह्मणाः समायाता एकमासन मुञ्च त्वम् । तेन च मुक्तमेकमेव । सर्वासनानि मोचयित्वा तेनोक्तम्-भट्ट किमहं करोमि नन्दो निर्विवेकी भणत्यग्रासन त्यजान्यस्याग्रासनं दत्तं गच्छ त्वमित्युक्त्वा गले धृत्वा निर्घाटितः । ततश्चाणक्यो नन्दवश निर्मूलयामीति चिन्तयन् यो नन्दराज्यमिच्छति स मे पृष्ठे लगत्विति भणित्वा

१) भुंक्तादिति

का पारगामी पुत्र चाणक्य था । एक बार कावि मन्त्री ने नन्द से कहा– महाराज ! आपके ऊपर सीमावर्ती राजाओं ने प्रयाणकर दिया है । नन्द ने कहा– धन देकर उन्हें रोको । तब कावि ने यथायोग्य धन देकर उन्हें रोका । एक बार नन्द ने भण्डारी से भण्डार में धन पूछा । उसने कहा– कावि ने समस्त धन सीमवर्ती राजाओं को दे दिया है । रुष्ट नन्द ने कुटुम्ब सहित कावि को अन्धकूप में डाल दिया सकट के दरवाजे से एक कटोरा भात तथा थोड़ा जल रस्सी से बाँध-कर उसे दिया जाता था । कावि ने कहा– सकुटुम्ब नन्द का जो विनाश करे वह खिलाए । सभी ने कहा– इस विषय में तुम्हीं समर्थ हो । तब कुयें के किनारे छेद बनाकर वहाँ पर भोजन करता हुआ तीन वर्ष तक रहा । कुटुम्ब मर गया । सीमावर्तियों के क्षोभ होने पर नन्द ने कावि को यादकर कुयें से निकालकर मन्त्रिपद पर रखा । एक बार नन्द वश का विनाश करने के लिए पुरुष की खोज करते हुए कावि ने जंगल के बीच कुश की नोकों को खोदते हुए सच्छात्र चाणक्य को देखकर पूछा । इसे किस कारण खोद रहे हो । उसने कहा इससे मैं विद्ध हो गया हूँ । कावि ने कहा– बहुत भर जायगा, क्षमा करो । चाणक्य ने कहा– जिसकी जड़ न उखाड़, उसे खोदे नहीं तथा जिसका सिर न काटे उसका वध न करे । यह सुनकर कावि ने सोचा नन्दवंश के विनाश के योग्य है । चाणक्य की भार्या यशवस्ती ने चाण-क्य से कहा- देव ! नन्द गोदान कर रहा है, उसे तुम ले लो । उसने कहा– ले लेता हूँ । उसे जानकर कावि ने नन्द से कहा– हजार गाये दो । उसने कहा देता हूँ, ब्राह्मणों को लाओ । कावि ने उस निमित्त के लिए नन्द से कहा । चाणक्य अग्रासन पर बैठाया गया । उसने ( ) बहुत से आसन ले लिए । उसे देखकर कावि ने उस पण्डित [चाणक्य] से कहा । नन्द कहते है । बहुत से ब्राह्मण आए हुए है, तुम एक आसन छोड़ दो । चाणक्य ने एक ही छोड़ी । समस्त आसन छुड़ा कर कावि ने कहा– भट्ट ! मैं क्या करूँ, निर्विवेकी नन्द कहता है– आगे के आसन को छोड़ दो, अन्य को आगे की आसन दी गई है, तुम जाओ, ऐसा कहकर गला पकड़कर निकाल दिया । तब चाणक्य 'नन्द वंश को निर्मूल करूँगा,' ऐसा सोचते हुए, जो नन्द का राज्य

निर्गतः । एकपुरुषः पृष्ठतो लग्नस्तं गृहीत्वा प्रत्यन्तवासिनां राज्ञां मिलितः ते च भणिता द्रव्यादिक दत्त्वा नन्दस्य मन्त्रिणां सामन्तानां च भेद कृत्त्वा तथा सर्वे ऽपि भेदिताः । तैर्नन्दो द्रव्यं याचयित्वा घाटकेन नन्दं मारयित्वा बहुकालं राज्य कृत्वा महीधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य चाणक्यो मुनिर्भूत्वा पञ्चशतशिष्यैः सह बहुतरकालं दक्षिणापथे वनवासदेशे क्रौञ्चपुरे पश्चिमदिशि गोष्ठे पादोपयानमरणे स्थितः । नन्दे मारिते यो नन्दस्य मन्त्री सुबन्धुनामा स चाणक्यस्योपरि क्रोध वहन् क्रौञ्चपुरीयसुमित्रराजस्य पार्श्वे आगत्य स्थितः । सुमित्रराजो मुनीनां वन्दनां पूजां च कृत्वा गृहमागतः । सुबन्धुरपि करीषं मुनीनां समीपे कृत्वाग्नि दत्त्वा समायातः । तस्मिन्नुपसर्गे समाधिना मुनयः सिद्धि गताः ॥

(८१) वसतौ प्रदीपितायामित्यादि ।

[वसदीए पलिविदाए रिट्ठामच्चेण उसहसेणो वि ।
आराधणं पवण्णो सह परिसाए कुणालम्मि ॥१५५७॥]

अस्य कथा— दक्षिणापथे कुणालपुरे राजा वैश्रवणो, मन्त्री रिष्टामत्यो मिथ्यादृष्टिः । एकदा सघेन सह वृषभसेनगणधरः समायातः । राज्ञा सर्वलोकैर्गत्वा वन्दितः । रिष्टामात्येन वादः कृतः । स वादेन जित. । ततो ऽभिमानात्तेन रात्रौ प्रच्छन्नेन वसतिका प्रज्वालिता तमुपसर्गमनुभूय मुनयः परमसमाधिना स्वर्गापवर्गं गताः ॥

(८२) आहारार्थं मत्स्या इत्यादि ।

(अवबिट्ठाणं णिरयं मच्छा आहारहेदु गच्छंति :
तत्थेवाहारमिलासेण गदो सालिसित्थो वि ॥१६४१॥

चाहता है, वह मेरे पीछे लग जाय ऐसा कहकर निकल गया। एक पुरुष पीछे लग गया, उसे लेकर सीमावर्ती राजाओं से मिला। उससे कहा– द्रव्यादिक देकर नन्द के मन्त्री और सामन्तों में भेद डाल दो। उस प्रकार सब फोड़ लिए गए। नन्द ने उनसे द्रव्य माँगा। एक हत्यारे ने नन्द को मार डाला। चाणक्य बहुत काल तक राज्य कर महीधर मुनि के समीप धर्म सुनकर मुनि होकर पाँच सौ शिष्यों के साथ बहुत समय दक्षिणापथ में वनवासदेश में क्रौञ्चपुर में पश्चिम दिशा में गोकुल में पादोपगमनमरण में स्थित हो हुए। नन्द के मारे जाने पर नन्द का जो सुबन्धुनामक मन्त्री था, वह चाणक्य के ऊपर क्रोध धारण किए हुए था। वह क्रौञ्चपुर के राजा सुमित्र के पास आकर ठहर गया। सुमित्र राजा मुनियों की वन्दना और पूजा कर घर आ गए। सुबन्धु भी कण्डों (उपलों) को मुनियों के पास कर अग्नि लगाकर आ गया। उस उपसर्ग के होने पर मुनिगण सामाधि के द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुए।

(८१) उपसर्ग जय

गाथार्थ– कुलाल नामक ग्राम में रिष्टामत्य नामक वैरी के द्वारा वसतिका में आग लगा दी गई, जिससे (मुनियों की) सभा सहित वृषभसेन भी आराधना को प्राप्त हुए। [१५५७]

इसकी कथा– दक्षिणापथ में कुणालपुर में राजा वैश्रवण तथा मिथ्यादृष्टि मन्त्रि रिष्टामात्य था। एक बार संघ के साथ वृषभसेन गणधर आए। राजा समस्त लोगों के साथ गया और वन्दना की। रिष्टामात्य ने वाद किया। वह वाद में पराजित हो गया। तब अभिमान से उसने रात्रि में गुप्त रूप से वसतिका जला दी, उस उपसर्ग का अनुभव कर मुनि परमसमाधि से स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त हुए।

[८२] अति गृद्धता

गाथार्थ– स्वयम्भूरमण समुद्र के मत्स्य आहार की अत्यन्त गृद्धता के कारण अप्रतिष्ठान नामक सातवें नरक में जाते है। वहीं पर आहार की अभिलाषा से शालिसिक्थ भी गया। (१६४६)

अस्य कथा– स्वयम्भूरमणसमुद्रे महामत्स्यः सहस्रयोजनदीर्घःपञ्च – योजनशतविस्तारः पञ्चाशदधिकद्वियोजनशतोच्छ्रायः । तस्य कर्णे शालिसिक्थप्रमाणः शालिसिक्थनामा लघुमत्स्यस्तस्य कर्णमलं भक्षयति । बहुजीवभक्षणं कृत्वा महामत्स्यस्य मुखं विकास्य षण्मासान्निद्रां कुर्वाणस्य योजनादिप्रमाणाः मत्स्यकच्छपादयो मुखदंष्ट्रान्तरे प्रविश्य गच्छन्ति । तांस्तथा दृष्ट्वा स लघुमत्स्यः प्रतिदिनं चिन्तयति– महामूर्खो ऽयमिति । मम यदीदृशी सामग्री भवति तदैको ऽपि न गच्छति । एवं बहुना कालेन मृत्वा द्वावपि सप्तमनरकमवधिष्ठानसंज्ञकं गतौ ॥

[८३] चक्रधरो ऽपि सुभौम इत्यादि ।

(चक्कधरा वि सुभूभो फलरसगिद्धीए वचिओ संतो ।
णट्ठो समुद्दमज्झे सपरिजणो तो गओ णिरयं ॥१६४०॥

अस्य कथा– ईर्ष्यावतीनगर्यां राजा कार्तवीर्यो, राज्ञी रेवती, पुत्रः सुभौमो अष्टमचक्रवर्ती, माहानसिको विजयसेनः । तेनैकदोष्णपायसं भौमस्य भोक्तुं दत्तम् । तेन दग्धो रुष्टेन चक्रिणा मस्तके पायसं घातयित्वा मारितः । विजयसेनो लवणसमुद्रे व्यन्तरदेवो जातः । रोषात्तापसरूपेण मृष्टफलान्यानीय सुभौमः समुद्रमध्ये नीत्वा पञ्चनमस्कारान्पादेन भञ्जयित्वा प्रचार्य मारितः सप्तमनरकं गतः ॥

(८४) जननी वसन्ततिलकेत्यादि

(जणणी वसंततिलया भगिणी कमला य आसि भज्जाओ ।
धणदेवस्स य एक्कम्मि भवे संसारवासम्मि ॥१८००॥]

अस्य कथा– उज्जयिन्यां राजा विश्वसेनः, श्रेष्ठी सुदत्तः षोडशकोटिद्रव्यस्वामी, गणिका वसन्ततिलका, सा सुदत्तेन गृहवासे धृता । कति-

इसकी कथा- स्वयम्भूरमण समुद्र में एक हजार योजन लम्बा, पाँच सौ योजन चौड़ा तथा दो सौ पचास योजन ऊँचा महामत्स्य था उसके कान में धान्य के कण प्रमाण शालिसिक्थ नामक छोटा सा मत्स्य उसके कान के मल का भक्षण करता था। बहुत से जीवों का भक्षण कर छह माह के लिए नींद लेते हुए उसके मुख को खोलकर एक योजनादि के प्रमाण वाले मत्स्य और कछुए आदि (जीव) मुख की दाढ़ के मध्य प्रवेश कर [निकल] जाते थे। उन्हें वैसा देखकर वह छोटा मत्स्य प्रतिदिन सोचता था। यह महामूर्ख है। यदि मेरी ऐसी सामग्री होती तो एक भी [निकलकर] न जा पाता। इस प्रकार बहुत समय बाद मरकर दोनों ही अवधिस्थान नामक सातवें नरक में गए।

(८३) रस की गृद्धता

गाथार्थ- चक्रवर्ती सुभूम भी फलों के रस की गृद्धता से ठगाया जाकर समुद्र के मध्य परिजनों सहित नष्ट हुआ तथा नरक को गया: [१६५०]

इसकी कथा- ईर्ष्यावती नगरी में राजा कार्तवीर्य, रानी रेवती, पुत्र सुभौम नामक आठवां चक्रवर्ती तथा रसोइया विजयसेन था। रसोइए ने एक बार गर्म खीर भौम को खाने के लिए दी। जिससे जलने के कारण रुष्ट हुए चक्रवर्ती ने मस्तक के ऊपर खौर डालकर मार दिया। विजयसेन लवण समुद्र में व्यन्तरदेव हुआ। रोष से तापस रूप व्यन्तर द्वारा स्वादिष्ट फलों को लाया। वह सुभौम को समुद्र के मध्य ले गया। सुभौम पंचनमस्कार मन्त्र को पैरों से मिटाकर उस तापस के द्वारा ठगा जाकर सातवें नरक गया।

(८४) जग के नाते रिश्ते

गाथार्थ- धनदेव की संसार में वास करते हुए एक ही भव में जननी वसन्ततिलका तथा बहिन कमला भार्या हुई। [१८००]

इसकी कथा- उज्जयिनी में राजा विश्वसेन, सोलह करोड़ धन का स्वामी सेठ सुदत्त तथा गणिका वसन्ततिलका। वी गणिका वसन्ततिलका

पयदिनैस्तस्याः गर्भसंभूतौ कण्डूकासदद्दासादयो रोगा जाताः । ततः सुदत्तेन त्यक्ता निजगृहेषु पुत्रपुत्रीयुगल प्रसूता । उद्विग्नया तया रत्नकम्बलेन वेष्टयित्वा पुत्री नगरीदक्षिणप्रतोल्यां मुक्ता । प्रयागादागत्य तत्र स्थितेन सुकेतुसार्थवाहेनानीय सा निजभार्यायाः सुप्रभायाः समर्पिता । कमलानामा वृद्धिं गता । उत्तरप्रतोल्यां पुत्रो मुक्तः । सो ऽपि साकेतपुरादागत्य तत्र स्थितेन सुभद्रसार्थवाहेनानीय निजभार्यायाः सुव्रतायाः समर्पितः । स च धनदेवनामा वृद्धिं गतः बहुदिवसैः पुनरागत्योज्जयिन्यां सार्थवाहाभ्यां तयोः कमलाधनदेवयोर्विवाहः कारितः । ततः साकेतपुरं गत्वा कतिपयदिनानि भोगान्भुक्त्वा कमलां तत्रैव धृत्वा धनदेवः पुनरुज्जयिन्यामागतो वसन्ततिलकायां निजजनन्यां भोगमनुभवन्पुत्रमुत्पादितवान् । अयोध्यायां च कमलया मुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य सम्यक्त्वव्रतं गृहीत्वा धनदेवस्य कुशलवार्ता पृष्टा । कथितं मुनिना—जनन्या वसन्ततिलकया सहोज्जयिन्यां भोगान्भुञ्जानः कुशलेन तिष्ठति । पुनः कमलया पृष्टम्—कस्मिन् भवे सा तस्य जननी । कथितं मुनिना पूर्वभवे पिता अत्रभवे जननी ॥

अत्र कथा— उज्जयिन्यां ब्राह्मणः सोमशर्मा, भार्या काश्यपी, पुत्रावग्निभूतिसोमभूती । द्वावपि बहिः पठित्वा आगच्छन्तौ र्यां जिनदत्तपुत्रमुनेर्जननीं जिनमतिकां पादमर्दनं कुर्वतीमालोक्य जिनभद्रश्वशुरमुनेश्च वधूटिकां सुभद्रार्यिकां पादमर्दनं कुर्वतीमालोक्योपहासः कृतः । तरुणस्य वृद्धा वृद्धस्य तरुणी विधिना भार्या कृतेति । तथोपार्जितकर्मवशात् कालेन सोमशर्मा मृत्वोज्जयिन्यां वसन्तसेनायाः पुत्री वसन्ततिलका जाता । अग्निभूति सोमभूती मृत्वा वसन्ततिलकायाः शिशुयुगलं कमलाधनदेवौ जातौ । काश्यपी मृत्वा वसन्ततिलकाधनदेवयोरिदानीं पुत्रो वरुणनामा जात इति मुनि वचनमाकर्ण्य जातिस्मरी भूत्वोज्जयिन्यामागत्य वसन्ततिलकागृहं प्रविश्य पालणकस्थं वरुणदत्तबालकमनेन सुभाषितेनान्दोलयति ॥

को सुदत्त ने घर पर रख लिया था। कुछ दिनों में उसके गर्भ ठहरने पर उसे खुजली, खाँसी, श्वास आदि रोग हो गए। तब सुदत्त ने उसे त्याग दिया। अपने घर उसके पुत्र-पुत्री का युगल उत्पन्न हुआ। उद्विग्न उसने रत्नकम्बल में लपेट कर पुत्री को नगर की दक्षिण सड़क पर छोड़ दिया। प्रयाग से आकर वहाँ ठहरे हुए सुकेतु नाम व्यापारी ने लाकर वह अपनी पत्नी सुप्रभा को सौंप दी। कमला नाम वाली वह वृद्धि को प्राप्त हुई। उत्तर की सड़क पर पुत्र को छोड़ दिया। उसे भी साकेतपुर से आकर वहाँ ठहरे हुए सुभद्र नामक व्यापारी ने लाकर अपनी पत्नी सुव्रता को सौंप दिया। वह धनदेव नाम से वृद्धि को प्राप्त हुआ। बहुत दिनों बाद पुनः आकर उज्जयिनी में दोनों व्यापारियों ने कमला और धनदेव का विवाह करा दिया। अनन्तर साकेत पुर जाकर कुछ दिन भोग भोगकर कमला को वहीं ठहराकर धनदेव पुनः उज्जयिनी में आया। अपनी माता वसन्ततिलका के साथ भोगों का अनुभव करते हुए उसने पुत्र उत्पन्न किया। अयोध्या में कमला ने मुनि के समीप धर्म सुनकर सम्यक्त्व और व्रतग्रहण कर धनदेव की कुशल वार्ता पूछी। मुनि ने कहा– जननी वसन्ततिलका के साथ उज्जयिनी में भोग भोगता हुआ कुशलता से है। पुनः कमला ने पूछा–किस भव मे वह उसकी माँ थी? मुनि ने कहा- पूर्व भव में पिता थी, इस जन्म में माता है। यहाँ कथा इस प्रकार है –

उज्जयिनी नगरी में ब्राह्मण सोमशर्मा, भार्या काश्यपी तथा पुत्र अग्निभूति और सोमभूति थे। बाहर पढ़कर दोनों ने आकर जिनदत्त पुत्रमुनि के जननी जिनमती को पैर दबाते हुए देखकर तथा जिनभद्र श्वसुर मुनि के बहू सुभद्रा को पैर दबाते देखकर उपहास किया। भाग्य ने तरुण की वृद्धा और वृद्ध की तरुणी स्त्री बनाई। उससे उपर्जित कर्म के वश समय पर सोमशर्मा मरकर उज्जयिनी में वसन्त-सेना की पुत्री वसन्ततिलका हुआ। अग्निभूति और सोमभूति मरकर वसन्ततिलका के कमला और धनदेव नामक शिशु युगल हुए। काश्यपी मरकर वसन्ततिलका और धनदेव का इस समय वरुण नामक पुत्र हुआ। मुनि के यह वचन सुनकर पूर्वजन्म का स्मरण होकर उज्ज-यिनी में आकार वसन्ततिलका के घर में प्रविष्ट होकर पालने में स्थित

बालय णिसुणसि वयणं तुज्झ सरिस्साइ अट्ठवह णत्ता ।

पुत्त भतिज्जउ भायउ देवरु पित्तियउ पोत्तज्जु (१) ॥१॥

तुह्य पियरो मह पियरो पियामहो तह य हवइ भत्तारो ।

भायउ तह च्चिय पुत्तो सुसुरो हवई स बालया मज्झ ॥२॥

तुव जणणी मह भज्जा पियामही तह य मायरी सवई ।

हवइ वहू तह सासू एक्काहिय अट्ठदह णत्ता ॥३॥

एतदाकर्ण्य वसन्ततिलकाङ्क्षिभि: पृष्टया सर्वो वृत्तान्तः कथितः । कमला वसन्ततिलकाधनदेवा जातिस्मरीभूता: जिनधर्मे परमरुचिं कृत्वा तपो गृहीत्वा स्वर्गं गताः ॥

१] पुत्तु

वरुणदत्त नामक बालक को इस सुभाषित के द्वारा बुलाने लगी।

हे बालक तुम मेरे वचनों को सुनो तुम्हारे साथ मेरे अठारह नाते हैं। तुम मेरे पुत्र, भतीजे, भाई, देवर, चाचा तथा पोते हो। तुम्हारे पिता मेरे पिता, पितामह, पति, भ्राता, पुत्र तथा श्वसुर हैं। तुम्हारी माँ मेरी भावज, पितामही (दादी,) माता, सौतिन, पुत्रवधू तथा सास है। इस प्रकार अठारह नाते होते हैं।

यह सुनकर बसन्ततिलका आदि के द्वारा पूछे जाने पर समस्त वृत्तान्त कह दिया। कमला, बसन्ततिलका तथा धनदेव, जिन्हें पूर्वजन्म का स्मरण हो गया था, जिनधर्म में परमरुचि रखकर तप ग्रहणकर स्वर्ग चले गए।

नोट– कमला ने वरुण से अपने जो १८ नाते प्रकट किए वे इस प्रकार हैं–

१– धनदेव कमला का पति है वरुण धनदेव का पुत्र है, अत: वह कमला का भी पुत्र है।

२– धनदेव कमला का भाई है। वरुण धनदेव का पुत्र है। अत: वरुण कमला का भतीजा है।

३– वसन्ततिलका कमला और वरुण दोनों की माँ है। अत: वरुण कमला का भाई है।

४– वसन्ततिलका धनदेव और वरुण दोनों की माता होने से वरुण धनदेव का छोटा भाई है और धनदेव कमला का पति है। अत: पति का छोटा भाई होने के कारण वरुण कमला का देवर है।

५– वसन्ततिलका कमला की माता है। धनदेव वसन्ततिलका का पति है अत: धनदेव कमला का पिता है।

६– वसन्ततिलका और कमला दोनों ही धनदेव की स्त्री होने से वसन्ततिलका कमला की सौतन है। धनदेव सौत का पुत्र होने से कमला का भी पुत्र है। अत: वरुण कमला के पुत्र का पुत्र होने से पोता है।

कमला के धनदेव से नाते इस प्रकार हैं –

१– धनदेव के साथ कमला का विवाह हुआ है अत: धनदेव उसका पति है।

[८५] कुलरूपभोगतेजो ऽधिकोपि राजेत्यादि ।

[कुलरूवतेयभोगाधिगो वि राया विदेहदेसवदी ।

वच्चघरम्मि सुभोगो जाओ कीडो सकम्मेहिं ॥१८०२॥

अस्य कथा– मिथिलानगर्यां राजा शुभो, राज्ञी मनोरमा, पुत्रो देव-रतिः । एकदा संघेन सह देवगुरुर्गणधरस्तत्र समायातः । राज्ञा वन्दित्वा

२– धनदेव और कमला एक ही माता के उदर से जन्मे हैं, अतः धनदेव कमला का भाई है।

३– कमला की माँ वसन्ततिलका है और धनदेव वसन्ततिलका का पति है, अतः धनदेव कमला का पिता भी है।

४– धनदेव कमला और वसन्ततिलका दोनों का पति है। तथा धनदेव वसन्ततिलका का पुत्र भी है। अतः सौत का पुत्र होने से धनदेव कमला का सौतेला पुत्र है।

५– धनदेव कमला की सास वसन्ततिलका का पति होने से कमला का श्वसुर है।

६– वरुण धनदेव का छोटा भाई होने से कमला का चाचा है। वरुण का धनदेव पिता है। अतः धनदेव कमला का दादा है।

वसन्ततिलका के साथ कमला के नातें इस प्रकार हैं –

१– कमला धनदेव के साथ वसन्ततिलका के उदर से जन्मी है, अतः वसन्ततिलका कमला की माँ है।

२– धनदेव कमला और वसन्ततिलका दोनों का पति है। अतः वसन्ततिलका कमला की सौत है।

३– धनदेव कमला का भाई है। वसन्ततिलका धनदेव की स्त्री है अतः कमला की वसन्ततिलका भावज हुई।

४– वसन्ततिलका कमला के पति धनदेव की माँ है अतः वह कमला की सास हुई।

५– धनदेव सौत का पुत्र होने से कमला का सौतेला पुत्र है। वसन्ततिलका सौतेले पुत्र की स्त्री है अतः वह कमला की पुत्रवधू है।

६– धनदेव वसन्ततिलका का पति है और कमला वसन्ततिलका के गर्भ से जन्मी है अतः धनदेव कमला का पिता है। वसन्ततिलका धनदेव की माँ है, अतः कमला की दादी भी हुई।

[८५] कर्म परवशता

गाथार्थ—कुल, रूप, तेज तथा भोगों में अधिक विदेह देश का स्वामी सुभोग नामक राजा अपने कर्मों के वश शौचगृह में कीड़ा हुआ।(१८०२)

इसकी कथा— मिथिला नगरी में राजा शुभ, रानी मनोरमा और पुत्र

धर्ममाकर्ण्य क्व मे जन्म भविष्यतीति पृष्टः कथितं मुनिना निजवर्चोगृहे महाकृमिर्भविष्यसि त्वम् । साभिज्ञान च नगरीप्रवेशे मुखे गूथप्रवेशः छत्र-भङ्गः सप्तमे दिने अशनिपातान्मरणम् । प्रविशतो ऽश्वरथचरणाहतो गूथो मुखे प्रविष्टः । महावात्याभिहतं छत्रं भग्नम् । ततस्तेन पुत्रो भणितः– अहं वर्चोगृहे पञ्चवर्णो महाकृमिर्भविष्यामि तं मारयेस्त्वम्। अशनिभयाद् गङ्गा-महाह्रदे लोहमञ्जूषां कारयित्वा प्रविष्टः । महामत्स्येनोच्छालिता मञ्जूषा तस्मिन्नेव क्षणे अशनिपातान्मृतो वर्चोगृहे कृमिर्जातः । पुत्रेण माग्यमाणः प्रणश्य गूथे प्रविष्टो देवरतिवचनात्तं वृत्तान्तमाकर्ण्य बहवो जिनधर्मे रताः । देवरतिःससारनिन्दां कृत्वा मुनिरभूत् ।

[८६] विमला चक्रेण मारित इत्यादि ।

(विमलाहेदुं वंकेण मारिदो णिययभारियागब्भे ।
जादो जादो जादिभरो सुदिट्ठी सकम्मेहिं ॥१८०६॥)

अस्य कथा–उज्जयिन्यां राजा प्रजापालो, राज्ञी सुप्रभा, रत्नविज्ञानि कसुदृष्टिर्भार्या विमला । सुदृष्टेः छात्रो वंक्रः । तेन सह विमला कुकर्म करोति । एकदा विमला सकेतितेन वंक्रेण सुरते सेवां कुर्वाणो मारितः सुदृष्टिर्निजशुक्रेण विमलागर्भे पुत्रो जातः । सुदृष्टेः पद वंक्रस्य विज्ञानिनः समर्पितम् । अन्यदा चैत्रमासे रमणीयोद्याने राज्ञा सह क्रीडन्त्याः सुप्रभायाः क्रीडाविलासनामोत्तमहारः त्रुटितः । केनापि सुवर्णकारेण तथा न रचितुं शक्यः । विमलापुत्रेण हार दृष्ट्वा जातिस्मरेण जातेन पूर्वहेतुना रचितः। राज्ञा स पृष्टः । कथं सुदृष्टेर्हारो रचितस्त्वया । कथित तेनाह–मेव स सुदृष्टिरिति । पूर्ववृत्तान्ते कथिते राजा मुनिरभूत् । विमलापुत्रो ऽपि मुनिर्भूत्वा विहृत्य संवरीपुरोत्तरदिशि यमुनानदीतटे निर्वाणं गतः ॥

देवरति था। एक बार संघसहित देवगुरु गणधर वहाँ आए। राजा ने वन्दना कर धर्म सुनकर, मेरा जन्म कहाँ होगा, ऐसा पूछा—मुनि ने कहा तुम अपने ही संडास में महाकीट होगे। उसकी पहिचान–नगरी में प्रवेश करते समय विष्टा का मुँह में प्रवेश, छत्रभङ्ग तथा सातवें दिन वज्रपात से मरण है। जब राजा प्रवेश कर रहा था तो अश्वरथ में (अश्व के) चरण से आहृत विष्टा मुँह में प्रविष्ट हुई। महावायु से गिरकर छत्र टूट गया। तब उसने पुत्र से कहा—मैं पाखाने में पाँच प्रकार के रंग वाला महाकीट होऊंगा, उसे तुम मार देना। वज्रपात के भय से गंगा की बड़ी झील में लोहे का सन्दूक बनवाकर प्रविष्ट हुआ। सन्दूक को महामत्स्य ने उछाला। उसी क्षण वज्र गिरने से मरकर संडास में कीड़ा हुआ। पुत्र जब मारने को उद्यत होता था तो वह भागकर विष्टा में प्रविष्ट हो जाता था। देवरति के वचन से उस वृत्तान्त को सुनकर बहुत से लोग जैन धर्म के अनुयायी हो गए। देवरति संसार की निन्दा कर मुनि हो गया।

[८६] कर्मों की पराधीनता

गाथार्थ–विमला नामक स्त्री के लिए (अपने छात्र के द्वारा) मारा गया सुदृष्टि नामक पुरुष अपने कर्मों से अपनी स्त्री के गर्भ में उत्पन्न हुआ, पीछे उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो गया। [१८०६]

उज्जयिनी नगरी में राजा प्रजापाल, रानी सुप्रभा तथा रत्न-विज्ञाता सुदृष्टि तथा विमला नामक भार्या थी। सुदृष्टि का छात्र वंक था। वंक के साथ विमला कुकर्म में रत रहती थी। एक बार विमला से संकेत पाये हुए वंक के द्वारा सुरत की सेवा करते हुए सुदृष्टि मारा गया तथा अपने शुक्र से विमला के गर्भ से पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। सुदृष्टि का पद वंक वैज्ञानिक को सौंपा गया। एक बार चैत्र मास में रमणीय उद्यानमें राजा के साथ कीडा करते हुए सुप्रभा का क्रीडा विलास में उत्तम हार टूट गया। कोई भी सुवर्णकार वैसा बनाने में समर्थ नहीं था। विमला के पुत्र ने हार देखकर पूर्वजन्म का स्मरण हो जाने से पूर्व हेतु से रच दिया। राजा ने उससे पूछा–सुदृष्टि का हार तुमने कैसे बनाया ? उसने कहा– मैं ही सुदृष्टि हूँ।

[८७] कोसलकधर्मसिंह इत्यादि ।

[कोसलयधम्मसीहो अट्ठं सावेदि गिद्धपुट्ठेण ।
णयरम्मि य कोल्लगिरे चंदसिरिं विप्पजहिदूण ॥२०७३॥]

अस्य कथा—दक्षिणापथे कोसलगिरिपत्तने राजा वीरसेनो, राज्ञी वीरमतिः, पुत्रश्चन्द्रभूतिः, पुत्री चन्द्रश्रीः। काशलदेशे कोशलपुरे धर्मसिंह-राजेन परिणीता । एकदा धर्मसिंहो दमधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य प्रिय-सेनपुत्राय राज्य दत्वा मुनिरभूत् । चन्द्रश्रीभगिनीमतिदुःखितामालोक्य चन्द्रभूतिना धर्मसिंहो गवेषयित्वा आनीय चन्द्रश्रियः समर्पितः । पुनरपि गत्वा मुनिर्जातः । पुनश्चन्द्रभूतिमागच्छन्तमालोक्य पुनर्व्रतभङ्गं करिष्य-तीति संचिन्त्य मृतहस्तिकलेवरे प्रविश्य संन्यासेन मृत्वा स्वर्गं गतः ॥

[८८] मातुलकृतोपसर्ग इत्यादि ।

[पाडलिपुत्ते भूदाहेदुं मामयकदम्मि उवसग्गे ।
सावेदि उसभसेणो अट्ठं विक्खाणसं किच्चा ॥२०७४॥]

अस्य कथा—पाटलिपुत्रनगरे श्रेष्ठी वृषभदत्त इभ्यो, भार्या वृष-भश्रीः, पुत्रो वृषभसेनस्तस्य मातुलको धनपतिरिभ्यो भार्या श्रीकान्ता, पुत्रो धनश्रीः। वृषभसेनो धनश्रियं परिणीय भोगमनुभूय दमधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य मुनिरभूत् । धनश्रीः दुःखिता रोदिति । ततो धनपतिमामेन गवेषयित्वा आनीय व्रतभङ्गं कारितः। कतिपयदिनानि स्थित्वा पुनर्मुनि-र्जातः । पुनर्मामेन वञ्चयित्वा आनीय गृहाभ्यन्तरे शृङ्खलायां बालयित्वा धृतः । पुनर्मे व्रतभङ्गं कारयिष्यतीति पर्यालोच्य संन्यासं गृहीत्वा श्वासं निरुध्य मृत्वा स्वर्गं गतः ॥

पूर्ववृत्तान्त कहे जाने पर राजा मुनि हो गया। विमला का पुत्र भी विहार कर संवरीपुर की उत्तर दिशा में यमुना के तट पर निर्वाण को प्राप्त हो गया।

(८७) व्रत का निर्वाह

गाथार्थ—कोसल नगर में कुलगिरि पर्वत पर धर्मसिंह ने चन्द्रश्री नामक स्त्री का त्यागकर गृद्धपिच्छ से अपना आत्मार्थ साधा।
[२०७३]

इसकी कथा—दक्षिणापथ में कोसलगिरि पत्तन में राजा वीरसेन, रानी वीरमति, पुत्र चन्द्रभूति और पुत्री चन्द्रश्री थी। उसे कोशल देश में कोशलपुर में सिंहराज ने विवाहा। एक बार धर्मसिंह दमधर मुनि के पास धर्म सुनकर प्रियसेन नामक पुत्र के लिए राज्य देकर मुनि हो गए। चन्द्रश्री बहिन को अत्यन्त दुःखित देखकर चन्द्रभूति ने धर्मसिंह को खोजकर लाकर चन्द्रश्री को समर्पित कर दिया। धर्मसिंह पुनः जाकर मुनि हो गया। पुनः चन्द्रभूति को आते हुए देखकर पुनः व्रतभङ्ग करेगा ऐसा सोचकर मरे हुए हाथी के शरीर में प्रविष्ट होकर मरकर स्वर्ग गया।

[८८] संन्यास

गाथार्थ—पाटलिपुत्र नगर में पुत्री के लिए मामा के किए उपसर्ग को सहनकर वृषभसेन ने आत्मार्थ—आराधना को पूर्ण किया।
[२०७४]

इसकी कथा—पाटलिपुत्रनगर में श्रेष्ठी वृषभदत्तधनी, भार्या वृषभश्री, पुत्र वृषभसेन, उस (पुत्र) का मामा धनपतिधनी,, भार्या श्रीकान्ता और पुत्र धनश्री था। वृषभसेन धनश्री को विवाह कर भोगों का अनुभव कर दमधर मुनि के समीप धर्म सुनकर मुनि हो गया। धनश्री दुःखी होकर रोने लगी। तब धनपति नामक मामा ने खोजकर लाकर वृषभसेन का व्रतभङ्ग करा दिया। कुछ दिन ठहरकर वृषभसेन पुनः मुनि हो गया। पुनः मामा ने कपटकर, लाकर घर के भीतर जञ्जीर से प्रहार कर रखा। पुनः मेरा व्रतभङ्ग करेगा, ऐसा विचारकर संन्यास लेकर श्वास रोककर मरकर स्वर्ग गया।

(८९) अहिमारकेण नृपतौ निपातित इत्यादि।

[अहिमारएण णिवदिम्मि मारिदे गहिसमणलिंगेण ।
उड्डाहपसमणत्थ सत्थग्गहणं अकासि गणी ॥२०७५॥

अस्य कथा—श्रावस्तीनगर्यां राजा जयसेनो, राज्ञी वीरसेना, पुत्रो वीरसेनः, शिवगुप्तवन्दको जयसेनस्य गुरुः । एकदा संघेन सह यतिवृषभनामा भट्टारकस्तत्र समायातः । तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य बौद्धधर्मे मतिं त्यक्त्वा जयसेनः श्रावको जातः । तेन निजभवनैर्नगरीमण्डलं च भूषितम्। शिवगुप्तवन्दकः कुपितो जयसेनस्य मारणोपायं चिन्तयति । पृथिवीपुरे राजा सुमतिर्बौद्धधर्मरतः । शिवगुप्तेन गत्वा तस्य सर्वं कथितम् । ततस्तेन जयसेनस्य लेखः प्रेषितः—यथा त्वया विरूपकं कृतमद्यापि बौद्धधर्मं गृहाण यदि मामभिलषसि । जयसेनेनोक्तम्—जिनधर्म एव मे । रुष्टेन सुमतिना किमचलसहस्रभटौ जयसेनहन्तुं प्रेषितौ । तौ च श्रावस्तीं प्रविश्य स्थितौ । अवकाशमलभमानौ व्याघुट्य गतौ । ततः सुमतिना शिवगुप्तेन चोक्तम्—नास्ति स कोऽहि पुरुषो यो जयसेनं मारयति । ऽहिमारनाम्ना राजपुत्रेणोपासकेनोक्तम्—देव, किं विसूरयसि अहं तं मारयामीत्युक्त्वा तत्र गत्वा यतिवृषभमुनिसमीपे मायया कायक्लेशकरी [रो] मुनिरभूत् । एकदा जयसेनो देवमुनिवन्दनां कृत्वा सर्वलोकं चैत्यालयाद् बहिर्धृत्वा किंचित्पृष्टम् । चैत्यालयाभ्यन्तरे यतिवृषभमुनिसमीपे प्रविष्टः तत्र राजाहिमाराचार्यास्त्रयो ऽप्येकान्ते स्थिताः । उत्तिष्ठता भूमिलग्नं मस्तकं कृत्वा वन्दना कृता । तत्प्रस्तावे ऽहिमारःक्षुरिकया ग्रीवां छित्वा नष्टः । तामलोक्य यतिवृषभाचार्यो राज्ञो रक्तेनाक्षराणि भित्तौ लिखित्वाहिमारेणायं मारित इति दर्शनोद्दाह [?] प्रशमनार्थं क्षुरिकया जठरं

[८६] द्रोह शमन

गाथार्थ–अहिमारक ने श्रमणलिंग धारण कर राजा को मारा। आचाय ने संघ के प्रति द्रोह का शमन करने के लिए शस्त्र ग्रहण किया। [२०७५]

इसकी कथा–श्रावस्ती नगरी में राजा जयसेन, रानी वीरसेना पुत्र वीरसेन तथा जयसेन का गुरु शिवगुप्त बौद्ध था। एक बार यति–वृषभ नामक भट्टारक वहाँ सघ सहित आए। उनके समीप धर्म श्रवण कर बौद्ध धर्म में मति छोड़कर जयसेन श्रावक हो गया। जयसेन ने जिनभवनों से नगरी और मण्डल का भूषितकर दिया। शिवगुप्त बौद्ध कुपित होकर जयसेन के मारने का उपाय सोचने लगा। पृथिवीपुर में राजा सुमति बौद्धधर्म में रत था। शिवगुप्त ने जाकर उससे सब कहा तब उसने जयसेन को लेख (पत्र) भेजा। यद्यपि तुमने बुरा किया, तथापि यदि मुझे चाहते हो तो अब भी बौद्धधर्म ग्रहण करो। जय–सेन ने कहा–मुझे जिनधर्म ही अभीष्ट है। रुष्ट होकर सुमति ने किमचल और सहस्रभट को जयसेन को मारने के लिए भेजा। वे दोनों श्रावस्ती में प्रविष्ट होकर ठहर गए। अवकाश न प्राप्त कर लौटकर चले गए। तब सुमति और शिवभूति ने कहा–कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो जिनसेन का मार दे। तब अहिमार नामक राजपुत्र ने उपा–सक से कहा–देव! क्यों दुःखी होते हो? मैं उसे मार दूंगा, ऐसा कहकर वहाँ जाकर यतिवृषभाचार्य के समीप मायापूर्वक कायक्लेश करने वाला मुनि हो गया। एक बार जयसेन ने देव मुनि की वन्दना कर सब लोगों को चैत्यालय के बाहर रख कुछ पूछा। चैत्यालय के अन्दर यतिवृषभमुनि समीप में प्रविष्ट हुए। वहाँ पर राजा, अहिमार और आचार्य यतिवृषभ ये तीनों एकान्त में स्थित थे। उठते हुए राजा ने भूमि से मस्तक लगा कर की वन्दना की। उस समय अहिमार छुरी से गर्दन छेदकर भाग गया। उसे देखकर यतिवृषभ आचार्य ने राजा के रक्त से दीवाल पर अक्षर लिखे–'अहिमार ने इसे (राजा को) मार दिया है। इस प्रकार दर्शन के प्रति द्रोह की शान्ति के लिए छुरी से पेट विदीर्णकर संन्यास धारण कर समाधि से मरकर

विदार्य संन्यासं कृत्वा समाधिना मृत्वा स्वर्गं गतः। वीरसेनकुमारेण द्वौ मृतौ दृष्ट्वा लिखितान्यक्षराणि चावलोक्याचार्यप्रशंसां कृत्वा जिनधर्मे राज्ये च स्थिरः स्थितः ॥

(९०) शकटालेनापीत्यादि ।

[सगडालएण वि तधा सत्थग्गहणेण साधिदो अत्थो ।
वररुइपओगहेदुं रुट्ठे णंदे महापउमे ॥२०७६॥]

अस्य कथा—पाटलिपुत्रनगरे राजा नन्दो,मन्त्री शकटालो, विवाकको वररुचिस्तौ परस्परविरुद्धौ सर्वदान्योन्यापकारप्रवृत्तौ। एकदा सघेन सह महापद्माचार्यः पाटलिपुत्रमायातः । तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य शकटालो मुनिर्भूत्वा ग्रन्थार्थं परिज्ञाय आचार्यो भूत्वा पुनः पाटलिपुत्रमायातः । नन्दान्तःपुरे चर्यां कृत्वा निजस्थाने गतः । पूर्ववैराद्वररुचिना नन्दस्य कोपप्रवर्धनप्रयोगः कृतः । देव भिक्षामिषेण शकटालस्तवान्तःपुरं सर्वं विध्वंस्य गत इति । ततो नन्देन शकटाले महापद्माचार्ये च रुष्टेन घाटकः प्रेषितः । शकटालमुनिर्घाटकमालोक्य वररुचेर्दुष्टं चेष्टितं ज्ञात्वा च्छुरिकया निजोदरं विपाट्य समाधिना मृत्वा स्वर्गं गतः । नन्दो ऽपि परीक्षां कृत्वा मुनिं निर्दोषं ज्ञात्वा महापद्माचार्यसमीपे जिनधर्ममाकर्ण्य निन्दां गर्हां च कृत्वा जिनधर्मे रतः ॥

यैराराध्य चतुर्विधामनुपमामाराधनां निर्मलां
प्राप्तं सर्वसुखास्पदं निरुपमं स्वर्गापवर्गप्रदाम् ।
तेषां धर्मकथा प्रपञ्चरचना स्वाराधनासंस्थिता
स्थेया कर्मविशुद्धिहेतुरमला चन्द्रार्कतारावधिः ॥१॥
सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः
पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः ।
कल्याणकाले ऽथ जिनेश्वरस्य
सुरेन्द्रदन्तीव विराजते ऽसौ ॥२॥

(आचार्य) स्वर्ग गए। वीरसेन कुमार दोनों को मृत देखकर तथा लिखित अक्षर देखकर आचार्य की प्रशंसा कर जिनधर्म तथा राज्य में स्थिर हो गए।

(९०) समाधिमरण

गाथार्थ–वररुचि के प्रयोग के कारण महापद्म नन्द के रुष्ट होने पर शटकाल ने भी उसी प्रकार शस्त्र ग्रहण कर अर्थ को सिद्ध किया। [२०७६]

इसकी कथा–पाटलिपुत्र में राजा नन्द, मन्त्री शकटाल, तथा विचारक वररुचि था। शकटाल और वररुचि एक दूसरे के विरुद्ध थे तथा सदा दूसरे के अपकार में प्रवृत्त रहते थे। एक बार संघ के साथ महापद्माचार्य पाटलिपुत्र आए। उनके पास धर्मसुनकर शकटाल मुनि होकर ग्रन्थ के अर्थ को जानकर आचार्य होकर पुनः पाटलिपुत्र आए। नन्द के अन्तःपुर में चर्या कर अपने स्थान को चले गए। पूर्व के वैर से वररुचि ने नन्द का कोप बढ़ाने का उपाय किया। महाराज! भिक्षा के बहाने शकटाल तुम्हारे सारे अन्तःपुर का विध्वंस कर चला गया। तब नन्द ने शकटाल पर और महापद्माचार्य पर रुष्ट होकर घातक भेजा। शकटाल मुनि घातक को देखकर वररुचि की दुष्ट चेष्टा को जानकर छुरी से अपना उदर विदीर्ण कर समाधि से मरकर स्वर्ग चले गए। नन्द भी परीक्षा कर मुनि को निर्दोष जानकर महापद्माचार्य के समीप जिनधर्म सुनकर निन्दा और गर्हा कर जिन-धर्म में रत हो गया।

जिन्होंने अनुपम चार प्रकार की निर्मल आराधनाओं की आराधना कर स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले निरुपम समस्त सुख के स्थान को प्राप्त किया। अपनी आराधना में स्थित उनकी विस्तीर्ण धर्मकथा रूप रचना जो कि निर्मल और कर्मविशुद्धि की हेतु है. तब तक स्थिर रहे, जब तक चन्द्रमा, सूर्य और तारे हैं।

सुकोमल और समस्त सुखों का बोध करने वाले पदों सहित प्रभाचन्द्र कृत यह प्रबन्ध सुशोभित हो रहा है, जिस प्रकार जिनेश्वर के कल्याणकाल में देवों के इन्द्र का हाथी (ऐरावत) सुकोमल और

श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपञ्चपरमेष्ठि-प्रणामोपार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेनाराधनासत्कथाप्रबन्धः कृत इति ॥

[६०▪१] सद्दहयापत्तियगयारोचयफासंतया ।

[सद्दहयया पत्तियया रोचयफासंतया पवयणस्स ।
सयलस्स जेण एदे सम्मत्ताराहया होंति ॥४८ १॥

अत्र कथा–कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे राजा विनयंधरो, राज्ञी विनयवती, श्रेष्ठी वृषभसेनो, गृहिणी वृषभसेना, पुत्रो जिनदासः । कामासक्तस्य राज्ञो व्याधिर्जातः । वैद्यास्तं चिकित्सितुं कथमपि न शक्नुवन्ति । श्रावकसिद्धार्थमन्त्रिणा पादौषधमुनेः पादप्रक्षालनजलं राज्ञे दत्तं । श्रद्धादिगुणोपेतो राजा पीत्वा नीरोगो जातः । एवं धर्मपानीय साधुनापि पातव्यम् ॥

[६०▪२] अपवादिलिङ्गकटो ऽपि ।

[अववादियलिंगकदो विसयासत्ति अगूहमाणो य ।
णिंदण–गरहण–जुत्तो सुज्झदि उवधिं परिहरंतो ॥८७॥]

[१]अत्रात्मनिन्दा कथा–काशीदेशे वाणारसीनगर्यां राजा विशालदत्तो, राज्ञी कनकप्रभा, चित्रकरो विचित्रो, गृहिणी विचित्रपताका, पुत्री बुद्धिमती । विचित्रकरस्य राजगृहं चित्रयतो बुद्धिमत्या भोजनं गृहीत्वागतया तया मणिकुट्टिमलिखितं मयूरपिच्छं गृह्णन् राजातिमूर्खो भणितः ॥ तथा अन्यदिने राज्ञश्चित्रं दर्शयन् स तया आहूतः–तात, शीघ्रमागच्छ । रत्नस्य यौवनं याति लग्नम् । तद्वचनाद्राजा पश्यन्नति-मूर्खो भणितः । तथान्यदिने विचित्रितकुड्यप्रच्छादनेऽपनीते द्वितीये कुड्ये विचित्रावलोकने राजा महामूर्खो भणितः । तया राज्ञः पूर्वकारणे कथिते

समस्त सुखों का बोध कराने वाले चरणों से सुशोभित होता है ।

श्री जयसिंह देव के राज्य में लक्ष्मी से युक्त धारा के निवासी परापर पञ्चपरमेष्ठी के प्रणाम से उपार्जित निर्मल पुण्य से जिन्होंने समस्त मल कलङ्क का निराकरण कर दिया है, ऐसे श्रीमान् प्रभाचन्द्र पण्डित के द्वारा आराधना सत्कथाप्रबन्ध रचा गया । इति ।

(९०.१) सम्यक् श्रद्धा

गाथार्थ– जो सम्पूर्ण प्रवचन की श्रद्धा, प्रतीति, रुचि तथा स्पर्श (अङ्गीकरण) करते हैं, वे सम्यक्त्व के आराधक होते हैं । [४८.१]

कथा– कुरुजाङ्गल देश में हस्तिनापुर में राजा विनयधर, रानी विनयवती, सेठ वृषभसेन गृहिणी वृषभसेना तथा पुत्र जिनदास था । कामसक्त राजा को रोग हो गया । वैद्य उसकी किसी प्रकार चिकित्सा करने में समर्थ नहीं होते थे । श्रावक सिद्धार्थ मन्त्री ने पादौषध मुनि के चरण प्रक्षालन का जल राजा को दिया । श्रद्धादि गुण से युक्त राजा पीकर नीरोग हो गया । इसी प्रकार धर्म रूपी पानी को साधु को भी पानी चाहिए ।

(९०.२) आत्मनिन्दा

गाथार्थ– अपवाद लिंग को प्राप्त (श्रावक, श्राविका, क्षुल्लक तथा आर्यिका) भी अपनी शक्ति को न छिपाकर निन्दा, गर्हाकर परिग्रह त्याग करते हुए शुद्धता को प्राप्त होते हैं । (८७)

आत्मनिन्दा कथा– १- काशी देश में वाराणसी नगरी में राजा विशाखदत्त, रानी कनकप्रभा, चित्रकर विचित्र, गृहिणी विचित्रपताका तथा पुत्री बुद्धिमती थी । विचित्रकर जब राजगृह में चित्रकारी कर रहा था। तब भोजन लेकर आई हुई उस बुद्धिमती ने फर्श पर चित्रित मयूरपिच्छ को पकड़ते हुए राजा को अतिमूर्ख कहा । दूसरे दिन राजा को चित्र दिखाते हुए उसे उसने बुलाया–तात, शीघ्र आओ । रत्न को यौवन लग गया है । उसके वचन से देखता हुआ राजा अत्यन्त मूर्ख कहा गया । दूसरे दिन चित्रित दीवाल का पर्दा हटाने पर दूसरी दीवाल पर चित्र का अवलोकन करता हुआ राजा महामूर्ख कहा गया । उसने

तेन परिणीता सा सर्वान्तः–पुरप्रधाना कृता । सेवागतमन्तःपुरं तस्याः शिरसि टोल्लकान् प्रदाय गच्छति । सा दुर्बला जाता । जिनालये प्रविश्य आत्मनिन्दां करोति । जघन्यकुलजाताहम् । पृष्टा राज्ञापि न कथयति दौर्बल्यकारणम् । जिनभवने पूर्वं प्रविष्टेन राज्ञा दौर्बल्यकारणं गर्हणं श्रुत्वा अन्तःपुरं भणित्वा सा सुतरां प्रधानत्वं प्रापिता । एवं क्षुल्लकादिनात्यात्मनिन्दा कर्तव्या । हीनकुलादिकारणेन मनोत्कृष्टलिङ्गलब्धि. ॥

०३) गरिहण अक्खाणं ।

[२] अयोध्याया राजा दुर्योधनो, राज्ञी श्रीदेवी, ब्राह्मणः सर्वोपाध्यायो ऽतिवृद्धो, ब्राह्मणी प्रिया, वीरा तरुणी अग्निभूतिच्छात्रेण सहासक्ता उपाध्याय मारयित्वा छत्रिकायामारोप्य कृष्णरात्रौ श्मशाने निक्षेप्तु गता । श्मशाने देवतया मस्तके छत्रिकां कीलयित्वा भणिता सा–'प्रभाते नगरीं प्रविश्य निजदुःकर्म गृहे गृहे नारीणां कथय त्वं येन पतति छत्रिका । तथा कृते पतिता छत्रिका मस्तकात् । सा लोकमध्ये शुद्धा जाता ॥

आलोचनैः गर्हणनिन्दनैश्च
व्रतोपवासैः स्तुतिसकथाभिः ।
एभिस्तु योगैः क्षपण करोमि
विषप्रतीघातमिवाप्रमत्तः ॥

[६०४]

[आणक्खिदा या लोचेण अप्पणो होदि धम्मसड्ढा य ।
उग्गो तवो य लोचो तहेव दुक्खस्स सहणं च ॥६२॥]

अत्र कथा–पूर्वविदेशे वरेन्द्रविषये देवीकोट्टपुरे ब्राह्मणः सोमशर्मा चतुर्वेद., ब्राह्मणी सोमिल्या, पुत्रावग्निभूतिवायुभूती । तत्रैव विष्णुदत्तो ऽपरब्राह्मणो व्यवहारकः, पत्नी विष्णुश्रीः । ऋणं विष्णुदत्तस्य गृहीत्वा

राजा से पूर्वकारण कहे, अतः राजा ने उसके साथ विवाह कर लिया और उसे समस्त अन्तःपुर की प्रधाना बना दिया। सेवा के लिए आया हुआ अन्तःपुर उसके सिर ठोकर लगाकर जाता था। वह दुर्बल हो गई। जिनालय में प्रविष्ट होकर वह आत्मनिन्दा करती थी कि मैं जघन्य कुल में उत्पन्न हुई। राजा के द्वारा पूछे जाने पर भी दुर्बलता का कारण नहीं कहती थी। जिनभवन में पहले से ही प्रविष्ट राजा ने उसकी दुबलता का कारण तथा निन्दा सुनकर अन्तःपुर से कहकर उसे तत्काल प्रधानता प्राप्त करा दी। इसी प्रकार क्षुल्लक आदि को अपनी निन्दा करना चाहिए। हीनकुलादि कारण से मन को उत्कृष्ट लिङ्ग की लब्धि हो जाती है।

[९०३] आत्म गर्हा

अयोध्या मे राजा दुर्योधन, रानी श्रीदेवी, सर्वोपाध्याय अतिवृद्ध ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी प्रिया थी। वीर तरुणी अग्निभूति नामक छात्र के प्रति आसक्त थी। वह उपाध्याय को मारकर छतरी पर चढ़ाकर काली रात में श्मसान में फेकने गई। श्मसान में देवी ने उसके मस्तक पर छतरी कील कर उससे कहा– प्रातः काल नगरी में प्रवेश कर अपना दुष्कर्म तुम घर में नारियों से कहो, जिससे छतरी गिर जाय। वैसा करने पर छतरी मस्तक से गिर गई। वह ब्राह्मणी लोगों के बीच शुद्ध हो गई।

आलोचना, गर्हणा, निन्दा, व्रतोपवास तथा स्तुति कथन इनके योग से मै कर्मो को नष्ट करता हूँ, जैसे अप्रमत्त पुरुष विष का प्रतीघात करता है।

[९०४] उग्रतप लोंच

गाथार्थ– लोच करने से अपनी धर्म में श्रद्धा होती है। लोंच उग्रतप है तथा उससे दुःख सहना भी होता है। [९२]

कथा– पूर्वविदेश में वरेन्द्र देश में देवी कोट्टपुर में चतुर्वेदी ब्राह्मण सोम शर्मा, ब्राह्मणी सोमिल्या तथा अग्निभूति और वायुभूति नामक दो पुत्र थे। वहीं पर दूसरा ऋण देने वाला ब्राह्मण विष्णुदत्त तथा पत्नी

एकदा सोमशर्मा मुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्भूत्वा विहृत्य कोट्टपुर-मायातो विष्णुदत्तेन दृष्टो धृत्वा द्रव्यं याचितः। तव पुत्रौ दरिद्रौ त्वं द्रव्यं धर्मं वा देहि। ततो वीरभद्राचार्योपदेशेन श्मशाने रात्रौ धर्मं विक्रीणतः सोमशर्ममुनेः प्रत्याख्याद्देवतया पृष्टं कीट [दृश] स्ते धर्मः। कथितस्तेन मूलोत्तरगुणक्षमादियुक्तः। भणित देवतया–

> धम्मो जयवसियरणं धम्मो चिंतामणी य अग्घे उ।
> धम्मो सुहवसुधारा धम्मो कामददुहाधेणू ॥१॥
> किं जंपिएण बहुणा जं जं दीसइ य सुम्मई लोए(१)।
> इंदियमणोहिरामं तं तं धम्मफलं सव्वं ॥२॥
> सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च नारद।
> सर्वतीर्थाभिषेकश्च यः कुर्यात्प्राणिनां दया ॥३॥

इति सर्वोत्तमधर्मस्य नास्ति मूल्यम्। किंतु सर्वोपसर्गनिवारणार्थमेकवारोत्पाटित–एकचिमुटी केशानां मूल्यं ददामीत्युक्त्वा रत्नराशिः कृतः। तथा प्रभाते तत्तपो ऽतिशयमालोक्य तस्यैव समीपे विष्णुदत्तो मुनिर्भूत्वा स्वर्गापवर्गं साधितवान्। अन्ये लोका जिनधर्मे लग्नाः। कोटितीर्थनामा चैत्यालयः ॥

(१०५) काले विणये उवहाणेत्यादि।

> [काले विणए उवहाणे बहुमाणे तह अणिण्हवणे।
> वंजण अत्थ तदुभयविणओ णाणम्मि अट्ठविहो ॥११३॥]

कालस्याख्यानम्–एको वीरभद्रो ऽस्थनिरटव्यामकाले ऽहोरात्रं पठन् श्रुतदेवतया दृष्टः। प्रतिबोधनार्थितया गोकुलिकारूपेण आगत्य रात्रौ सुगन्धमधुरमित्यादितक्रं गृहीथेति तस्य पार्श्वे बहुवारं भणितम्। मुनिना सोक्ता ग्रहिलासि त्वमत्र। को रात्रौ तक्रं गृह्णाति। त्वं ग्रहिलो ऽसि जिनागममकाले पठसि। नक्षत्रमालोक्य प्रबुद्धो गुरुसमीपं गत्वा–

---

१) सुम्मुवियालोए।

विष्णुश्री थी। विष्णुदत्त का ऋण लेकर एक बार सोमशर्मा मुनि के समीप धर्म सुनकर मुनि होकर विहार कर कोट्टपुर में आया। विष्णुदत्त ने उसे देखा तथा रोककर धन माँगा- तुम्हारे पुत्र दरिद्र हैं, तुम धन दो या धर्म। तब वीरभद्राचार्य के उपदेश से रात्रि में धर्म बेचते हुए सोमशर्मा मुनि से आख्यात देवी ने पूछा- तुम्हारा धर्म कैसा है ? उन्होंने मूलोत्तर क्षमादि गुणयुक्त धर्म कहा- देवी ने कहा-

धर्म जीत को वश में करने वाला हैं तथा धर्म धन में चिन्तामणि है। धर्म सुख रूपी धन की धारा है. धर्म कामदुहा धेनु है॥१॥

अधिक कहने से क्या, संसार में जो इन्द्रिय और मन को सुन्दर लगने वाली अच्छी वस्तु दिखाई देती है, वह सब धर्म का फल है॥२॥

हे नारद ! समस्त वेद, समस्त यज्ञ तथा समस्त तीर्थों पर स्नान करना उसे नहीं कर सकते हैं, जिसे प्राणियों के प्रति दया कर सकती है।

इस प्रकार सर्वोत्तम धर्म का मूल्य नहीं है। किन्तु समस्त उपसर्ग दूर करने के लिए एक बार उखाड़े गए- एक चिमटी केशों का मूल्य देती हूँ, ऐसा कहकर रत्नोंकी राशि बना दी। प्रातः काल उस तप के अतिशय को देखकर उन्हीं के समीप मुनि होकर विष्णुदत्त ने स्वर्ग और मोक्ष की सिद्धि की। दूसरे लोग जिनधर्म मानने लगे। वहाँ पर कोटितीर्थ नामक चैत्यालय निर्मित हुआ।

[९०▓५] ज्ञान की विनय

गाथार्थ- ज्ञान की विनय-काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिह्नव, व्यञ्जनहीन, अर्थहीन, तथा व्यञ्जनार्थहीन, रूप से आठ प्रकार की होती है। [११३]

काल का आख्यान- एक वीरभद्र नामक मुनि को अस्वनि नामक जंगल में असमय में रात दिन पढ़ते हुए श्रुतदेवी ने देखा। प्रतिबोधन हेतु ग्वाली के रूप में आकर रात्रि में सुगन्ध मधुर इत्यादि तक्र ले लो' इस प्रकार उनके पास अनेक बार कहा। मुनि ने उससे कहा- तुम यहाँ पागल हो गई हो, रात में कौन तक्र लेता है। ग्वाली ने कहा- पागल तुम हो, जो कि असमय में जिनागम पढ़ते हो।

लोच्य द्रव्यादिशुद्धया पठनतया पुनर्देवतयैकदा दृष्टः पूजितश्च प लोकं गतः ॥

[९०■६] [१] अकालस्याख्यानम् ।

शिवनन्दीमुनिरेकदा श्रवणनक्षत्रोदये स्वाध्यायकालो भवतीत्युपदेशं प्राप्याकाले पठन् मिथ्यात्वासमाधिमरणेन गङ्गायां मत्स्यो जातः । एकदा पुलिने साधुपाठमाकर्ण्य जातिस्मरो भूत्वात्मनिन्दां कृत्वा सम्यक्त्वाणुव्रतात् स्वर्गे देवः ॥

९०■७ [२] विनयस्याख्यानम् ।

वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां राजा धनसेनो भगवद्भक्तः, राज्ञी धनश्री श्राविका। सुप्रतिष्ठनामा न गतो राजाग्रासने भुङ्क्ते यमुनानद्यां जलस्तम्भिनीविद्यासामर्थ्येन जापं करोति । लोके विस्मयो जातः । अथ विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां रथनूपुरचक्रवालपुरे विद्याधरो राजा, विद्युत्प्रभः श्रावकः, राज्ञी विद्युद्वेगा भगवद्भक्ता । एकदा वन्दनार्थं तौ कौशाम्बीमागतौ । माघमासे यमुनानद्यां तस्य स्नानं जलोपरि जापं चालोक्य विद्युद्वेगयातिप्रशंसा कृता । ततो राज्ञा सह तस्या वादः । भणितं विद्युत्प्रभेण—आगच्छास्य दृढत्वमज्ञानित्वं च दर्शयामि । ततश्चाण्डालरूपेण यमुनोपरि गत्वा द्वाभ्यां कृतचर्ममांसप्रक्षालनेन सर्वं जलं दूषितम् । ततो रुष्टेन दुष्टं भणित्वा नद्युपरि गत्वा तेन स्नानादिकं प्रारब्धम् । पुनरपि गत्वा चाण्डालाभ्यां तथा जलं दूषितम् । पुनः सोऽपि तथोपरि गतः । एवं बहुवारान् चाण्डालाभ्यां दूषिते जले स्नानजपगर्वसुशुचित्वानि त्यक्त्वासौ मोहं गतः । चाण्डालाभ्यां तत उद्यानप्रासाददोलाभोजनगीतवाद्यादिगगनगमनं दर्शितम् । तस्मादेव विद्याधराणामपीदृशी विद्या नास्ति

नक्षत्र देखकर प्रबुद्ध हो गुरु के समीप आकर आलोचना कर द्रव्यादि शुद्धि से पढ़ते हुए वे देवी को पुनः एक बार दिखाई दिए। देवी के द्वारा पूजित हुए और परलोक गए।

(९०▓६) (१)अकालस्याख्यानम्

शिवनन्दी मुनि एक बार श्रवण नक्षत्र का उदय होने पर स्वाध्याय का समय होता है, यह उपदेश पाकर असमय में पढ़ते हुए मिथ्यात्व तथा असमाधिमरण से गङ्गा में मत्स्य हुए। एक बार तट पर साधु के पाठ को सुनकर जातिस्मरण होने पर आत्मनिन्दा कर सम्यक्त्व रूप अणुव्रत से स्वर्ग में देव हुए।

९०▓७ [२] विनयस्याख्यानम् ।

वत्सदेश में कौशाम्बी पुरी में भगवद्भक्त राजा धनसेन तथा रानी श्राविका धनश्री। सुप्रतिष्ठ नाम वाला वह बिना गए राजा के अग्रासन पर भोजन करता था और जल स्तम्भिनीविद्या के सामर्थ्य से यमुना नदी मे जाया करता था। विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रथनूपुर चक्रवालपुर मे विद्याधर राजा, विद्युत्प्रभ श्रावक तथा भगवद्भक्त रानी विद्युद्वेगा थी। एक बार वन्दना करने के लिए वे कौशाम्बी नगरी में आए माघ मास में यमुना नदी में उसके स्नान और जल के ऊपर जाप को देखकर विद्युद्वेगा ने अत्यन्त प्रशंसा की। अनन्तर राजा के साथ उसका वाद हुआ। विद्युत्प्रभ ने कहा— आओ! इसकी दृढ़ता और अज्ञानता को दिखाता हूँ। अनन्तर चाण्डाल रूप में यमुना के ऊपर आकर दोनों ने बनावटी चमड़े और मांस से समस्त जल दूषित कर दिया। अनन्तर रुष्ट होकर कहकर नदी के ऊपर जाकर उसने स्नानादिक प्रारम्भ किया। पुनः आकर दोनों चाण्डालों ने उसी प्रकार जल को दूषित कर दिया। पुनः वह भी उसी प्रकार ऊपर गया। इस प्रकार बहुत बार दोनों चाण्डालों के द्वारा दूषित जल में स्नान, जप, गर्व तथा पवित्रता त्यागकर वह मोह को प्राप्त हो गया। अनन्तर दोनों चाण्डालों ने उद्यान, प्रासाद, झूला, भोजन, गीत वाद्यादि तथा आकाश में गमन दिखलाया। उसी से ही विद्याधरों की ऐसी विद्या नहीं है,

यादृशी चाण्डालानाम् । अनयाहं सर्वं जगद्वञ्चयामीति ध्यात्वा तत्समीपं गत्वा पृष्ट तेन—यूयं कस्मादागताः कथमीदृशमाश्चर्यं कुरुतः । कथितं मातङ्गेन—त्वमपि न जानासि । मातङ्गो ऽहं नमस्कर्तुमागतस्य मम गुरुणा तुष्टेन मे विद्या दत्ता। तया सर्वमिदं करोमि। तेनोक्तम्—प्रसादं कृत्वा मह्यं विद्यामिमां देहि। चाण्डालेनोक्तम्—त्वमुत्तमकुलो ऽकृत्रिम—वेदपाठकः। विद्या विनयेन सिध्यति। यत्र मां पश्यसि तत्र यदि मे साष्टाङ्गप्रणामं करोषि भवतां प्रसादेन जीवामीति जल्पसि च तदा तव सिध्यति विद्या। यद्येवं न करोषि तदा नश्यत्येव सिद्धापि। तेनोक्तम्—यथाज्ञापयथः तथा करोमि। इत्युक्ते विधिना विद्यां दत्त्वा निजवसतिं तौ चाण्डालौ गतौ। सो ऽपि तया विद्यया विकुर्वाणां कृत्वा सिद्धा विद्येति ज्ञात्वा बृहद्वेलायां भोजनार्थं राजसमीपं गतः । पृष्टो राज्ञा—भगवन् किमद्य वेलातिक्रम । कथितं तेन बहुकाले तपोमाहात्म्यादद्य हरिहरब्रह्मादिदेवा मा पूजयितुमागताः। तेन बृहती वेलेति गगने गमनागमनादिकमपि मे जाता । राज्ञा भणितम्—भगवन् प्रभाते तत्सर्वं मे दर्शय। मठिकायां प्रभाते दर्शयिष्यामीत्युक्त्वा भोजनं कृत्वा गतः । स प्रभाते मठिकायां राजादीनां ब्रह्मादिक दर्शयतस्तस्य चाण्डालौ समायातौ निकृष्टचाण्डालावित्यादिकेन भणितेन नष्टा सा विद्या। पृष्ट राज्ञा-भगवन् किमत्र कारणम्। तेन च यथार्थमेव कथिते राज्ञा प्रणम्य चाण्डालो विद्या याचितः। चाण्डालेन पूर्वविधाने कथिते त्रिः परीत्य प्रणम्य दिव्यां गृहीत्वा परीक्ष्य राजा नगरीं प्रविष्टः । अन्यदास्थानस्थिते राज्ञि स चाण्डालः समायातो राज्ञा कथितविधिना नतः । तथा विद्याधरत्वं प्रकटीकृत्य विद्युत्प्रभेणान्या विद्या दत्ता। धनसेनस्य पश्चात्स धनसेनो विद्युद्वेगा अन्ये च श्रावका जाताः। एवं साधुनापि विनयं कर्तव्यः ॥

जैसी चाण्डालों की, इस विद्या के द्वारा मैं सारे जगत को धोखा दूँगा, ऐसा मन में विचार उनके समीप जाकर उसने पूछा– आप सब कैसे आए ? कैसे आप दोनों इस प्रकार का आश्चर्य कर रहे हैं ? मातङ्ग ने कहा– तुम भी नहीं जानते हो। मैं मातङ्ग हूँ, नमस्कार करने के लिए आए हुए मुझे मेरे गुरु ने सन्तुष्ट होकर विद्या दी है, उससे मैं यह सब करता हूँ। उसने कहा– कृपा कर यह विद्या मुझे दे दो। चाण्डाल ने कहा– तुम उत्तम कुल वाले अकृत्रिम वेदपाठक हो। विद्या विनय से सिद्ध होती है। जहाँ मुझे देखो, वहाँ साष्टाङ्ग प्रणाम करो और तुम्हारी कृपा से जी रहा हूँ, ऐसा बोलो तो तुम्हें विद्या सिद्ध हो जायगी। यदि ऐसा नहीं करते हो तो सिद्ध होने पर भी नष्ट हो जायगी। उसने कहा– जैसी आज्ञा दें, वैसा करूँगा। ऐसा कहने पर विधिपूर्वक विद्या देकर वे दोनों चाण्डाल अपने निवास को गए। वह भी उस विद्या से विक्रिया कर 'विद्या सिद्ध हो गई है,' यह जानकर बहुत देर बाद राजा के पास गया। राजा ने पूछा– भगवन् ! आज समय का अतिक्रम क्यों हो गया ? उसने कहा– बहुत समय के तप के माहात्म्य से आज हरि, हर, ब्रह्मादिक देव मुझे पूजने के लिए आए। उस कारण बहुत समय तक मेरा आकाश में गमना गमनादिक हुआ। राजा ने कहा– भगवन् ! प्रातःकाल वह सब मुझे दिखाओ। मठ में प्रातःकाल दिखाऊँगा, ऐसा कहकर भोजन कर चला गया। जब वह प्रातःकाल मठ में राजादिक को ब्रह्मादिक दिखला रहा था तभी वे दोनों, चाण्डाल आ गए। 'ये दोनों निकृष्ट चाण्डाल हैं, इत्यादि कहने से वह विद्या नष्ट हो गई। राजा ने पूछा– भगवन् ! कारण क्या है ? उसके द्वारा यथार्थ बात कहे जाने पर राजा ने प्रणाम कर चाण्डाल से विद्या माँगी। चाण्डाल के द्वारा पहला नियम कहे जाने पर तीन प्रदक्षिणा देकर, प्रणाम कर, दिव्य विद्या को लेकर परीक्षा कर राजा नगर में प्रविष्ट हुआ। एक बार जब राजा राज सभा में बैठा हुआ था तो वह चाण्डाल आया। राजा ने कही हुई विधि से प्रणाम किया। विद्याधरपना प्रकट कर विद्युत्प्रभ ने धनसेन को अन्य विद्यायें दीं। पश्चात् वह धनसेन, विद्युद्वेगा तथा अन्य श्रावक हो गए। इसी प्रकार साधु को भी विनय करना चाहिए।

१०८(३) उपधानाख्यानम् ।

अहिच्छत्रनगरे राजा वसुपालो, राज्ञी वसुमती, वसुपालकारित-सहस्रकूटचैत्यालये तद्वचने श्रीपार्श्वनाथप्रतिमायां मद्यादिसेविनो लेपकारा दिवसे मृत्तिकां ददति । रात्रौ सा पतति । लेपकारा कदर्थ्यन्ते निर्घाट्यन्ते। अन्येन लेपकारणे देवताधिष्ठितां प्रतिमां ज्ञात्वा मुनिपार्श्वे मद्यादीनां समाप्तिदिनं यावदवग्रहं गृहीत्वा समारि [पि] ता सा प्रतिमा । स च राज्ञा पूजितः । एवं मुनिनाप्यवग्रहो गृहीतव्यः ॥

१०९ (४) बहुमानाख्यानम् ।

काशीदेशे वाराणसीपुर्यां राजा वृषभध्वजो, राज्ञी वसुमती, गङ्गा नदीतटे पलाशकूटग्रामे अशोकनामा गोकुलिको घृतकुम्भसहस्रं प्रतिवर्षं ददाति । तस्य भार्या नन्धा [न्दा] वन्ध्या । पुत्रार्थं द्वितीया सुनन्दा परि-णीता । तयोश्चकटके सजाते अर्धार्धं सर्वं तयोर्दत्तम् । नन्दा गोपालगो-भाजनानां दुग्धादिखलादिप्रक्षालनादि पूजां क्रमेण करोति । सुनन्दा सौभाग्यगर्विता न करोति । तस्य गोपालाः स्वयं दुग्धं पिबन्तीत्यादयो दोषाः । पूर्णं नन्दाघृतम् । सुनन्दाया न किमपि । नन्दया अन्यघृत दत्तम्। निर्घाटिता सुनन्दा पुनः सर्वगृहव्यापिनी जाता । एवं मुनिना पूजा कर्तव्या॥

१०१० [५] अनिह्नवाख्यानम् ।

अवन्तीदेशे उज्जयिन्यां राजा धृतिषेणो, राज्ञी मलयावती, पुत्र-श्चण्डप्रद्योतनः । दक्षिणापथे वेनातटनगरे ब्राह्मणः सोमशर्मा, ब्राह्मणी सोमा, पुत्र कालसंदीवः सर्वविद्यापारगः । अष्टादशलिपयस्तेनोज्जयिन्यां चण्डप्रद्योतं पाठयता मस्तके पादेनाहत्य एका यवनलिपिः पाठिता ।

(६०■८) ३ उपधानाख्यानम्

अहिच्छत्रनगर में राजा वसुपाल तथा रानी वसुमती थी। वसुपाल के द्वारा बनवाए हुए सहस्रकूट चैत्यालय में राजा के कहने पर श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर मद्यादि का सेवन करने वाले लेपकार दिन में मिट्टी लगाते थे, रात्रि में वह गिर जाता था। लेपकार अपमानित किए जाते थे, निकाल दिए जाते थे। अन्य लेपकार ने देवी से अधिष्ठित प्रतिमा को जानकर मुनि के समीप लेप लगाने की समाप्ति के दिन तक के लिए मद्यादि के त्याग का नियम लेकर वह प्रतिमा पूर्ण की। राजा ने उस लेप्यकार का सम्मान किया। इसी प्रकार मुनि को भी नियम लेना चाहिए।

(६०■९) ४ बहुमानाख्यानम्।

काशी देश में वाराणसी पुरी में राजा वृषभध्वज तथा रानी वसुमती थी। गङ्गा नदी के तट पर पलाशकूट ग्राम में अशोक नामक ग्वाला प्रतिवर्ष एक हजार घी के घड़े दान करता था। उसकी भार्या नन्दा वन्ध्या थी। पुत्र के लिए (उसने) दूसरी [भार्या] सुनन्दा विवाही उन दोनों में कलह होने पर उन दोनों को सब आधा आधा दे दिया। नन्दा ग्वाले गो, तथा गाय के बर्तनो की क्रमशः दूध, जल तथा प्रक्षालनादि से पूजा करती थी। सुनन्दा सौभाग्य पर गर्वित हो पूजा नहीं करती थी। उसके ग्वाले स्वयं दूध पीते थ, इत्यादि (उसमें) दोष थे। नन्दा का घी पूरा हो गया। सुनन्दा का कुछ भी पूरा नहीं हुआ। नन्धा ने दूसरा घी दे दिया। सुनन्दा निकाल दी गई। नन्दा पुनः समस्त गृह में व्याप्त हो गई। इसी प्रकार मुनि को पूजा करना चाहिए।

[६०■१०] ५ अनिह्नवाख्यानम्

अवन्तीदेश में उज्जयिनी में राजा धृतिषेण, रानी मलयवती और पुत्र चण्डप्रद्योतन था। दक्षिणापथ में वेणातटनगर में ब्राह्मण सोमशर्मा, ब्राह्मणी सोमा तथा समस्त विद्याओं का ज्ञाता पुत्र काल संदीप था। उसने उज्जयिनी में चण्डप्रद्योत को अठारह लिपियाँ पढ़ाते समय

तेनोक्तम्—यदाहं राजा तदा तव पादं खण्डयिष्यामि । दक्षिणापथं गत्वा कालसंदीवो मुनिर्जातः । चण्डप्रद्योतनाय राज्यं दत्त्वा धृतिषेणो मुनिरभूत् । चण्डप्रद्योतनस्य एकदा यवनदेशराजेन लेखः प्रेषितः । तं कोऽपि न वाचयति । चण्डप्रद्योतनेन स्वयं वाचयित्वोपाध्यायं स्मृत्वा समानीय च पूजितः । स श्वेतसंदीवस्य तपो दत्त्वा विहरन् विपुलगिरौ वर्धमान-समवसरणं प्रविष्टः । कालसंदीवः समवसरणबाहिरे श्वेतसंदीव आतापनस्थो निर्गच्छता श्रेणिकेन गुरुः पृष्टः । वर्धमानस्वामी मे गुरुरिति भणिते पाण्डुरं शरीरं तत्र क्षणे कृष्णं जातम् । तस्य व्याघुट्य श्रेणिकेन गौतम-स्तच्छरीरकृष्णत्वकारणं पृष्टः । कथितं तेन गुरुनिह्नवात् । स श्रेणिकेन संबोधितो निन्दालोचनायुक्तो मोहक्षयात्केवलज्ञानी जातः । एवमन्येनापि न निह्नवः कर्तव्यः ॥

६०॥११ (६) व्यञ्जनहीनाख्यानम् ।

मगधदेशे राजगृहनगरे राजा वीरसेनो,राज्ञी वीरसेनी पुत्रः सिंह एक एव । तस्योपाध्यायः सोमशर्मा । उत्तरापथे सुरम्यदेशे पोदनपुरे राजा सिंहरथो राज्ञी सिंहरथा च । वीरसेनेन सिंहरथस्योपरिगतेन पोदनपुराद् वीरसेनाया राज्ञादेशः प्रेषितः । यथा सिंहोऽध्यापयितव्यः । अत्र राजाभिप्रायः । इङ् अध्ययने धातुस्तेनासौ पाठयितव्य इति । वाचकेन वाचयितः । सिंहोऽध्यापयितव्यः कोऽर्थः । ध्यै स्मृतिचिन्तायां धातुस्तेन चिन्तनिकामेव कार-यितव्यो न पाठयितव्यः । अकारलोपव्याख्यातम् । आगतेन राज्ञा पृष्टः—सिंहः पठितः । कथितम्—न पठितः । लेखार्थवाचको राज्ञा निर्घाटितः । एवं साधुनापि न ॥

मस्तक पर पैर से प्रहारकर एक यवनलिपि पढ़ाई। उसने कहा– जब मैं राजा होऊँगा तब तुम्हारा पैर तुड़वाऊँगा। दक्षिणापथ जाकर काल संदीप मुनि हो गया। चण्डप्रद्योत को एक बार यवनदेश के राजा ने लेख भेजा। उसे कोई भी नही बाच पाता था। चण्डप्रद्योत ने स्वयं बाचकर उपाध्याय का स्मरण कर सम्मान सहित बुलाकर पूजा की। वह श्वेत संदीप को तप देकर (दीक्षा देकर) विहार करते हुए विपुलाचल पर्वत पर वर्द्धमान स्वामी के समवसरण में प्रविष्ट हुए। समवसरण के बाहर आतापन योग में स्थित श्वेतसंदीव से बाहर निकलते हुए श्रेणिक ने पूछा– आपके गुरु कौन है? वर्द्धमान स्वामी मेरे गुरु हैं, इस प्रकार श्वेतसंदीव के कहने पर उनका श्वेत शरीर उसी समय काला हो गया। श्रेणिक ने लौटकर गौतम से गौरसंदीव का शरीर काला होने का कारण पूछा। गौतम ने कहा– गुरु को छिपाने के कारण गौरसंदीव का रंग काला हो गया है। गौरसंदीव को श्रेणिक ने संबोधित किया, जिससे अपनी निन्दा और आलोचना युक्त होकर गौरसंदीव मोह का क्षय हो जाने पर केवलज्ञानी हो गए। इस प्रकार दूसरे को भी निह्नव (छिपाव) नहीं करना चाहिए।

[९०▓११] ६ व्यञ्जनहीनाख्यानम्

मगधदेश में राजगृह नगर में राजा वीरसेन, रानी वीरसेना तथा अकेला पुत्र सिंह था। उसका उपाध्याय सोमशर्मा था। उत्तरापथ में सुरम्य देश में पोदनपुर में राजा सिंहरथ तथा रानी सिंहरथा थी। वीरसेन ने सिंहरथ के ऊपर चढ़ाई कर दी। पोदनपुर से वीरसेन ने राजादेश भेजा कि सिंहोऽध्यापितव्य' इति। यहाँ पर राजा का अभिप्राय था– इङ् धातु अध्ययन अर्थ में आती है, अत: उसे पढ़ा देना। वाचक से बचवाया– सिंहो ऽध्यापितव्य:। क्या अर्थ है? ध्यै धातु स्मृति और चिन्ता अर्थ में आती है, उसके अनुसार चिन्ता ही करना चाहिए, पढ़ाना नहीं चाहिए। अकार लोप की व्याख्या की। आकर राजा ने पूछा– सिंह ने पढ़ा। कहा– नहीं पढ़ा। लेखार्थ वाचक को राजा ने निकाल दिया। इसी प्रकार साधु को भी व्यञ्जनहीन कथन नहीं करना चाहिए।

६०▓१२ (७) अर्थहीनाख्यानम् ।

विनीतदेशे अयोध्यायां राजा वसुपालो, राज्ञी वसुमती, पुत्रो वसुमित्र:, तस्योपाध्यायो गर्ग: । अवन्तीदेशे उज्जयिन्यां राजा वीरदत्तो, राज्ञी वीरदत्ता । अयं वीरदत्तो वसुपालस्य मानभङ्गं करोति । वसुपाल-स्तस्योपरि रुष्ट: उज्जयिनीमायातो *बहुदिवसैर्वसुमत्यादीनां राज्ञादेश: प्रेषित: । यथा वसुमित्रो अध्यापयितव्य: उपाध्यायस्य शालिभक्त मसिश्च घृतं दातव्यम् । वाचकेन वाचित: । वसुमित्रो ऽध्यापयितव्य: । उपाध्या-यस्य शालिभक्तं मसिश्च दातव्यम् । तं ततश्चूर्णीकृत्य कोकिला उपाध्यायो भोजनं कार्यते । आगतेन राज्ञा उपाध्याय: पृष्ट: । कुशमिति । तेनोक्तम्-सर्वं शोभनम् । परं किंतु भवतां कुलाचारेण मषी खादितुं न शक्नोमि । राज्ञी पृष्टा-किं कारणम् । तया लेखो दर्शित: । वाचकस्य मुण्डनगर्दभारो-हणगूथभक्षणनिर्घाटनानि । एवं साधुनापि न ॥

६०▓१३ (८) व्यञ्जनार्थयोर्हीनाख्यानम् ।

कुरुजाङ्गलदेशे राजा महापद्म: पोदनपुरं गत: । स च सिद्धपुरा-भ्यन्तरे स्तम्भसहस्रनिष्पन्नसहस्रकूटचैत्यालयमालोक्य महापद्मेन जिनगर-जनस्य राजादेशो दत्त: यथा चैत्यालयनिमित्त बहूनां स्तम्भसहस्राणां संग्रह: कर्तव्य: । वाचितं वाचकेन स्तभसहस्राणामिति स्तभशब्देन छागा: संगृहीतव्या । आगतेन राज्ञा भणितम्-यन्मयादिष्टं तन्मे दर्शय, छागा दर्शिता: । रुष्टेन राज्ञा नगरजनो मारणे आज्ञात: । विज्ञाप्य लेखवाचको दर्शित: । ततो वाचको मारित: । एवं साधुनापि न ॥

[९०■१२] ७ अर्थहीनाख्यानम्

विनीतदेश में अयोध्यानगरी में राजा वसुपाल, रानी वसुमती, पुत्र वसुमित्र तथा उसका उपाध्याय गर्ग था। अवन्तीदेश की उज्जयिनी नगरी में राजा वीरदत्त और रानी वीरदत्ता थी। यह वीरदत्त वसुपाल का मानभङ्ग करता था। वसुपाल ने उसके ऊपर रुष्ट होकर उज्जयिनी में आकर बहुत दिनों बाद वसुमती आदि को राजाज्ञा भेज दी। कि वसुमित्रो अध्यापयितव्यः उपाध्यायस्य शालिभक्तं मसिश्च घृतं दातव्यम्। वाचक ने बाँचा— वसुमित्रो अध्यापयितव्यः। उपाध्यायस्य शालिभक्तं मसिश्च दातव्यम्। तात्पर्य यह कि वसुमित्र को सिखा देना कि उपाध्याय को चावलों का भात और एक मासा घी दे देना वाचक ने बाँचा कि वसुमित्र को सिखाना कि उपाध्याय को चावल का भात और काजल दे देना। अनन्तर कोयला चूर्ण कर उपाध्याय को भोजन कराया जाने लगा। आकर राजा ने उपाध्याय से पूछा-कुशल है? उसने कहा— सब ठीक है, किन्तु आपके कुलाचार से काजल खाने में समर्थ नहीं हूं। रानी से पूछा क्या कारण है? उसने लेख दिखा दिया। (राजा ने) वाचक को मुण्डन, गर्दभारोहण, विष्टा भक्षण तथा निकालना रूप दण्ड दिए। इसी प्रकार साधु को भी अर्थ हीन कथन नहीं करना चाहिए।

(९०■१३) ८ व्यञ्जनार्थयोहीनाख्यानम्

कुरुजाङ्गल देश का राजा महापद्म पोदनपुर गया। सिद्धपुर के भीतर एक हजार खम्भों से निर्मित सहस्रकूट चैत्यालय को देखकर उस महापद्म ने अपने नगर के लोगों को राजादेश दिया कि चैत्यालय के लिए बहुत सारे (हजार) स्तम्भों को संग्रह कर लेना। वाचक ने बाँचा— स्तम्भसहस्राणाम् इस प्रकार स्तभ शब्द से बकरे संगृहीत कर लेना। राजा ने पूछा— जो मैंने (स्तम्भों) का आदेश दिया था। उसे मुझे दिखलाओ। बकरे दिखा दिए गए। रुष्ट होकर राजा ने नगर जनों को मारने की आज्ञा दे दी। नगरनिवासियों ने निवेदन कर लेख-वाचक को दिखा दिया। तब वाचक मार दिया गया। इसी प्रकार साधु

६०.१४ (६) हीनाधिकव्यञ्जनाख्यानम् ।

सुराष्ट्रदेशे गिरिनगरपुरसमीपोर्जयन्तगिरिचन्द्रगुहायां महाकर्मप्रकृतिप्राभृतज्ञधरसेनाचार्येण स्तोकं निजायुर्ज्ञात्वा शास्त्रस्याविच्छित्तिनिमित्तमन्ध्रदेशे वेनतटपुरयात्रामिलिताचार्याणां पार्श्वे लेखं दत्त्वा ब्रह्मचारी प्रेषित.। यथा कृतकृत्यौ प्राज्ञौ शीघ्रं मुनी मम पार्श्वे प्रेषयथाः [ध्वम्]। तैश्च तथाभूतौ प्रेषितौ। तयोश्च प्रवेशदिने पश्चिमरात्रौ स्वप्ने शुभ्रतरुणवृषभौ निजपादयोः पतितौ दृष्ट्वा धरसेनाचार्यो जयतु श्रुतदेवता भणन्नुत्थितः। प्रभाते मुनी समायातौ दृष्ट्वा दिनत्रयं यथोचितं कृत्वा परीक्षार्थं हीनाधिकाक्षरे द्वे विद्ये साधयितुं तयोः प्रदत्ते। ऊर्जयन्ते अरिष्टनेमितीर्थंकरसिद्धशिलायां साधयतोस्तयोर्हीनाक्षरविद्यासाधकस्य काणादेवी समायाता। अधिकाक्षरविद्यासाधकस्य दन्तुरा समायाता। देवानां न भवतीदृशी स्थितिरिति संचिन्त्य मन्त्रव्याकरणप्रस्तारेण दत्त्वा अपनीय चाक्षरं साधयतोः श्रुतदेव्यौ समायाते आगत्याचार्यस्य निवेद्य शास्त्रस्य पारगौ जातौ। देवपूजितौ पुष्पदन्तभूतबलिनामानौ सिद्धान्ते कर्तारौ जातौ। एवमन्येनापि ॥

(६०.१५) जिणकप्पिकूण मूढो ।

[भयणीए विधम्मिज्जंतीए एयत्तभावणाए जहा।
जिणकप्पिओ ण मूढो खवओ वि ण मुज्झइ तधेव ॥२०१॥]

अस्य कथा—मगधदेशे राजगृहनगरे राजा प्रजापालो, राज्ञी प्रिय-

को भी व्यञ्जन और अर्थ से हीन कथन नहीं करना चाहिए।

(९०■१४) ६ हीनाधिकव्यञ्जनाख्यानम्

सुराष्ट्र देश में गिरिनगरपुर के समीप गिरनार पर्वत की चन्द्र-गुहा में महाकर्मप्रकृति प्राभृत के ज्ञाता धरसेनाचार्य ने अपनी थोड़ी आयु [अवशिष्ट] जानकर शास्त्र की विच्छित्ति न हो, इसके लिए आन्ध्र देश में वेनतट पुर में एकत्रित आचार्यों के समीप लेख देकर ब्रह्मचारी भेजा कि कृतकृत्य दो मुनि मेरे पास शीघ्र ही भेज दीजिए उन्होंने उस प्रकार के दो मुनि भेज दिए। उन दोनों के प्रवेश के दिन पश्चिम रात्रि में स्वप्न में सफेद तरुण दो बैल अपने चरणों में पड़े हुए देखकर 'श्रुत देवी की जय हो' ऐसा कहते हुए धरसेनाचार्य उठ गए। प्रातःकाल दोनों मुनियों को आया हुआ देखकर तीन दिन यथोचित कार्य कर परीक्षा के लिए उन दोनों को हीन और अधिक अक्षर वाली दो विद्यायें सिद्ध करने के लिए दीं। ऊर्जयन्त पर्वत पर अरिष्टनेमि तीर्थंकर की सिद्ध शिला पर सिद्ध करते हुए उन दोनों में हीन अक्षर वाली विद्या के साधन करने वाले के पास कानी देवी आयी और अधिक अक्षर वाली विद्या के साधन करने वाले के पास दाँत निकली हुई देवी आई। देवों की ऐसी स्थिति नहीं होती हैं, ऐसा सोच-कर मन्त्र व्याकरण के अनुसार अक्षर जोड़कर तथा अक्षर घटाकर विद्या की साधना के बाद श्रुतदेवियों के आने पर आकर आचार्य से निवेदन कर वे दोनों शास्त्र के पारगामी हो गए। देवपूजित पुष्पदन्त और भूतबलि नामक दोनों मुनि सिद्धान्त के कर्ता हो गए। इसी प्रकार हीन तथा अधिक व्यञ्जन के प्रति सावधानी रखने वाले अन्य व्यक्ति भी सिद्धान्त के ज्ञाता हो सकते हैं।

[९०■१५] अमूढ़ता

गाथार्थ-जिस प्रकार एकत्व भावना के बल से विधर्म के पथ पर जाती हुई बहिन के प्रति जिनकल्पी (नागदत्त नामक मुनि) मूढ़ नहीं हुआ, उसी प्रकार क्षमक भी मूढ़ नहीं होता है। [२०१]

इसकी कथा— मगधदेश में राजगृह में राजा प्रजापाल, रानी प्रि-य

दत्ता, पुत्रौ प्रियधर्मप्रियमित्रौ। तौ प्रियदमधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य तपो गृहीत्वा स्वर्गे देवौ जातौ। एकदा प्रियधर्मचरदेवेनोक्तम्—आवयोर्मध्ये प्रथमच्युतस्य द्वितीयेन स्वर्गस्थितेन संबोधनं कर्तव्यम्। एवमवन्तिदेशे उज्जयिनीनगर्यां राजा नागधर्मो, राज्ञी नागदत्ता, तयोः प्रियमित्रचरो देवः स्वर्गादेत्य नागदत्तनामा पुत्रो जातः। विस्मृतधर्मो गरुडादिशास्त्ररतो ऽभूत्। एकदा प्रियधर्मचरदेवेनावधिज्ञानेन ज्ञात्वा स्वर्गादागत्य डोम्बगारुडिकरूपेण तेन सह वादे जाते अभयप्रदानं साक्षिणो लब्ध्वा सर्पो मुक्तः। द्वितीयसर्पेण मायया मारितो नागदत्तः। अन्ये वैद्यादयः कालदष्टो ऽयं न जीवतीति वदन्ति। अर्धराज्यं भणित्वा राज्ञा तस्यैव डोम्बस्य समर्पितः। उत्थापयेति। तेनोक्तं गुरूपदेशो ऽस्ति मे। जीवन्नयं यद्युत्थितः तपो गृह्णाति। जीवन् दृश्यते इति पर्यालोच्य राज्ञा प्रतिपन्नम्। स तेनोत्थापितो दमधरमुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिरभूत्। ततो देवेन पूर्वसंबन्धः कथितः। राजादीनां विस्मयो धर्मलाभश्च संजातः। स नागदत्तजिनकल्पिताचरणयुक्तो जिनकल्पितनामा तीर्थयात्रायाः कृत्वा व्याघुटितो ऽटव्यां सूरदत्तः चौरैर्बद्धमार्गे धर्तुमारब्धः। अयं गत्वास्मान् कथयतीति। किमपि वदन्त्यमी। सूरदत्तेन राज्ञा मुक्तः। अथ जिनकल्पितस्य या लघुभगिनी नागश्रीः सा वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां जिनदत्तयोः पुत्राय जिनपालकुमाराय दत्ता, तां गृहीत्वा निजकटकेन कौशाम्बीं गच्छत्या नागदत्तया अटवीसमीपे जिनकल्पितो दृष्टो ऽपि मौनेन गतः। अटव्यां नागदत्तां नागश्रियं च सर्वं कटकं च गृहीत्वा निजपल्लिकां गतो रात्रौ मुनेर्गुणकथां कुर्वन् नागदत्तया क्षुरिकां याचितः। तेन पृष्टा—किं करिष्यसि। कथितं तया—यं पापिष्ठं त्वं वर्णयसि स चाण्डालो ममोदरे नवमासान् स्थितः।

दत्ता तथा प्रियधर्म और प्रियमित्र नामक दो पुत्र थे। उन दोनों ने प्रियंकर और धर्मधर मुनि के समीप धर्म सुनकर तप ग्रहण कर लिया। दोनों स्वर्ग में देव हुए। एक बार प्रियधर्म के जीव देव ने कहा– हम दोनों के मध्य जो स्वर्ग से पहले च्युत होगा, उसे स्वर्ग में स्थित दूसरा संबोधित करेगा। इस प्रकार अवन्तिदेश में उज्जयिनी नगरी में राजा नागधर्म तथा रानी नागदत्त थी। उन दोनों का प्रियमित्रचर देव स्वर्ग से आकर पुत्र हुआ। वह धर्म को भूलकर गरुडादिशास्त्र में रत हो गया। एक बार प्रियधर्म के जीव देव ने अवधिज्ञान से जानकर स्वर्ग से आकर सपेरे रूप उसके साथ वाद होने पर अभयप्रदान की साक्षी पाकर सर्प छोड़ा। दूसरे सर्प ने माया से नागदत्त को मार दिया। दूसरे वैद्य लोग 'काल से डसा गया, यह जीवित नहीं रहेगा, यह कहने लगे। राजा ने 'आधा राज्य दूँगा' ऐसा कहकर उसी डोम्ब को समर्पित कर दिया और कहा– इसे उठाओ। उसने कहा– मेरे गुरु का यह उपदेश है कि यह जीता हुआ उठता है तो तप ग्रहण करेगा। जीता हुआ दिखाई दे रहा है, ऐसा विचारकर राजा ने स्वीकार कर लिया। उसके द्वारा उठाया गया वह धमधर मुनि के पास धर्म सुनकर मुनि हो गया। अनन्तर देव ने पूर्वसम्बन्ध कहा। राजादिक को विस्मय और धर्मलाभ हुआ। जिनकल्प आचरण से युक्त उस नागदत्त को जिसका नाम जिनकल्पित हो गया था, जब वह तीर्थयात्रा से वापिस आ रहा था तब सूरदत्त को चोरों ने मार्ग में पकड़ना आरम्भ किया। उनको यह डर था कि] यह आकर हम लोगों के विषय में कह देगा। ये कुछ भी नहीं कहते हैं, [यह कहकर] राजा सूरदत्त ने छोड़ दिया।

अनन्तर जिनकल्पित की जो छोटी बहिन नागश्री थी, वह वत्स देश में कौशाम्बी पुरी में जिनदत्ता और जिनदत्त के पुत्र जिनपाल कुमार के लिए दी गई थी। उसे लेकर अपने कटक के साथ कौशाम्बी को जाते हुए नागदत्ता को जंगल के समीप जिनकल्पित दिखाई देने पर भी मौन रहा। जंगल में नागदत्ता, नागश्री और समस्त कटक को पकड़कर अपनी पल्ली को जाने पर रात्रि में (सूरदत्त द्वारा) जब मुनि के गुणों की कथा हो रही थी तो नागदत्ता ने छुरी मांगी। सूरदत्त ने पूछा– क्या करोगी? नागदत्ता ने कहा– जिस पापी का मुख

अत इदं क्षुरिकया पाटयामि । एतदाकर्ण्य तां जननीं प्रतिपक्ष सर्वस्व-युक्तां कौशाम्बीं प्राप्य जिनकल्पितसमीपे सूरदत्तो मुनिर्भूत्वा मुक्ति गतः ॥

[९०▓१६] तं वत्थुं मोत्तव्वं जं पडि ।

[तं वत्थुं मोत्तव्वं जं पडि उप्पज्जदे कसायग्गी ।
तं वत्थुमल्लिएज्जो जत्थोवसमो कसायाणं ॥२६२॥]

अत्र कथा—पूर्वमालवके तलिकाराष्ट्रदेशे परकच्छपत्तने राजा शूरसेनो, राज्ञी शूरसेना, श्रेष्ठी सूरदत्तः, पत्नी सूरदत्ता, पुत्रौ सूरमित्र-सूरचन्द्रौ, पुत्री मित्रवती । मृते सूरदत्ते दरिद्रौ सूरमित्रसूरचन्द्रौ सिंहल-द्वीपे पृथिवीमूल्यरत्नं प्राप्य व्याघुटितौ । अटव्यां सूरमित्रस्तद्रत्नं हस्ते गृहीत्वा रक्षन् भिक्षां गतस्य सूरचन्द्रस्य विषदानेन मारणं संचिन्त्य पश्चात्तापं करोति । अन्यदिने सूरचन्द्रः सूरमित्रस्य तथा करोति । एवं बहुदिनै-र्निजपत्तने वेत्रवती नदीतटे ज्येष्ठेन लघवे(१)समर्पितम् । तत् लघुना तस्य पूर्वपरिणामः कथितः । ज्येष्ठेन च ततो नदीद्रहे रत्नं निक्षिप्य गृहं प्रविष्टौ तौ । रत्नं द्रहे रोहितमत्स्येन गिलितम् । स च धीवरेण हृत्वा विक्रीतः । पुत्रनिमित्तं सूरदत्तया गृहीतः । खण्डयन्त्या पुत्रपुत्रीणां रत्नं प्राप्य विषेण मारणचिन्तादिकं कृत्वा पुत्रावुपार्जितद्रव्येण जीविष्यतः इति संचिन्त्य मित्रवत्यास्तद्रत्नं दत्तम् । मातृभ्रातृणां विषमरणं संचिन्त्य दुःपरिणामं च कथयित्वा तया मातुः समर्पितम् । ततो वैराग्यात्त्यक्त्वा धर्मान्परीक्ष्य दमधरमुनिसमीपे तपो गृहीतं तैः ॥

---

(१) लघु

वर्णन कर रहे हो, वह चाण्डाल मेरे उदर में नव माह तक रहा। इस कारण इसे छुरी से विदीर्ण करती हूँ। यह सुनकर उसे जननी मार कर सर्वस्व से युक्त उसे कौशाम्बी में पहुँचाकर सूरदत्त जिनकल्पित के समीप मुनि हो मुक्ति को प्राप्त हुआ।

[९०▓१६] त्याग तथा संचय

भावार्थ— जिससे कषाय रूप अग्नि उत्पन्न हो, वह वस्तु त्याग करने योग्य है तथा जिस वस्तु से कषायों का उपशम हो, वह वस्तु संचय करने योग्य है। [२६२]

कथा— पूर्वमालवक में तालिकाराष्ट्र देश में परकच्छपत्तन में राजा शूरसेन, रानी शूरसेना श्रेष्ठी सूरदत्त, पत्नी सूरदत्ता, पुत्र सूरमित्र और सूरचन्द्र तथा पुत्री मित्रवती थी। सूरदत्त के मर जाने पर दरिद्र सूरमित्र और सूरचन्द्र सिंहल द्वीप में मिट्टी के मूल्य रत्न को पाकर दोनों लौट आए। जंगल में सूरमित्र उस रत्न को लेकर जब उसकी रक्षा कर रहा था तो भिक्षा के लिए गए हुए सूरचन्द्र को विष देकर मारने की बात सोचकर पश्चाताप करने लगा। दूसरे दिन सूरचन्द्र सूर्यमित्र के प्रति भी वैसा करने लगा। इस प्रकार बहुत दिनों बाद अपने नगर (पत्तन) में वेत्रवती नदी के तट पर ज्येष्ठ भाई ने रत्न छोटे को सौंप दिया। उस छोटे भाई ने बड़े भाई से अपने पूर्व परिणाम कहे, बड़े भाई ने अपने पूर्व परिणाम कहे। तब नदी की गहरी झील में रत्न को फेंककर वे दोनों घर में प्रविष्ट हुए। रत्न को गहरी झील में रोहित मत्स्य ने निगल लिया धीवर ने मछली को मारकर बेचा। सूरदत्ता ने पुत्र के लिए उसे ले लिया। सूरदत्ता जब मछली काट रही थी तो उसे रत्न मिल गया। उसने पुत्र पुत्रियों के मारने का विचार किया। पुत्र उपार्जित द्रव्य से जीवित रह जायेंगे, ऐसा सोचकर मित्रवती को वह रत्न दे दिया। पुत्री ने माता और भाइयों का विष के द्वारा मरण सोचकर तथा दुष्परिणाम कहकर उस रत्न को माँ को समर्पित कर दिया। अनन्तर वैराग्य से उस रत्न को त्याग कर धर्म की परीक्षाकर दमधर मुनि के समीप उन्होंने तप ग्रहण कर लिया।

(६०-१७) गुणपरिणामादीहिं य ।

[गुणपरिमादीहिं य विज्जावच्चुज्जदो समज्जेदि ।
तित्थयरणामकम्मं तिलोयसंखोभयं पुण्णं ॥३२८॥]

अत्र कथा—सुराष्ट्रदेशे द्वारावतीनगर्यां हरिवंशे अर्धचक्रवर्ती कृष्ण नामा वासुदेवो, राज्ञी रुक्मिणी, जीवकनामा वैद्यः । अरिष्टनेमिसमव-सरणं गच्छता वासुदेवेन सुव्रतनामा मुनिर्व्याधिक्षीणाङ्गो दृष्टः । वैद्योप-दिष्टौषधपिण्डाः द्वारवत्यां सर्वगृहेषु वासुदेवेन धारिताः । तदा वासुदेवेन तीर्थंकरनामागोत्रमुपार्जितम् । तदौषधभक्षणादारोग्यः, स मुनिर्वासुदेवेन दृष्ट्वा पृष्टः—भगवन्, कोदृश शरीरम् । मुनिनोक्तम्—शरीरं कदाचित्-कीदृशं भवति । भट्टारकेण गुणे न दत्त इत्यार्तेन मृत्वा वैद्यो विधेर्नर्मदा-तीरे महान्मर्कटो जातः । तत्र वृक्षतले पर्यङ्कस्थं स्वयं पतितः शाखाभि-न्नोरस्कं शरीर निःस्पृहं मुनिमालोक्य स मर्कटो जातिस्मरो ऽभूत् । क्रोध परित्यज्य बहुमर्कटसहायेन तेन सा शाखा नामितवृक्षस्थशाखाया बहु-वल्लीभिर्बन्धयित्वा अपनीता । पूर्वसंस्कारादौषधं व्रणे दत्तम् । तेनावधि-ज्ञानिमुनिना पूर्वभवकथनेन संबोधतः । सम्यक्त्वाणुव्रतानि गृहीत्वा सप्तदिनैः संन्यासेन मृत सौधर्मे देवो जातः। आगत्य तेन गुरुपूजा निज-शरीरे पूजा च कृता ॥

(६०-१८) पाणागारे दुद्धं पिबंतओ बंभणो चेव ।

[दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि संजदो वि दोसेण ।
पाणागारे दुद्धं पिबंतओ बंभणो चेव ॥३४६॥]

अस्य कथा—वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां राजा धनपालो, राज्ञी वसु-पाली, कल्यपालः पूर्णभद्रः पत्नी मणिभद्रा, पुत्री वसुमित्रा । तस्या

[९०■१७] वैयावृत्य

गाथार्थ– वैयावृत्य युक्त पुरुष शुभ परिणामादिक से तीनों लोकों में आनन्द का कारण तीर्थंकर नामक पुण्यकर्म संचित करता है।(३२८)

कथा– सुराष्ट्र देश में द्वारावती नगरी में हरिवंश में अर्धचक्रवर्ती कृष्ण नामक वासुदेव, रानी रुक्मिणी तथा जीवक नामक वैद्य था। अरिष्टनेमि के समवसरण की ओर जाते हुए वासुदेव ने सुव्रत नामक मुनि को रोग से क्षीण अङ्ग वाला देखा। वैद्यों के द्वारा बतलाए हुए औषधपिण्ड द्वारावती में वासुदेव ने रखवाए। तब वासुदेव ने तीर्थंकर नामक गोत्र उपार्जित किया। उस औषध के भक्षण से आरोग्य को प्राप्त उन मुनि से वासुदेव ने पूछा– भगवन्! शरीर कैसा है? मुनि ने कहा– शरीर कदाचित् कैसा होता है? भट्टारक ने गुण पर ध्यान नहीं दिया, इस आर्तध्यान से मरकर वैद्य भाग्य से नर्मदा के तीर पर बडा बदर हुआ। वहाँ पर वृक्ष के नीचे पर्यङ्कासन पर स्थित, स्वयं गिरी हुए शाखाओं से जिसका वक्षस्थल विदीर्ण हो गया है तथा जो शरीर से निःस्पृह हैं, ऐसे मुनि को देखकर उस बन्दर को पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। क्रोध का परित्याग कर बहुत से बन्दरों की सहायता से उसने वह शाखा झुकाए हुए वृक्ष की शाखा से बहुत सी लताओं से बाँधकर हटा दी। पूर्वसंस्कार से घाव में औषधि लगा दी। उन अवधिज्ञानी मुनि ने उन्हें पूर्वभव के कथन से संबोधित किया। सम्यक्त्व तथा अणुव्रतों को ग्रहणकर सात दिनों बाद वह संन्यास से मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। उसने आकर गुरुपूजा और अपने शरीर का भी सत्कार किया।

[९०■१८] दुर्जन सङ्गति

गाथार्थ– दुर्जन की संगति से संयमी के विषय में दोषों की शंका की जाती है। जैसे- कलाल के घर दूध पीते हुए ब्राह्मण के विषय में लोग मद्यपान की शंका करते हैं।

इसकी कथा– वत्सदेश में कौशाम्बी पुरी में राजा धनपाल, रानी धनवती, मद्यविक्रेता पूर्णभद्र, पत्नी मणिभद्रा तथा पुत्री वसुमित्रा थी।

विवाहेन नगरजनं भोजयित्वा पूर्णभद्रेण परममित्रं चतुर्वेदषडङ्गविच्छिव-भूतिनामा ब्राह्मणो निमन्त्रितः । तेनोक्तम्—अकल्पते अस्माकं भवद्गृहे भोक्तुं यतः—

शूद्रान्नं शूद्रशुश्रूषा शूद्रप्रेषणकारिता ।
शूद्रदत्ता च या वृत्तिः पयन्ति नरकाय तत् ॥

पूर्णभद्रेणोक्तम्—ब्राह्मणगृहनिष्पन्नदुग्धान्नेन भोजनं कुरु । एवं कृत्वोद्याने पूर्णभद्रस्य दूरप्रवेशे गौल्यदुग्धं पिबन्त शिवभूतिमालोक्य लोकैः सुरापान-मिति राज्ञः कथितम् । स सत्यं ब्रुवन्नपि राज्ञा वमन कारितो दुर्गन्धवमना-न्निर्घाटितः ॥

(९०॥१६) आमयनसेण एवं ।

[आसयवसेण एव पुरिसा दोसं गुणं व पावंति ।
तम्हा पसत्थगुणमेव आसयं अल्लिएज्जाह ॥३५६॥]

अत्र कथा—अङ्गदेशे काम्पिल्यनगरे राजा सिंहध्वजो राज्ञी वप्रा श्राविका नन्दीश्वरयात्रां प्रतिवर्षं कारयति । सा वप्रा राज्ञी पुत्रो हरिषेणो द्वितीयराज्ञी लक्ष्मीमती वल्लभा । तया सौभाग्यतया भणितो राज्ञा—मदीयो ब्रह्मरथो अद्य दिने भ्रमतु । तेन वारितो वप्रायाः निजरथः । रथे भ्रामिते पारणादिकं करिष्यामीति । इति गृहीतप्रतिज्ञा भोजनार्थं हरिषे-णेनागत्य कारणं पृष्टा । ततो यथार्थमाकर्ण्य निर्गतो हरिषेणो विद्युच्चोर-पल्लिकायां प्रविष्टः । तमालोक्यैकशुकेनोक्तम्—अमुं राजपुत्रं धरथ । ततो निर्गत्य शतमन्युतापसपल्लिकायां प्रविष्टः । तत्राप्यालोक्यैकशुकेन यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्तीत्याकलय्योक्तमस्योत्तमराजपुत्रस्य गौरवं कुरुथ ततो हरिषेणेन पूर्वशुकस्य दुष्टत्वं निवेद्य भणितं च । किं गौरवं मे कार-यसीति । कथितं शुकेन—

मातापयेका पिताप्येको मम तस्य च पक्षिणः ।
अहं मुनिभिरानीतः स च नीतो गवाशनैः ॥१॥

वसुमित्रा के विवाह में नगरजनों को भोजन कराकर पूर्णभद्र ने परम मित्र छःअंगों के ज्ञाता शिवभूति नामक ब्राह्मण को निमन्त्रित किया। उसने कहा– हम लोग आप लोगों के घर भोजन करने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि –

शूद्र का अन्न, शूद्र की सेवा, शूद्र की नौकरी तथा शूद्र की दी हुई आजीविका ये सब नरक के लिए पर्याप्त हैं।

पूर्णभद्र ने कहा– ब्राह्मण के घर से निकाले गए दूध तथा अन्न से भोजन करो। ऐसा करके उद्यान में पूर्णभद्र के दूरवर्ती स्थान में गोदुग्ध पीते हुए शिवभूति को देखकर राजा से कहा कि शिवभूति ने मद्यपान किया है। उसके सत्य बोलने पर भी राजा ने वमन कराया दुर्गन्धित वमन करने के कारण राजा ने उसे निकाल दिया।

(९०■१९) आश्रय का प्रभाव

गाथार्थ– इसी प्रकार पुरुष आश्रय के वश गुण और दोष पाते हैं। अतः श्रेष्ठ गुणों के धारकों का ही आश्रय करना चाहिए। (३५६)

कथा– अङ्गदेश के काम्पिल्यनगर में राजा सिंहध्वज तथा रानी श्राविका वप्रा प्रतिवर्ष नन्दीश्वर की यात्रा कराती थी। राजा की वह वप्रा रानी थी और [उसका] पुत्र हरिषेण था। दूसरी प्रियरानी लक्ष्मीमती थी। लक्ष्मीमति ने सौभाग्य से कहा– आज के दिन मेरा ब्रह्मरथ घूमे। उस रानी ने वप्रा का जिनरथ रुकवा दिया। वप्रा ने प्रतिज्ञा की, कि रथ के घूमने पर भोजनादिक करूँगी। भोजन के लिए जब हरिषेण आया तो उसने कारण पूछा। तब यथार्थ बात सुनकर निकला हुआ हरिषेण विद्युच्चोर की पल्ली में पहुँचा। उसे देखकर एक तोते ने कहा– इस राजपुत्र को पकड़ो। तब वह निकलकर शतमन्यु तापस की पल्ली में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पर भी देखकर एक तोते ने 'जहाँ आकृति है, वहाँ गुण बसते हैं, ऐसा विचारकर कहा– इस राजपुत्र का गौरव करो। अनन्तर हरिषेण ने पहले के तोते की दुष्टता का निवेदन कर कहा– क्या गौरव कराओगे। तोते ने कहा –

मेरे और उस पक्षी के माता और पिता एक हैं, किन्तु मुझे तो मुनि लोग ले आए और उसे चमार ले गए ॥१॥

गवाशनानां स गिरः शृणोति
अहं च राजन् मुनिपुङ्गवानाम् ।
प्रत्यक्षमेतद्भवता हि दृष्टं
संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ॥२॥

इत्याश्रयवशात् । पूर्वं शतमन्युतापसश्चम्पायां राजा, राज्ञी नागवती, पुत्रो जनमेजयः, पुत्री मदनावली । जनमेजयाय राज्यं दत्त्वा सोऽयं च शतमन्युतापसोऽभूत् । मदनावल्या निमित्तिना आदेशः कृतः । सकलचक्रवर्तिनः स्त्रीरत्नं भविष्यत्येषा । ऊड्रविषये राजा कलकलस्वेनादेशमाकर्ण्य याचिता मदनावली । यतो न लब्धा ततस्तेनागत्य चम्पा वेष्टिता । नित्यं युद्धे सति सुरङ्गया मदनावलीं गृहीत्वा नागवती शतमन्युपल्लिकायां वार्ता कथयित्वा स्थिता । पूर्वं हरिषेणमदनावल्योरनुरागोऽभूत् । ततस्तापसैर्निर्घाटितेन तेन भणितम्–यदीमां परिणयिष्यसि तदा निजभूमौ योजने योजने चैत्यालयान् कारयिष्यामि । सिन्धुदेशे सिन्धुतटपुरे राजा सिन्धुनदो राज्ञी सिन्धुमती, सिन्धूदेव्यादिपुत्रीशत सकलचक्रवर्तिनः आदिष्टम्–सिन्धुनद्यां कन्यानां स्नानं हरिषेणेन सह अनुरागाश्च । तत्रादेशपट्टहस्तिनं दमयित्वा तेन परिणीतास्ताः कन्याः चित्रशालायां सुप्तो रात्रौ वेगवती–विद्याधर्या नीतः । उत्थितेन तेन गगने तारका आलोक्य तां हन्तुं मुष्टि–र्बद्धा । तया कृताञ्जल्या कथा कथिता । विजयार्धे सूर्योदयपुरे विद्याधरो राजा इन्द्रधनुः, बुद्धिमती राज्ञी, पुत्री जयचन्द्रा पुरुषद्वेषिणी । तस्या आदेशः कन्याशतपरिणेतुः प्रिया भविष्यति । तव चित्रपटो मया तस्याः दर्शितः । तद्वचनेन तत्समीपं त्वां नयामि । एवं तस्या विवाहे कृते गङ्गाधरमहीधरौ तस्या मैथुनिकौ युद्धं कर्तुमायातौ । तत्संग्रामे रत्ननि–धानयुक्तः सकलचक्रवर्ती बभूव । ततो मदनावलीं परिणीय गृहे जननीरथ यात्रा कृता । जिनायतनानि च ॥

वह चमारों की बोली सुनता है और हे राजन् ! मैं मुनियों की बोली सुनता हूँ । यह बात आपने प्रत्यक्ष रूप से देखी है कि गुण और दोष संसर्ग से होते हैं । अतः आश्चर्य के वश उस तोते ने ऐसा कहा– पहले चम्पा में शतमन्यु तापस राजा, रानी नागवती, पुत्र जनमेजय तथा पुत्री मदनावली थी । जन्मेजय को राज्य देकर वह यह शतमन्यु तापस हो गया । मदनावली को नैमित्तिक ने आदेश दिया था कि यह पूर्ण चक्रवर्ती की स्त्रीरत्न होगी । उड्रदेश में राजा कलकल था, उसने नैमित्तिक के आदेश को सुनकर रत्नावली माँगी । चूँकि वह उसे प्राप्त नहीं हुई अतः उसने आकर चम्पा नगरी पर घेरा डाला । नित्य युद्ध होने पर सुरङ्ग से मदनावली को लेकर नागवती शतमन्यु की पल्ली में वार्ता कहकर ठहर गई । पहले हरिषेण और मदनावली का अनुराग हुआ, अनन्तर तापसों के द्वारा निकाले गए उसने कहा– यदि इसे विवाहूँगा तो अपनी भूमि पर प्रति योजन चैत्यालय बनवाऊँगा ।

सिन्धुदेश के सिन्धुतटपुर में राजा सिन्धुनद तथा रानी सिन्धुमती थी । सिन्धुदेवी आदि सौ पुत्रियों के विषय में नैमित्तिक के आदेश दिया था कि इनका स्वामी पूर्णचक्रवर्ती होगा । सिन्धुनदी में कन्या स्नान कर रही थी, उनका हरिषेण के साथ अनुराग हो गया । वहाँ पर आदेश पट्टहस्ती का दमन कर उसने उन कन्याओं के साथ विवाह कर लिया । जब वह चित्रशाला में सो रहा था तो रात्रि में उसे वेगवती विद्याधरी ले गई । उठे हुए उसने आकाश में तारा देखकर उसे मारने के लिए मुट्ठी बाँधी । उसने हाथ जोड़कर कथा कही । विजयार्द्ध में सूर्योदयपुर में विद्याधर राजा इन्द्रधनु, बुद्धिमती रानी तथा पुरुष वेष वाली पुत्री जयचन्द्रा है । उसके विषय में नैमित्तिक ने आदेश दिया है कि यह सौ कन्याओं को विवाहने वाले की प्रिया होगी । मैंने उसे तुम्हारा चित्रपट दिखलाया । उसके वचनों के अनुसार तुम्हें उसके समीप ले जा रही हूँ । इस प्रकार उसके विवाह करने पर उसके युगल भाई गङ्गाधर और महीधर युद्ध करने के लिए आए । उस संग्राम में वह रत्न के निधान से युक्त पूर्णचक्रवर्ती हो गया । अनन्तर उसने मदनावली से विवाह कर घर में माता की रथयात्रा कराई तथा जिनायतन भी बनवाए

(६०।२०) अप्पो वि परस्स गुणो सप्पुरिसं पप्प ।

[अप्पो वि परस्स गुणो सप्पुरिस पप्प बहुदरो होदि ।
उदए व तेल्लबिंदू किह सो जंपिहिदि परदोसं ॥३७१॥]

अत्र कथा—सौधर्मेन्द्रेण गुणानुरञ्जनीं कथां कुर्वता भणितमुत्तमः परस्य दोषं न गृह्णाति स्वल्पमपि परस्य गुणं विस्तारयति । तत्र एकेन देवेन पृष्टः देवेन्द्रः । किं कोऽप तथाभूतोऽस्ति । कथितमिन्द्रेण—सुराष्ट्रदेशे द्वारवत्यां कृष्णनामा वासुदेवोऽस्ति । आरिष्टनेमितीर्थंकरवन्दनार्थं गच्छतो वासुदेवस्य स देवस्तं परीक्षितुमायातो मार्गे गजाकारमृतकुथितदुर्गन्धकुक्कुरो भूत्वा स्थितः । दुर्गन्धभयात्सर्वा सेना नष्टा । तेन देवेन द्वितीयब्राह्मणरूपेणागत्य वासुदेवस्याग्रे कुक्कुरदूषण कृतम् वासुदेवेनोक्तम्—अस्य कुक्कुरराजस्य मुखे स्फटिकाकारा दन्तपङ्क्तिरिति । आदितः प्रकटीभूय सर्वकथां प्रतिपाद्य तं प्रपूज्य देवो गतः ॥

(६०।२१)

चोल्लमपासयधण्णं जूअं रदणाणि सुमिण चक्क वा ।
कुम्मं जुगपरिमाणू दस दिटंठता मणुयलंभे ॥ [४३०।२]

चोल्लकदृष्टान्तः (१)

विनीतदेशे अयोध्यानगर्यां अरिष्टनेमितीर्थे ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिना बहुग्रामसहस्रभटनामा सामन्तः कृतः । तस्य राज्ञी सुमित्रा, पुत्रो वासुदेवोऽशिक्षितः । मृते सहस्रभटे तत्पदमन्यस्य दत्तम् । अयोध्यायां जीर्णकुटीरकस्थितया जनन्या वसुदेवो दूरशीघ्रधीवरेणेव झोलिकायां च ताम्बूलदड्डुकादिवहनेन सहस्रमन्त्रं कारयित्वा कुलस्वामी चक्रिणोऽङ्गजीवनसेवायां

[६०-२०] सत्पुरुष

गाथार्थ— जिस प्रकार अल्प तेल की बूंद जल में विस्तार को प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार सत्पुरुषों को दूसरे का अल्प गुण भी बहुत हो जाता है। ऐसा सत्पुरुष दूसरे का दोष कैसे कह सकता है? [२७१]

कथा— सौधर्मेन्द्र ने गुणानुरञ्जनी कथा करते हुए कहा— उत्तम पुरुष दूसरे के दोष को ग्रहण नहीं करता है। दूसरे के थोड़े भी गुण का विस्तार करता है। अनन्तर एक देव ने देवेन्द्र से पूछा— क्या कोई वैसा है? इन्द्र ने कहा— सौराष्ट्र देश में द्वारवती में कृष्ण नामक वासुदेव है। वासुदेव अरिष्टनेमि तीर्थंकर की वन्दना के लिए आ रहे थे। उनकी परीक्षा के लिए आया हुआ वह देव मार्ग में हाथी के आकार वाला मरा, कीड़े पड़ा हुआ, दुर्गन्धित कुत्ता होकर पड़ गया। दुर्गन्ध के भय से समस्त सेना भाग गई। उस देव ने द्वितीय ब्राह्मण के रूप में आकर वासुदेव के आगे कुत्ते को दोष लगाए। वासुदेव ने कहा- इस कुक्कुरराज के मुख में स्फटिक के आकार की दाँतों की पंक्ति है। इत्यादि से प्रकट होकर समस्त कथा कहकर वासुदेव की पूजा कर देव चला गया।

(६०-२१) मनुष्य जन्म की दुर्लभता

गाथार्थ- मनुष्य जन्म की प्राप्ति के विषय में चोल्लक, पाशक, धान्य, द्यूत, रत्न, स्वप्न, चक्र, कूर्म, युग तथा परमाणु ये दस दृष्टान्त हैं। (४३०-२)

चोल्लक दृष्टान्त: [१]

विनीतदेश में अयोध्या नगरी में अरिष्टनेमि तीर्थंकर के तीर्थ में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने कई हजार ग्रामों का सहस्रभट नामक सामन्त बनाया। उसकी पत्नी सुमित्रा तथा पुत्र वासुदेव था, जो कि अशिक्षित था। सहस्रभट के मरने पर उसका पद अन्य को दे दिया गया। अयोध्या की जीर्ण कुटीर में स्थित माता ने चीवर के समान खोसी दूर सीध पान, लड्डू आदि ग्रहण के लिए सहस्रमन्त्र करायें

घृतः। एकदा दुष्टाश्वेनाटवीं चक्रवर्ती नीतः। सह निर्व्यूढेन च वसुदेवे-नोपचारः कृतः। पृष्टेन कथितम्–सहस्रभटस्य पुत्रो ऽहम्। व्याघुटिता चक्रिणः तस्य निजकङ्कणं दत्त्वा नगरीमागत्य तलारे भणितः–भो मदीय कङ्कणं नष्टं गवेषयथ। अथ दिष्टे कङ्कण कथयन् वसुदेवस्तलारेण चक्रिणो दर्शितः। उक्तः स चक्रिणा–याचय वाञ्छितं ददामि। तेनोक्तम्–मदीय-माता जानाति। तया आगत्य चोल्लूकभोजनं याचितम्। पृष्टं चक्रिणा-कीदृशं तत्। देव, प्रथम भवद्गृहे गौरवेण स्नानभोजनाभरणद्रव्यादिक प्राप्य पश्चात्सवान्तःपुरमुकुटे बद्धादिपरिवारगृहे ऽपि क्रमेण प्राप्य पुनरपि क्रमेणैवं तदपि पुनः समाप्य तेन नष्ट मनुष्यत्वम् ॥

पाशकदृष्टान्तः ।२।

मगधदेशे शतद्वारनगरे राजा शतद्वारः। तेन नगरे कारितं [?] द्वारे द्वारे च स्तम्भानामेकादशैकादश सहस्राणि (११०००)। एकैकं स्त-म्भस्याश्रयः षण्णवतिः (९६)। एकैकस्यामश्रौ द्यूतकारपेटिकैका पाशाभ्यां रमते। तत्रैकदा शिवशर्मब्राह्मणेन द्यूतकाराः प्रार्थिताः। यदा सर्वत्रैका-दाय एकवारेण पतति तदा जितं द्रव्यं मह्यं दातव्यमिति। तैरेवमस्त्विति भणिते तस्मिन्नेव दिने सर्वत्रैकदायः पतितस्तद्द्रव्यं सर्वं लब्धवान्। अन्यदा पुनरपि स तथा प्राप्नोति। न नष्टं मनुष्यत्व प्राप्यते ॥

धान्यदृष्टान्तः ।३।

जम्बूद्वीपप्रमाणपल्यां योजनैकसहस्रमधःखातं धान्यसर्षपैर्निबिडं भृतम्। दिने दिने पुरुषेणैकैकमपनीयमाने तत्क्षीयते। न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

कुलस्वामी चक्रवर्ती के शरीर तथा जीवन की सेवा में रखा। एक बार एक दुष्ट घोड़ा चक्रवर्ती को जंगल में ले गया। वसुदेव ने पूरी तरह से उपचार किया। पूछने पर कहा- मैं सहस्रकूट का पुत्र हूँ। चक्रवर्ती ने लौटकर उसे अपना कङ्कण देकर नगरी में आकर नगर रक्षक से कहा— अरे मेरा कङ्कण गुम गया है: पता लगाओ। अनन्तर जुआ खेलने की दुकान पर कङ्कण के विषय में कहते हुए वसुदेव को नगररक्षक ने चक्रवर्ती को दिखाया। उससे चक्रवर्ती ने कहा— माँगो अभीष्टवस्तु देता हूँ। उसने कहा— मेरी माता जानती है। उसने आकर चुल्लू भर भोजन माँगा। चक्रवर्ती ने पूछा - वह कैसा ? उसने कहा। महाराज ! पहले आपके घर गौरव से स्नान, भोजन, आभरणादि सम्बन्धी द्रव्य को पाकर अनन्तर आपके अन्तःपुर तथा मुकुटबद्ध आदि परिवारगृह में भी क्रमशः पाकर पुनः क्रम से इसी प्रकार की सम्भावना की जाती है, किन्तु नष्ट हुए मनुष्यत्व की प्राप्ति की सम्भावना नहीं की जा सकती है।

पाशकदृष्टान्तः (२)

मगधदेश में शतद्वारनगर में राजा शतद्वार रहता था। उसने नगर में तथा दरवाजे दरवाजे पर ग्यारह–ग्यारह हजार स्तम्भ बनवाए। एक एक स्तम्भ के आश्रय ९६ थे। एक एक आश्रय में द्यूतकार की की एक एक टोली पाशों से जुआ खेलती थी. वहाँ पर एक बार शिव शर्मा नामक ब्राह्मण ने द्यूतकारों से प्रार्थना की कि एक बार में जिसका सर्वत्र एक ही दाँव आवे वह जीता हुआ द्रव्य मुझे दो। उन्होंने ऐसा ही हो, इस प्रकार कहा। उसी दिन सब जगह एक ही दाँव आया। अतः शिवशर्मा ब्राह्मण ने वह सब धन प्राप्त कर लिया। दूसरे समय पुनः वह उसी प्रकार (सब धन) प्राप्त करता है, किन्तु नष्ट हुरा मनुष्यत्व पुनः प्राप्त नहीं होता है।

धान्यदृष्टान्तः (३)

जम्बूद्वीप के बराबर एक हजार योजन गहरी खसी में सरसों से व्याप्त धान्य भरा। प्रतिदिन एक पुरुष के द्वारा निकाले जाने पर वह नष्ट हो जाता है। नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुनः प्राप्त नहीं होता है।

अथवा विनीतदेशे अयोध्यानगर्यां राजा प्रजापालः । यो मगधदेशे राजगृहनगरे राजा जितशत्रुःस प्रजापालस्योपरि चलितः । सर्वप्रजायाः सर्वधान्य प्रजापालेन कोष्ठागारे मिश्रितं संख्यया धृतम् । अयोध्यायां गृहीतुमसमर्थे व्याघुटिते जितशत्रौ प्रजया निजधान्ये याचिते भणितं राज्ञा— परिज्ञाय निजं निजं गृहाण । तदपि स भवति । न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

द्यूतदृष्टान्तः ॥४॥

शतद्वारनगरे द्वाराणां पञ्चशतानि । एकैकद्वारे शालानां पञ्चशतानि (५००) । शालायां पञ्च पञ्च द्यूतकारशतानि । एकश्चयीनामसहिकः सर्वकपर्दकान् जित्वा सर्वदिशासु सर्वे द्यूतकारास्ते गताः । पुनरपि चयी सर्वेषां मेलापकं कथंचित्करोति । न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

अथवा । तथाभूते तस्मिन्नेव नगरे निर्लक्षणनामा द्यूतकारः स्वप्नान्तरे ऽपि न जयति । एकदा च सर्वकपर्दकांस्तेन जित्वा कार्पटिकानां दत्ताः । ते च गृहीत्वा दशसु दिशासु गताः कदाचित्कार्पटिकादीनां पूर्ववत्तत्र मेलापको घटते । न नष्टं मनुष्यत्व प्राप्यते ॥

रत्नदृष्टान्तः ॥५॥

ये भरतसगरमघवत्सनत्कुमारशान्तिकुन्थुअरसुभौममहापद्महरिषेण— जयसेनब्रह्मदत्ताश्चक्रवर्तिनस्तेषां चूलामणयो देवैर्गृहीता । पुनरपि कथं चिद्भरतक्षेत्रे त एव चक्रिणस्त एव मणयस्ते पृथ्वीकायिका जीवास्ते देवाः स्युः । न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

अथवा सागरदत्तहस्तसमुद्रपतितरत्नदृष्टान्तः ॥

स्वप्नदृष्टान्तः ॥६॥

अवन्तीदेशोज्जयिन्यां हल्लनामा कार्पटिक अटव्याः सदा काष्ठान्यानयन् एकदा भारं भृत्वा बाह्यरिकायामुद्याने सुप्तः । सकलचक्रवर्ती स्वप्ने जातः ।

अथवा

विनीत देश की अयोध्या नगरी में राजा प्रजापाल था। मगधदेश में राजगृह नगर में जो राजा जितशत्रु था, उसने प्रजापाल के ऊपर चढ़ाई कर दी समस्त प्रजा का समस्त धान्य प्रजापाल ने कोठार में मिलाकर संख्यापूर्वक रख दिया। अयोध्या को पाने में असमर्थ जितशत्रु के लौट जाने पर प्रजा ने अपना धान्य मांगा। राजा ने कहा– पहिचान कर अपना अपना ले लो। वैसा भी हो सकता है, किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व प्राप्त नहीं होता है।

द्यूतदृष्टान्त: (४)

शतद्वार नगर में पाँच सौ द्वार थे। एक एक द्वार में पाँच सौ शालायें थी। शाला में पाँच–पाँच सौ द्यूतकार थे। एक चयी नामक जुवारी ने समस्त मुद्राओं को जीत लिया। वे जुआ खेलने वाले समस्त दिशाओं में चले गए। चयी सबका कथंचित् पुन: मिलाप करा सकता है, किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुनः प्राप्त नहीं होता है।

अथवा

उस प्रकार के उसी नगर में निर्लक्षण नामक जुआ खेलने वाला स्वप्न में भी नहीं जीतता है। एक बार उसने समस्त मुद्राओं को जीत कर तीर्थयात्रियों को दे दिया। वे लेकर दसों दिशाओं में चले गए। कदाचित् तीर्थयात्रियों का पहले के समान वहाँ मिलाप हो सकता है, किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुन. प्राप्त नहीं होता है।

रत्नद्रष्टान्त: (५)

जो भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, अर, सुभौम महापद्म, हरिषेण, जयसेन, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती थे, उनकी चूड़ामणियों को देवों ने ले लिया था। पुन: कथंचित् भरतक्षेत्र में वे ही चक्रवर्ती, वे ही देव हो जाँय, किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुन: प्राप्त नही होता है।

स्वप्नद्रष्टान्त: (६)

हुल्ल नामक अवन्ती देश में उज्जयिनी में कांवर ढोने वाला जो कि सदा लकड़ी लाया करता था, एक बार भार भरकर उद्यान के बाहर प्रदेश में सो गया। स्वप्न में पूर्ण चक्रवर्ती हो गया। उसे आकर

आगत्य भार्ययोत्थापितः । स कदाचित्तत्र सुप्तस्तथा चक्रवर्ती पुन र्भवति । न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

चक्रद्रष्टान्तः ।७॥

उपर्युपरि द्वाविंशतिस्तम्भाः । स्तम्भे स्तम्भे चैकैकं चक्रम् । चक्रे चक्रे आराणामेकैकसहस्रम् । आरे आरे चैकैकच्छिद्रम् । चक्राणां विपरीतभ्रमणात् छिद्रमेलापके तदुपरि राधा विध्यन्ते । काकन्दीनगर्यां राजा द्रुपदस्त त्पुत्री द्रौपदी स्वयंवरे अर्जुनेन राधावेधं कृत्वा परिणीता । पुनस्तदपि घटते न नष्टं मनुष्यत्वं प्रा यते ॥

अथवा अयोध्यायां सुभौमचक्रिणः सुदर्शनचक्रस्य यक्षसहस्रं रक्षणमभूत् । पुनः कदाचित्स तत्र चक्रान्ते पृथ्वीकायिकास्तथा विन्यस्तास्ते यक्षा व्यतिघटन्ते । न नष्ट मनुष्यत्व प्राप्यते ॥

कूर्मद्रष्टान्तः ॥८॥

अर्धतिर्यग्लोकप्रमाणे स्वयंभूरमणसमुद्रे तत्प्रमाणे प्रच्छादिते कालेन नन्दनामा कूर्मः । वर्षसहस्रं भ्रमता सूक्ष्मचर्मरन्ध्रेण तेनादित्यो दृष्टः । कदाचित्पुनराहूय निजकूर्मस्य तद्दर्शयन् स (न) पश्यति । न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते । पूर्वदेशे महातडागे ऽप्ययं कथयितव्यः ॥

युगद्रष्टान्तः ॥९॥

प्रमाणयोजनलक्षद्वयविस्तीर्णे पूर्वलवणसमुद्रे युगच्छिद्रात्कथंचित्समिला पतिता । तथा अपरसमुद्रे युगं च तत्र भ्रमति । तस्मिन्नेव छिद्रे कथंचित्समिला प्रविशति । न नष्ट मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

परमाणुद्रष्टान्तः । १०॥

सकलचक्रवर्तिनां चतुर्हस्तप्रमाणं दण्डरत्नं भवति । कालेन विचलिता स्तस्य परमाणवः यथाविन्यास पुनरपि मिलन्ति न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यत इति ज्ञात्वा विवेकिना भवकोटिषु मनुष्यत्वं दुर्लभं परिज्ञाय श्रीधर्मे महानादरो विधेयः ।

पत्नी ने उठाया। वह कदाचित् वहीं सोकर उसी प्रकार चक्रवर्ती हो सकता है, किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुनः प्राप्त नहीं होता है।

चक्रद्रष्टान्तः [७]

ऊपर–ऊपर बाईस स्तम्भ हों। प्रत्येक स्तम्भ पर एक–एक चक्र हो। प्रत्येक चक्र में एक–एक हजार आरे हों तथा प्रत्येक आरे में एक-एक छेद हो। चक्रों के विपरीत भ्रमण से छिद्रों के मिलाप होने पर उसके ऊपर राधा वेधी जाती हैं। काकन्दी नगरी में राजा द्रुपद था, उसकी पुत्री द्रौपदी को स्वयंवर मे अर्जुन ने राधा वेध करके विवाहा था। फिर भी वही हो सकता है. किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुनः प्राप्त नहीं होता है।

अथवा

अयोध्या में सुभौम चक्रवर्ती के सुदर्शनचक्र की एक हजार यक्ष रक्षा करते थे। पुनः कदाचित् उस चक्र के छोर पर पृथ्वी कायिकों को पुनः रखकर वे यक्ष दूर हो सकते हैं, किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुनः प्राप्त नही होता है।

कूर्मद्रष्टान्तः [८]

आधे तिर्यग्लोक प्रमाण स्वयम्भूरमण समुद्र में तत्प्रमाण प्रच्छादित नन्दनामक कूर्म ने एक हजार वर्ष भ्रमण करते हुए सूक्ष्म चमड़े के छेद से सूर्य देखा। कदाचित् पुनः बुलाकर अपने कछुए दिखाता हुआ वह उस सूय को देख लेता है, किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुनः प्राप्त नहीं होता है। पूर्वदेश में महातडाग में भी यही द्रष्टान्त कहना चाहिए।

युगद्रष्टान्तः [९]

दो लाख योजन प्रमाण विस्तीर्ण पूर्वलवण समुद्र में युगच्छिद्र से समिला किसी प्रकार गिर पड़ी। तथा अपर समुद्र में वहाँ एक युग तक घूमती रही उसी छेद में कथंचित् समिला प्रवेश करती है। किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुनः प्राप्त नहीं होता है।

परमाणुद्रष्टान्तः [१०]

पूर्ण चक्रवर्ती का चार हाथ प्रमाण दण्डरत्न होता है। समय पाकर विचलित उसके परमाणु यथा विन्यास पुनः मिल सकते हैं, किन्तु नष्ट हुआ मनुष्यत्व पुनः प्राप्त नहीं होता है, यह जानकर विवेकी को

(१०■२२) अच्छीणि संघसिरिणो

(अच्छीणि संघसिरिणो मिच्छत्तणिकाचणेण पडिदाणि।
कालगदो वि य संतो जादो सो दीहसंसारे ॥७३२॥)

अस्य कथा— दक्षिणापथे अन्ध्रदेशे श्रीपर्वतसमीपे पश्चिमदिशि तुङ्ग-भद्रानदीद्वयदक्षिणतटे पल्लरनगरे राजा यशोधरो, राज्ञी वसुंधरा, पुत्रा अनन्तवीर्यश्रीधरप्रियंवदाः। प्रासादस्थितो राजा पञ्चवर्णबहुकूटयुक्त-मुच्चैः मेघमालोक्य ईदृशं जिनभवनं कारयामीति बुद्ध्या यावद्भूमावा-लिखति तावत्स मेघो विलीनः। स सर्वमनित्यं मत्वा अनन्तवीर्यश्रीधरा-भ्यां क्रमेण त्यक्तं राज्यं प्रियंवदाय दत्त्वा अनन्तवीर्यश्रीधराभ्यां सह वर-दत्तकेवलीसमीपे मुनिरभूत्। एकदा प्रियंवदो राजा चैत्रमासे मनोहरोद्याने अतिमुक्तकमण्डपतले नाटकं पश्यन् सर्पेण दष्टो मृतः। वंशच्छेदे जाते सर्व हितमन्त्रिणा गवेषकाः प्रेषिताः। तैरागत्य कथितम्-यथा यशोधरो निर्वाणं गतः। तथानन्तवीर्यो ऽनुत्तरं गतः। श्रीपर्वते श्रीधरमुनिरातापनस्थस्ति-ष्ठति। एतदाकर्ण्य मन्त्रिणा तत्पार्श्वे गत्वा वंशोच्छेदं मातृभगिन्यादिदुःखं कथयित्वा आनीय श्रीधरं राज्ये धृतः। अरिष्टनेमितीर्थंकरनिर्वाणे वरदत्त-गणधरकेवलिविहारे स मुण्डराजा जातः तदन्वयस्य मुण्डितवंशो मोरी-यवंश इति नाम। ऋषिपर्वत इति श्रीपर्वतनाम। एवमन्ध्रदेशे धान्यकर-नगरे मुण्डितवंशान्वये बभूव राजा धनदत्तः सद्दृष्टिः। ग्रामनगरदेशेषु तेन जिनायतनानि सामन्तादयः श्रावकाः कृताः। तस्मिन् धान्यकनगरे

करोड़ो भवों में मनुष्यत्व की दुर्लभता को जानकर शोभायुक्त धर्म में महान् आदर करना चाहिए।

[६० २२] मिथ्यात्व की तीव्रता का प्रभाव

गाथार्थ– मिथ्यात्व की तीव्रता से संयमी के दोनों नेत्र आ पड़े और वह मृत्यु को प्राप्त होकर दीर्घ संसार में परिभ्रमण करने वाला हुआ। (७३२)

इसकी कथा– दक्षिणापथ में अन्ध्रदेश में श्रीपर्वत के समीप पश्चिमदिशा में तुङ्गभद्रा नदीद्वय के दक्षिण तट पर पल्लरनगर में राजा यशोधर, रानी वसुंधरा और पुत्र अनन्तवीर्य, श्रीधर तथा प्रियवद थे। प्रासाद पर स्थित राजा ने पाँच रग वाले बहुत से शिखरों से युक्त ऊँचे मेघों को देखकर ऐसा जिनभवन बनवाऊँगा, इस बुद्धि से जब भूमि पर चित्र बनाना प्रारम्भ किया तभी वह मेघ विलीन हो गया। राजा समस्त वस्तुओं को अनित्य मानकर अनन्तवीर्य तथा श्रीधर के द्वारा क्रम से त्यागे हुए राज्य को प्रियवद के लिए देकर अनन्तवीर्य तथा श्रीधर के साथ वरदत्त केवली के समीप मुनि हो गया। एक बार प्रियंवद राजा चैत्रमास में मनोहर उद्यान में अतिमुक्तक लता के मण्डप के नीचे नाटक देखता हुआ सर्प के द्वारा डसा जाकर मर गया। वंश का विनाश हो जाने पर सर्वहित नामक मन्त्री ने अन्वेषक भेजे। उन्होंने आकर कहा– यशोधर निर्वाण को चले गए। अनन्तवीर्य अनुत्तर को चले गए। श्रीधरमुनि श्रीपर्वत पर आतापन योग में स्थित हैं। यह सुनकर मन्त्री ने उनके पास जाकर वंश का उच्छेद, माता तथा बहिनों आदि के दुःख कहकर श्रीधर को राज्य पर स्थापित किया। अरिष्टनेमि तीर्थंकर के निर्वाण होने पर वरदत्त गणधर केवली के विहार होने पर वह मुण्डराजा हुआ। राजा के कुल का मुण्डितवंश मौरीय वंश यह नाम हुआ। श्रीपर्वत का नाम ऋषिपर्वत हुआ। इस प्रकार अन्ध्रदेश में धान्यकर नगर में मुण्डित वंश की परम्परा में सम्यग्दृष्टि राजा धनदत्त हुआ। ग्राम नगर तथा देशों में उसने जिनायतन

केनचिदेका बुद्धविहारिका कारिता। तत्र बुद्धिश्रीवन्दकाः, तस्य शिष्य उपासकः संघश्रीः, भार्या कमलश्रीः, पुत्री विमलमतिः। सा च धनराजस्य महादेवी जाता जिनधर्मरता। स च संघश्री राजा मन्त्री राज्ञश्वशुरश्चैवम्। एकदा विमलमतिसंघश्रीधनदाभिः प्रासादोपरि धर्ममुनिकथां कुर्वद्भिः अपराह्णे द्वौ चारणमुनी गगने गच्छन्तौ दृष्टौ। अभ्युत्थानादिकं कृत्वा समीपमानीतौ। वन्दनादिकं च कृतम्। राजवचनेन ज्येष्ठमुनिना संघश्रीस्तत्त्वं कथयित्वा श्रावकः कृतः। गतौ मुनी। भणितो राज्ञा संघश्रीः प्रभाते त्वया सभायां चारणमुनिवृत्तान्तः सर्वेषां कथयितव्यः। देव ह सर्वं स्वयं करिष्यामीत्युक्त्वा अभक्तो बुद्धविहारिकां संध्यायां गतो नमस्कारं कुर्वन् वन्दकेन पृष्टः। प्रणामं किं न करोषि। चारणवृत्तान्तादिकं कथितं तस्य तेन। हाहाकारं कृत्वा सर्वमसत्यं भणित्वा वन्दकेन च तस्य कथा कथिता। यथा काशीदेशे वाणारसीनगर्यां राजा उग्रसेनो, राज्ञी धनश्रीः, पुरोहितः सोमशर्मा, पत्नी पद्मावती, पुत्री पद्मश्रीः पितुरतिवल्लभा कुमारी। सोमशर्मा परिव्राजकभक्तो मठिकां कारयित्वा बहुपरिव्राजकानां भोजनं ददाति। सुवर्णखुरनामा परिव्राजको रूपवान् शास्त्रज्ञः संघपतिः कुमारीराद्धं परिविष्टं भुङ्क्ते चागत्य तस्य मठिकां स्थितः। पद्मश्रीर्भोजनं कारयति संसर्गात्ता गृहीत्वा गतः। पुरोहितेन गविष्टः। राज्ञोऽग्रे कथितम। तदादेशात्कोट्टपालेन गवेष्यानीतः। धर्मपाठका राज्ञा पृष्टाः। किमस्य क्रियते। तैरुक्तम्-मार्यते भूमौ पततु। तेन श्मशाने वृक्षे अवलम्बितो मृतः। रात्रौ गन्धपुष्पताम्बूलादियुक्तया पद्मश्रिया आलिङ्गितः। एतदाकर्ण्य राज्ञा दाहितः। रात्रौ तया तया भस्मालिङ्गितम्। पुरोहितेन तद्भस्म नदीह्रदे क्षेपितम्। सा तथा जलमालिङ्गित सदा। यथा न तस्याः सुखादिकं तथा न किंचिदपि

बनवाए तथा सामन्तादि को श्रावक बनाया। उस धान्यकनगर में किसी ने एक बौद्धों का छोटा सा विहार बनवाया। वहाँ पर बुद्धश्री बौद्ध भिक्षु, उसका शिष्य उपासक संघश्री, भार्या कमलश्री तथा पुत्री विमल मति धनराज की जिनधर्मरत महादेवी हुई। इस प्रकार संघश्री राज मन्त्री और राजा का श्वसुर हो गया।

एक बार विमलमति, संघश्री और धन आदि ने प्रासाद के ऊपर धर्म तथा मुनि की कथा करते हुए अपराह्न में दो चारण मुनि आकाश में जाते हुए देखे। अभ्युत्थान आदि कर दोनों समीप लाए गए। तथा वन्दनादिक की। राजा के कहने से ज्येष्ठ मुनि ने संघ श्री को तत्त्वकथन कर श्रावक बना लिया। दोनों मुनि चले गए। राजा ने संघश्री से कहा— प्रातः काल सभा में तुम्हें चारण मुनि का वृत्तान्त कहना चाहिए। महाराज! मैं सब स्वयं करूँगा, ऐसा कहकर बिना भक्ति के बुद्धविहार में संध्या के समय गया। नमस्कार न करने पर बौद्धभिक्षु ने पूछा— प्रणाम क्यों नहीं करते हो। उसने उस बौद्धभिक्षु से चारण वृत्तान्तादि कहा। हा हाकार कर तथा सब असत्य कहकर बौद्धभिक्षु ने उससे कथा कही कि काशी देश में वाराणसी नगरी में राजा उग्रसेन, रानी धनश्री, पुरोहित सोमशर्मा, पत्नी पद्मावती तथा पिता को अत्यन्त प्यारी कुमारी पुत्री पद्मश्री थी। परिव्राजकों का भक्त सोमशर्मा छोटा सा मठ बनाकर बहुत से परिव्राजकों को भोजन देता था। रूपवान्, शास्त्रज्ञ तथा संघपति सुवर्णखुर नामक परिव्राजक कुमारी के द्वारा बनाए गई परोसे गए भोजन को खाता था। तथा आकर मठ में ठहर जाता था। पद्मश्री भोजन कराती थी, संसर्ग से उसे लेकर वह चला गया। पुरोहित ने ढूँढा। राजा के आगे कहा। राजा के आदेश से कोट्टपाल ढूँढकर लाया। राजा ने धर्मपाठकों से पूछा— इसका क्या किया जाय? उन्होंने कहा- इसे मारा जाता है, ताकि यह भूमि पर गिर जाए। वह श्मशान में वृक्ष पर लटककर मर गया रात्रि में गन्ध, पुष्प, ताम्बूल आदि से युक्त पद्मश्री ने उसका आलि- ङ्गन किया। यह सुनकर राजा ने जलवा दिया। रात्रि में उसी प्रकार उसने भस्म का आलिङ्गन किया। पुरोहित ने वह भस्म नदी के गहरे पानी में डाल दी। वह उसी प्रकार सदा जल का आलिङ्गन

चारणादिकं भ्रान्तिरेव, स राजा तवेन्द्रजालं दर्शयति । स इन्द्रजाली अतो मा त्वं बुद्धधर्मं त्यज । पुनर्मिथ्यात्व देन सुतरां स नीतो मिथ्यात्वं भणित-इव–प्रभाते त्वं राजसभामागच्छतो ऽपि दृष्टमिति मा वादीः । प्रभाते च राज्ञा सामन्तादीनां गगनचारणागमनकथां कथयता सवादार्थम् आग्रहेण राज्ञा सघश्री आनायितः । आगतेन पृष्टेन च न दृष्टमित्युक्ते द्वे अपि लोचने भूमौ पतिते । अद्यापि सत्य कथयेति भणिते न दृष्टमिति भणना-सनात्पतितः । पुनस्तथा भूमौ प्रविष्टो मृतो नरकं गतः दीर्घसंसारी जातः । तदतिशयाज्जिनधर्मे रता लोकाः । अर्हद्दासपुत्राय राज्य दत्त्वा धनराजो बहुसामन्तैः सह समाधिगुप्तिमुनिसमीपे तपसा मोक्षं गतः । विमलमत्या-दयो जिनदत्तार्जिकासमीपे अर्जिका जाताः ॥

[१०■२३] भावाणुरायरत्त ।

(भावाणुरागपेमाणुरागमज्जाणुरागरत्तो वा ।
धम्माणुरागरत्तो य होहि जिणसासणे णिच्चं ॥७३७॥]

अत्र– भवानुरागरक्ताख्यानम्-अवन्तीदेशोज्जयिन्यां राजा धर्मपालो राज्ञी धर्मश्रीः, श्रेष्ठी सागरदत्तः, पत्नी सुभद्रा, पुत्रो नागदत्तः । सुभद्रा-समुद्रदत्तयोः पुत्री प्रियङ्गुश्रीः । सा नागदत्तेन परिणीता प्रियङ्गुश्रीः । तस्या मैथुनिको नागसेनो वैरं गृहीत्वा स्थितः । एकदोपोषित धर्मानुराग-युक्तं चैत्यालये कायोत्सर्गे स्थितं नागदत्तमालोक्य नागसेनेन निजं हारं तस्य पादोपरि धृत्वा अयं चौर इति पूत्कृतम् । एतदाकर्ण्यालोक्य तलारेण राज्ञः कथितम्– न चौर इति । विजानतापि राज्ञा मारणीयो भणितः । नागदत्तशिरश्छेदार्थं खड्गो यो वाहितः स हारस्तस्य कण्ठे पुष्पमालासहितो बभूव देवैः साधुकारितश्च । तदतिश-यदर्शनाद्धर्मपालनागदत्तो मुनी जातो । बहवो जिनधर्मरताश्च ॥

करने लगी। जिस प्रकार जलाधि के आलिङ्गन से वास्तविक रूप में उसे सुख नहीं है, उसी प्रकार चारणादि का भी अस्तित्व नहीं है । चारणादिक भ्रान्ति ही है। वह राजा तुम्हें इन्द्रजाल दिखलाता है । वह राजा ऐन्द्रजालिक है अतः तुम बुद्धधर्म मत त्यागो । मिथ्यात्व की ओर ले जाये गए उससे उसने पुनः कहा– प्रातः काल तुम ने राजसभा में आने पर भी चारण ऋद्धि मुनियों को देखा था, यह मत कहना।

प्रातः काल राजा सामन्तादि से आकाश चारी मुनियों के आने की कथा कह रहा था। सहमति के लिए राजा के आग्रह से संघश्री लाया गया । आकर पूछने पर '(दोनों चारणमुनियों को) नहीं देखा था ऐसा कहने पर उसके दोनों के नेत्र भूमि पर गिर पड़े। अब भी सत्य, सत्य कहो, ऐसा कहने पर नहीं देखा था, ऐसा कहता हुआ वह आसन से गिर पड़ा। पुनः उसी प्रकार भूमि में प्रविष्ट हो मरकर नरक गया। और दीर्घसंसारी हुआ। उस अतिशय से लोग जिनधर्म के प्रति अनुरागी हो गए । अर्हद्दास नामक पुत्र के लिए राज्य देकर धनराज बहुत सामन्तों के साथ समाधिगुप्ति मुनि के समीप तप के प्रभाव से मोक्ष गया। विमलमती आदि जिनदत्ता आर्यिका के समीप आर्यिका हो गई।

(९०▒२३) अनुराग

गाथार्थ– भावानुराग, प्रेमानुराग मज्जानुराग तथा धर्मानुराग जिनशासन के प्रतिनित्य होना चाहिए। (७३७)

भावानुरागरक्ताख्यान्– अवन्तीदेश में उज्जयिनी नगरी में राजा धर्मपाल, रानी धर्मश्री, श्रेष्ठि सागरदत्त, पत्नी सुभद्रा तथा पुत्र नागदत्त था। सुभद्रा और समुद्रदत्त की पुत्री प्रियङ्गुश्री थी। वह प्रियङ्गुश्री नागदत्त से विवाही थी। उसके साले नागसेन ने बैर बाँध लिया। एक बार उपवास किए हुए, धर्मानुराग से युक्त, चैत्यालय में कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित नागदत्त को देखकर नागसेन ने अपना हार उनके पैर के ऊपर रखकर यह चोर है, इस प्रकार जोर की आवाज की। यह सुनकर नगररक्षक ने राजा से कहा– यह चोर नहीं है। जानते हुए भी राजा ने कहा– इसे मार दो। नागदत्त का सिर काटने के लिए जिस तलवार को चलाया गया था, वह उस के गले में पुष्पमाला सहित

[९०.२४] प्रेमानुरागरक्ताख्यानम्

विनीतदेशे साकेतानगर्यां राजा सुवर्णवर्मा, राज्ञी सुवर्णश्रीः, इभ्यः श्रेष्ठी सुमित्रो जिनशासनप्रेमानुरागरक्तः पर्वरात्रौ निजगृहे कायोत्सर्गेण स्थितः। एकदा देवेन परीक्षणार्थं स्त्र्यादिहरणेन परीक्षितो न चलितः। देवो गगनगामिनी विद्यां दत्त्वा गतः। तदतिशयाल्लोका मुनयः श्रावका जाताः ॥

[९०.२५] मज्जानुरक्ताख्यानम्

उज्जयिन्यां राजा रागबुद्धिः, सार्थवाहजिनदत्तवसुमित्रौ जिनधर्म मज्जानुरागौ श्रावकौ वाणिज्यार्थमुत्तरापथं गतौ। अवसीरमालवरपर्वतयोर्मध्ये बिलवत्यटव्यां सार्थे चौरैर्गृहीते अटवीं प्रविष्टौ तौ दिङ्मोहे तु जाते जिनदत्तवसुमित्रौ जिनधर्मे मज्जानुरागरक्तौ संन्यासे स्थितौ। सोमशर्मा ब्राह्मणोऽपि तयोः पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य संन्यासे स्थितः। कीटकामकंटोपसर्गं समाध्यास्य सौधर्मे महर्द्धिको देवो भूत्वा श्रेणिकस्याभयकुमारनामा पुत्रो जातः। जिनदत्त वसुमित्रौ सौधर्मे महर्द्धिकदेवौ जातौ ॥

[९०.२६] धर्मानुरागरक्ताख्यानम्।

अवन्तीदेशोज्जयिन्यां राजा धनवर्मा, राज्ञी धनश्रीः, पुत्रो लकुचोऽतीवमानगर्वी। कालमेघम्लेच्छेन तद्देशोपद्रवे स्वयं गत्वा संग्रामे लकुचेन स बद्धः। तुष्टेन राज्ञा तस्य वरो दत्तः। कामचारं वरं ग्राहयित्वा तेनो-

हार हो गई और देवों ने उसकी प्रशंसा की। उस अतिशय से धर्मपाल और नागदत्त मुनि हो गए। तथा अनेक लोग जिनधर्म के अनुरागी हो गए।

[१०.२४] प्रेमानुरागरक्ताख्यानम्

विनीत देश में साकेत नगरी में राजा सुवर्णवर्मा, रानी सुवर्णश्री तथा जिनशासन के प्रति प्रेमानुरागरक्त सेठ सुमित्र था। सुमित्र पर्व की रात्रि में अपने घर कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित था। एक बार एक देव के द्वारा परीक्षा के लिए स्त्री आदि का हरण करने पर भी वह विचलित नहीं हुआ। देव गगनगामिनी विद्या देकर चला गया। उस अतिशय से लोग मुनि तथा श्रावक हो गए।

(१०.२५) मज्जानुरक्ताख्यानम्

उज्जयिनी में राजा रागबुद्धि, सार्थवाह जिनदत्त और वसुमित्र थे। दोनों जिनधर्म के प्रति मज्जानुरागी श्रावक वाणिज्य के लिए उत्तरापथ की ओर गए। अवसीर और मालवर पर्वत के बीच बिलमती नामक जंगल में काफिले को चोरों के द्वारा पकड़ लिए जाने पर जंगल में प्रविष्ट वे दोनों जिनदत्त और वसुमित्र दिशा भूल जाने पर जिनधर्म में मज्जानुरागरक्त होते हुए संन्यास में स्थित हो गए। सोमशर्मा ब्राह्मण भी उन दोनों के समीप धर्म सुनकर संन्यास में स्थित हो गया। कीड़ों और बन्दरों का उपसर्ग समता भाव से सहनकर सौधर्म स्वर्ग में महान् ऋद्धि वाला देव होकर श्रेणिक का अभयकुमार नामक पुत्र हुआ। जिनदत्त और वसुमित्र सौधर्म स्वर्ग में महान् ऋद्धि वाले देव हुए।

[१०.२६] धर्मानुरागरक्ताख्यानम्

अवन्ती देश की उज्जयिनी नगरी में राजा धनवर्मा, रानी धनश्री तथा पुत्र लकुच था, जो कि अत्यन्त मान गर्व वाला था। कालमेघ नामक म्लेच्छ ने जब उसके देश में उपद्रव किया तो स्वयं लकुच ने जाकर उसे बाँधा। राजा ने सन्तुष्ट होकर उसे वर दिया।

ज्जयिनीस्त्रियो विधर्मिताः । पुङ्गलश्रेष्ठिनो नागधर्मा अतीव रूपवती विष मिता । पुङ्गलो वैरं गृहीत्वा स्थितः । एकदोद्याने क्रीडायां मुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य लकुचो मुनिर्भूत्वा विहृत्योज्जयिन्यां महाकालवने प्रतिमायोगेन स्थितः । पुङ्गलेन रात्रौ गत्वा वैराल्लोहशलाकाभिः शरीरं सर्वं संधिषु कीलितं धर्मानुरागेण परलोकं गतः ॥

(१०▪२७) जिणभत्तीए ।

(एक्का वि जिणे भत्ती णिद्दिट्ठा दुक्खलक्खणासयरी ।
सोक्खाणमणंताण होदि हु सा कारणं परमं ॥७३७▪१॥]

अस्य कथा- विदेहदेशे मिथिलानगर्यां राजा पद्मः । स पापर्द्धिं गतः कालगुहायां मुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य सम्यक्त्वं गृहीत्वा पृच्छां कृतवान्-भगवन्, किमन्यो ऽपि को ऽप्येवं वक्तुं जानाति तथा दीप्तिवांश्च । कथितं मुनिना- अङ्गदेशे चम्पायां वासुपूज्यतीर्थकरा वक्तारो दीप्तिमन्तश्च । ततो जिनभक्तिरागः प्रभाते वन्दनार्थं गच्छतस्तस्य धन्वन्तरिविश्वानुलोमवरदेवाभ्यामुपसर्गं कृत्वा सर्वरुजापहारे हारो योजनघोषा भेरी च दत्ता स च तीर्थकरं वन्दित्वा गणधरो जातः ॥

(१०▪२८) दंसणभट्ठो भट्ठो ।

(दंसणभट्ठो भट्ठो ण हु भट्ठो होदि चरणभट्ठो हु ।

अत्र कथा- काम्पिल्यनगरे राजा ब्रह्मरथो, राज्ञी रामिल्या, तत्पुत्रो ऽरिष्टनेमितीर्थे ब्रह्मदत्तो द्वादशसकलचक्रवर्ती । एकदा विजयसेनसूपकारेण भोक्तुमुपविष्टस्यात्युष्णा क्षैरेयी दत्ता । भोक्तुमसमर्थेन तेन हत्वा

स्वेच्छाचरण रूप वर माँगकर उसने उज्जयिनी की स्त्रियों को विधर्मी बनाया। पुङ्गल सेठ की नागधर्मा नामक अत्यन्त रूपवती स्त्री को विधर्मी बनाया। पुङ्गल वैर बाँधकर ठहर गया। एक बार उद्यान-क्रीडा में मुनि के समीप धर्म सुनकर लकुच मुनि होकर विहारकर उज्जयिनी के महाकालवन में प्रतिमायोग से स्थित हो गए। पुङ्गल ने रात्रि में आकर वैर से लोहे की सलाइयों से शरीर के सब जोड़ कील दिए। धर्मानुराग से वह परलोक चला गया।

[६०■२७] जिनेन्द्रभक्ति

गाथार्थ–जिनेन्द्र भगवान के प्रति एक भी भक्ति लाखों दुःखों का नाश करने वाली है। वह अनन्त सुखों की परम कारण होती है। [७३७■१]

इसकी कथा–विदेह देश की मिथिला नगरी में राजा पद्म था वह शिकार खेलने के लिए गया हुआ था। मुनि के पास कालगुहा में धर्मसुनकर सम्यक्त्व ग्रहणकर उसने पूछा–भगवन्! क्या अन्य भी ऐसा दीप्तिमान् तथा बोलना जानने वाला है? मुनि ने कहा–वङ्ग देश में चम्पा नगरी में वासुपूज्य तीर्थंकर वक्ता हैं और दीप्तिमान् भी हैं। अनन्तर जिनभक्ति के प्रति अनुरागवान् वह प्रातःकाल वन्दना के लिए चल दिए। जाते हुए उसके ऊपर धन्वन्तरि और विश्वानुलोम नामक दो देवों ने उपसर्ग किया। [उपसर्ग जीतने पर] उसे समस्त रोगों का अपहरण करने वाला हार तथा योजनाघोषा नामक भेरी दी। वह तीर्थंकर की वन्दनाकर गणधर हो गया।

(६०■२८) सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट ही भ्रष्ट है

सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट ही भ्रष्ट है, चारित्र से भ्रष्ट भ्रष्ट नहीं होता है।

कथा–काम्पिल्य नगर में राजा ब्रह्मरथ, रानी रामिल्या तथा उसका पुत्र ब्रह्मदत्त था जो कि अरिष्टनेमि के तीर्थ में बारहवाँ पूर्ण चक्रवर्ती था। एक बार जब वह भोजन के लिए बैठा हुआ था तो विजयसेन नामक रसोइए ने उसे अत्यधिक गर्म खीर दे दी।

स मारितः । स च मृत्वा लवणसमुद्रे रत्नद्वीपे व्यन्तरो देवो भूत्वा विभङ्गज्ञानेन वैरं ज्ञात्वा परिव्राजकरूपेण मृष्टकेलादिफलानि चक्रवर्तिने दत्तवान् । तानि भक्षयित्वा तेनान्तःपुरादिकयुक्तं तं समुद्रमध्ये नीत्वा मारणार्थमुपसर्गः कृतः । तेन पञ्चनमस्कारान् स्मरन्तो मारयितुं न शक्यन्ते । तेन च ततस्तेन प्रकटीभूय प्रचार्य भणितो ब्रह्मदत्त. रे त्वां मारयामि, किंतु यदि जिनशासनं नास्ति भणित्वा पञ्चनमस्करानालिख्य पादेन विनाशयिष्यसि तदा न मारयामि । एतस्मिन् कृते जलमध्ये तेन स मारितः । सप्तम नरकं गतः । मन्त्रिपुरोहितान्तःपुराणि सम्यक्त्वपञ्चनमस्कारस्मरणात् स्वर्गे देवा बभूवुः ॥

(९०॥२९) दंसणममुयंतस्स ।

दंसणममुयंतस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे ॥७३६॥]

अत्र कथा– पाटलिपुरनगरे श्रेष्ठी जिनदत्तो, भार्या जिनदासी, पुत्रो जिनदासः सुवर्णद्वीपाद्धनमुपार्ज्य व्याघुटितो योजनशतविस्तारप्रोहणस्थेन कालिदेवेन भणितः । भो जन, जिनमत च नास्तीति भण । अन्यथा मारयामि त्वाम् । जिनदासादिभिः वर्धमानस्वामिन नमस्कृत्य मस्तकविन्यस्तहस्तैर्भणितम् । सर्वोत्तमः जिनो जिनमतं चास्त्येव । ब्रह्मदत्तचक्रिकथा च सर्वेषां जिनदासेन कथिता । ततः उत्तरकुरुस्थेनासनकम्पनादनावृत्य यक्षेण चक्रं मुक्तम् । तेन भृकुटे प्रहतो वडवामुखे पतितः । कालिराक्षसः श्रिया जिनदासादीनामर्घ्यो दत्तः । गृहागतेन जिनदासेनावधिज्ञानी वैरकारणं पृष्टः । तेन कथितमिति ॥

[९०॥३०] द्वितीयं दर्शनमुखाख्यानम्

लाटदेशे द्रोणीमतिपर्वतसमीपे गलगोद्रहपत्तने श्रेष्ठी जिनदत्तो, भार्या जिनदत्ता, पुत्री जिनमतिः । द्वितीयः श्रेष्ठी नागदत्तो, भार्या

बाने में असमर्थ उसके द्वारा आहत होकर वह मारा गया। वह मर-कर लवणसमुद्र में रत्नद्वीप में व्यन्तर देव हुआ । विभङ्गज्ञान से वैर जानकर उसने स्वादिष्ट केले आदि फल चक्रवर्ती को दिए । उन्हें खिलाकर उस व्यन्तर ने अन्तःपुरादि से युक्त उसे समुद्र के मध्य से जाकर मारने के लिए उपसर्ग किया । चक्रवर्ती पचनमस्कार मन्त्र का स्मरण कर रहा था, अतः उसे वह मारने में समर्थ नहीं था। तदनन्तर उसे व्यन्तर ने प्रकट होकर विचरणकर ब्रह्मदत्त से कहा—रे तुम्हें मारता हूँ, किन्तु यदि 'जिनशासन नहीं है', ऐसा कहकर पचनमस्कार मन्त्र लिखकर पैर से मिटा दोगे तो नहीं मारूँगा। ऐसा करने पर जल के बीच उस व्यन्तर ने चक्रवर्ती को मार दिया । चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक गया। मन्त्रि, पुरोहित तथा अन्तःपुर सम्यक्त्व तथा पंच-नमस्कार मन्त्र का स्मरण कर स्वर्ग में देव हुए ।

(६०▓२६) भव आताप निवार—सम्यग्दर्शन

जिसका सम्यग्दर्शन नही छूटा, उसका संसार में पतन नहीं होता है। [७३६]

इसकी कथा—पाटलिपुत्र नगर में श्रेष्ठी जिनदत्त, भार्या जिन-दासी तथा पुत्र जिनदास था। सुवर्ण द्वीप से धनोपार्जनकर लौटे हुए एक सौ योजन बिस्तार वाले जहाज पर स्थित (उससे) कालिदेव ने कहा। हे मनुष्य, जिनमत नहीं है, यह कहो, अन्यथा तुम्हें मारता हूँ। जिनदास आदि ने वर्द्धमानस्वामि को नमस्कार कर मस्तक पर हाथ रखकर कहा। जिन सर्वोत्तम हैं और जिनमत है ही । जिनदास ने सभी से ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की कहानी कही। अनन्तर उत्तर कुरु में स्थित यक्ष का आसन कम्पायमान हुआ, उसने खोलकर चक्र छोड़ा । उसके द्वारा मुकुट पर प्रहार किये जाने पर बडवाग्नि के मुख में पड़े हुए कालिराक्षस ने लक्ष्मी के द्वारा जिनदास आदि को अर्घ्य दिया। घर पर आकर जिनदास ने अवधिज्ञानी से वैर का कारण पूछा। अवधि-ज्ञानी ने वैर का कारण कह दिया ।

(६०▓३०) सम्यग्दर्शन का प्रभाव

लाटदेश में द्रोणीमति पर्वत के समीप गलगोद्रह पत्तन में सेठ जिनदत्त, भार्या जिनदत्ता और पुत्री जिनमति थी। दूसरा सेठ नागदत्त

नागदत्ता, पुत्रो रुद्रदत्तः। रुद्रदत्तनिमित्तं नागदत्तेन जिनमतिः याचिता। माहेश्वरस्य न दत्ता धर्मनाशभयात्। एको धर्म इति भणित्वा नागदत्त रुद्रदत्तौ समाधिगुप्तमुनिपार्श्वे मायया श्रावकौ जातौ। ततो जिनमतिं परिणीय पुनर्माहेश्वरौ जातौ। रुद्रदत्तो भणति—त्वं मदीय धर्मं गृहाण जिनमत्या भणितम्— न युक्तं मे धर्मं त्यक्तुम्, त्वं मदीय धर्मं गृहाण। रुद्रदत्तेनापि भणितम्—न युक्तं मे शिवधर्मं त्यक्तुम्। निजनिजधर्म-कथनविवदाज्झकटकश्च नित्यं तयोः। रुद्रदत्तेन च भणितम्—वसतिं यासि मुनिभ्यो दानं ददासि यदि तदा त्वां निर्द्धाटयामि। जिनमत्या भणितम् त्वमपि यद्येवं निजधर्मं करोषि तदाहं म्रिये। गृहे निजनिजधर्मस्तयोः एकदा पत्तनपूर्वदिशि महाटव्यां ये भिल्लास्तै पत्तने अग्निना सर्वतः प्रज्वालिते जिनमत्या भणितो रुद्रदत्तः—यो देवो ऽद्य रक्षति तस्य धर्मो द्वयोरपि। एवमस्त्विति भणित्वा श्रावणं कृत्वा रुद्रदत्तेन रुद्राय अर्घ्यो दत्तः। तदपि न विशेषः। ततो ब्रह्मादिभ्यो ऽपि दत्ते न विशेषः। ततो जिनमतिः पञ्चपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं दत्वा पतिपुत्रवधूः समीपे कृत्वा कायोत्सर्गेण स्थिता। तत्क्षणादुपसर्गोपशान्तिरभूत्। तमतिशयमालोक्य रुद्र-दत्तादयो बहवः श्रावका जाताः॥

(९०/३१) सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि।

[सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि अज्जेदि तित्थयरणामकम्म।
जादो खु सेणिगो आगमेसि अरुहो अविरदो वि॥७४०॥]

अस्य कथा— मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको राज्ञी सुप्रभा पुत्रः श्रेणिकः कुमारः। एकदा प्रत्यन्तवासिना पूर्ववैरिणा नागधर्मेण यो जात्यश्वो दुष्टः प्रेषितः स खञ्चितो ऽतिसरति। एकदा वाह्यालीगतो राजा तेनाश्वेन महाटवीं नीतः। तत्र पल्लीपतिर्यमदण्डो, विद्युन्मती, पुत्री-

भार्या नागदत्ता तथा पुत्र रुद्रदत्त था। रुद्रदत्त के निमित्त नागदत्त ने जिनमति मांगी। महेश्वर ने धर्म का नाश होने के भय से नहीं दी। एक ही धर्म है, ऐसा कहकर नागदत्त और रुद्रदत्त समाधिगुप्त मुनि के समीप माया से श्रावक हो गए। अनन्तर जिनमति से विवाह कर पुनः दोनों माहेश्वर हो गए। रुद्रदत्त कहता था—तुम मेरा धर्म ग्रहण करो। जिनमति ने कहा—मेरा धर्म त्याग करना ठीक नहीं है, तुम मेरा धर्म ग्रहण करो। रुद्रदत्त ने भी कहा—मेरे लिए शिवधर्म त्यागना ठीक नहीं है। अपने अपने धर्म के कथन के विवाद से उन दोनों में नित्य झकटक होती थी। रुद्रदत्त ने कहा—यदि तुम वसति जाती हो और मुनियों को दान देती हो तो मैं तुम्हें निकाला दूंगा। जिनमति ने कहा—तुम भी यदि इस प्रकार अपना धर्म करते हो तो मैं मर जाऊंगी। उन दोनों का घर में अपना अपना धर्म हो गया। एक बार पत्तन की पूर्व दशा में महाजंगल में जो भील थे, उन्होंने पत्तन में चारों ओर से आग लगा दी। जिनमती ने रुद्रदत्त से कहा—जो देव आज रक्षा करेगा, वही दोनों का धर्म होगा। यही हो, ऐसा कहकर सुनकर रुद्रदत्त ने रुद्र को अर्घ्य दिया। तो भी कोई विशेष बात नहीं हुई। अनन्तर ब्रह्मादिक को भी अर्घ्य दिया तो भी विशेष बात नहीं हुई। अनन्तर जिनमती पञ्चपरमेष्ठियों को अर्घ्य देकर पति और पुत्रवधू को समीप कर कायोत्सर्गपूर्वक खड़ी हो गई। उसी क्षण उपसर्ग शान्त हो गया। उस अतिशय को देखकर रुद्रदत्तादि बहुत से लोग श्रावक हो गए।

(९०।२१) सम्यक्त्व की शुद्धता का माहात्म्य

गाथार्थ—सम्यक्त्व शुद्ध होने कर अविरती भी तीर्थंकर नाम-कर्म का उपार्जन करता है। व्रत रहित भी श्रेणिक राजा सम्यक्त्व के प्रभाव से अर्हन्त होंगे। [७४०]

इसकी कथा—मगधदेश में राजगृहनगर में राजा श्रेणिक, रानी सुप्रभा और पुत्र कुमार श्रेणिक था। एक बार सीमावर्ती पूर्व वैरी नागधर्म ने जो दुष्ट जाति का अश्व भेजा था वह सवारी करने पर बहुत आगे बढ़ जाता था। एक बार अश्वक्रीडनक स्थान में गया हुआ वह राजा उस अश्व के द्वारा घोर जंगल में ले जाया गया। वहाँ

तिलकावती । यमदण्डेन तिलकावत्याः पुत्राय राज्यं दातव्यमिति भणित्वा तस्मै दत्ता । राजगृहनगरं स प्रेषितः । तयोश्चिलातपुत्रनामा पुत्रो जातः । एकदा राज्ञा मम बहुपुत्राणां मध्ये राजा को भविष्यतीति संचिन्त्य नैमित्तिकः पृष्टः । कथितं तेन – सिंहासनस्थो भेरीं ताडयन् शुनां ददत्पायसं यो भोक्षते स राजा भविष्यति । भोजनदिने परीक्षा कृता । सिंहासनभेर्यादिहस्तः श्वभ्यो भरणादिकं ददता पायस भुक्तम् । एकदाग्निदाहे जाते हस्तिसिंहासनच्छत्रादिकं श्रेणिकेन निःसारितम्ः । अय योग्य इति ज्ञात्वा राज्ञा कुक्कुरविट्टलादिदोष दत्त्वा स निःसारितः । मध्याह्ने नन्दग्रामाग्रहारब्राह्मणैरपि स तथा निःसारितः । तत्र परिव्राज-कमठिकायां भोजनं कारितो विष्णुधर्मं प्रतिपन्नवान् । दक्षिणापथे चलित-स्यान्यत्कथान्तरम् ॥

द्रविडदेशे काञ्चीपुरे राजा वसुपालो, राज्ञी वसुमती, पुत्रो वसु-मित्रा, मन्त्री ब्राह्मणः सोमशर्मा, पत्नी सोमश्रीः, पुत्री अभयमतिः । अयं सोमशर्मा मन्त्री धर्मार्थी गङ्गादितीर्थमालोक्य व्याघुटितो ब्राह्मण-रूपधारिणः श्रेणिकस्य मार्गे मिलितः । भणितः स श्रेणिकेनमाम तव स्कन्धमहमारोहामि मम स्कन्धे त्वमारोह । शीघ्रं येन गम्यते । चिन्तितं तेन ग्रहिलो ऽयम् । बृहद्ग्रामः उद्वसः, लघुग्रामो महान् यत्र भुङ्क्ते । १. महिष्यः प्राणाः । २. वृक्षतले छत्रिका धृता पथि संवृता । ३. जले प्राण हिते पादयोः पथि हस्ते धृते । ४. पृष्टं बदर्याः कति कण्टाः । ५. नारी बद्धा मुक्ता वा कुट्यते । ६. मृतको मृतो जीवेन वा गच्छति । ७. शालि-क्षेत्रमिदं कुटुम्बिना भक्षितं भक्ष्यते भक्षितव्यं वा । ८. इति मार्गे चेष्टितं कुर्वन्तं बाहिरे श्रेणिकं धृत्वा काञ्चीपुरे निजगृहं प्रविष्टो मन्त्री । अभय-मत्या स पृष्टः–तात त्वमेकाकी मत आगतो ऽसि । कथितं तेन आगच्छता

पर पल्लीपति यमदण्ड, भार्या विद्युन्मती और पुत्री तिलकवती थी। यमदण्ड ने तिलकवती के पुत्र को राज्य देना चाहिए, ऐसा कहकर उसे तिलकवती दे दी। वह राजा राजगृह नगर भेज दिया गया। उन दोनों के चिलात नामक पुत्र हुआ। एक बार राजा ने मेरे बहुत से पुत्रों के मध्य कौन राजा होगा, ऐसा विचार कर नैमित्तिक से पूछा नैमित्तिक ने कहा—सिंहासन पर स्थित रहकर भेरी को बजाता हुआ, कुत्तों को खीर देता हुआ जो खायेगा, वह राजा होगा। भोजन के दिन परीक्षा की। सिंहासन भेरी आदि हस्तगत कर कुत्तों का भरण पोषण कराते हुए खीर खा ली। एक बार आग लग जाने पर हस्ति, सिंहासन तथा छत्रादिक श्रेणिक ने निकाल लिए। यह योग्य है, ऐसा जानकर राजा ने कुक्कुरविट्टाल( )
आदि देखकर श्रेणिक को निकाल दिया। मध्याह्न में नन्दग्राम के अग्रहार ब्राह्मणों ने भी उसे निकाल दिया। वहाँ पर परिव्राजकों के छोटे से मठ में भोजन कराए जाने पर उसने विष्णुधर्म स्वीकार कर लिया। दक्षिणपथ में चलते हुए उसकी दूसरी कथा है—

द्रविड देश मे काञ्चीपुर में राजा वसुपाल, रानी वसुमती, पुत्री वसुमित्रा, मन्त्री ब्राह्मण सोमशर्मा, पत्नी सोमश्री तथा पुत्री अभयमती थी। यह धर्म का अर्थी मन्त्री सोमशर्मा गंगा आदि तीर्थ के दर्शन कर लौटते समय ब्राह्मण रूप धारी श्रेणिक को मार्ग में मिल गया। श्रेणिक ने उससे कहा—माम! तुम्हारे कन्धे पर मैं चढ़ता हूँ, मेरे कन्धे पर चढ़ो, जिससे शीघ्र चला जाय। उस ब्राह्मण ने सोचा-यह पागल है।१ बड़ा गाँव (जहाँ भोजन न मिल सके) ऊजड़ है तथा छोटा गाँव महान् है, जहाँ भोजन हो सके। २—भैंस का बल, ३—वृक्ष के नीचे छतरी लगा लेना तथा रास्ते में बन्द करना ४—जल में दोनों पैरों में जूते पहिन लिए, रास्ते में हाथ में ले लिए ५—बेर के पेड़ में कितने काँटे हैं, यह पूछा ६—बँधी हुई स्त्री को मारा जा रहा है या खुली हुई को ७—मृतक मरा हुआ है या जीवित आ रहा है ८-यह धान का खेत कुटुम्बी लोग खा चुके हैं, या (उन्हें) खाना चाहिए। इस प्रकार मार्ग में चेष्टायें करते हुए श्रेणिक को बाहर ठहराकर मन्त्री ने अपने घर में प्रवेश किया। अभयमती ने उससे पूछा—

एको रूपवान् ग्रहिलो बटुर्मिलितो बाहिरे तिष्ठति । पृष्टं तया-कीदृशो ग्रहिलः । अस्मान्माम स्कन्धारोहणादिकमाकर्ण्य व्याख्यानं कृत्वा तया पुरुषहस्ते स्तोकतैलखली प्रेषिते । तैलखली समर्प्य भाजने याचिते । तेन कर्दममध्ये गर्तद्वये धृते द्वे । कर्दममध्ये नीतस्य पादप्रक्षालनार्थं भाजने स्तोकजलं दत्तम् । वंशकम्बया कर्दमापनयनेन वक्रप्रवालके दवरकप्रोतनेन तुष्टा । अभयमतिः परिणीता तेन अतिवल्लभा जाता । विलपन्त्यटव्यां जिनदत्तवसुमित्रश्रावकयोः पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य यः सोमशर्मा ब्राह्मणः संन्यासेन मृत्वा सौधर्मे देवो ऽभूत् स स्वर्गादेत्याभयमत्याभयकुमारनामा पुत्रो जातः । अथ वसुपालराजेन विजययात्रां गतेनैकस्तम्भ प्रासादमालोक्य काञ्च्यां सोमशर्मस्य तदर्थं लेखः प्रेषितः । स च तं कारयितुमजानन् व्याकुलो ऽभूत् । श्रेणिकेन स विशिष्टतरः कारितः । आगतेन राज्ञा तमालोक्य तुष्टेन वसुमित्रा निजपुत्री श्रेणिकाय दत्ता । अथ राजगृहपुरे प्रश्रेणिकश्चिलातपुत्रस्य राज्यं समर्प्य विनयपत्रिका प्रेषिता । सो ऽपि तामालोक्य राजगृहपुरे पाण्डुरकुटीमागच्छेति वसुमित्राभयमती भणित्वा आगत्य चिलातपुत्रं निर्धाट्य राजा जातः । एकदाभयकुमारेण पृष्टा माता-क्व मे पिता । कथितं तया मगधदेशे राजगृहपुरे पाण्डुरकुट्यां तिष्ठति । एतदाकर्ण्य विकल्प्य च सो ऽप्येकाकी तं नन्दग्रामं मयाहारमायातः । तत्र च श्रेणिकेन पूर्वनिःसरणदोषरुष्टेन नन्दग्रामं ग्रहीतुकामेन दोषं स्थापयितुमिच्छता राजादेशः प्रेषितो यथा- बहुविद्यापारगाः ब्राह्मणाः भो मष्ट-

पिताजी! आप अकेले गए और अकेले आए हैं। मन्त्री ने कहा—आते हुए एक रूपवान् पागल ब्राह्मण लड़का मिल गया था, वह बाहर ठहरा हुआ है। लड़की ने पूछा—कैसा पागल है? हे मामा! हमें कन्धे पर चढ़ा लीजिए इत्यादि सुनकर व्याख्यान कर अभयमती ने एक पुरुष के हाथ थोड़ा तेल और तैल की तलछट भेज दी। तेल और तेल की तलछट सौंपकर दोनों बर्तन माँगे। श्रेणिक ने कीचड़ के बीच दो गड्ढों में दोनों चीजें रक्खीं। कीचड़ के मध्य ले जाए हुए श्रेणिक को पैर धोने के लिए बर्तन में थोड़ा जल दिया। बाँस की सींक से कीचड़ हटाने तथा टेढ़े मूँगे में धागा पिरोने से अभयमती सन्तुष्ट हो गई। उस श्रेणिक के द्वारा अभयमती विवाही गई, वह उसकी अत्यन्त प्रिय हो गई। जंगल में विलाप करते हुए जिनदत्त और वसुमित्र श्रावक से धर्म सुनकर जो सोमशर्मा ब्राह्मण संन्यास से मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था, वह स्वर्ग से आकर अभयमती का अभयकुमार नामक पुत्र हुआ।

अनन्तर राजा वसुपाल ने जो कि विजययात्रा पर गया हुआ था, एक स्तम्भमय प्रासाद देखकर काञ्ची में सोमशर्मा को उसके लिए लेख भेजा। वह उसे बनवाना जानता नहीं था, अतः व्याकुल हो गया। श्रेणिक ने उसे और भी अधिक विशिष्ट बनवा दिया। राजा ने आकर, उसे देखकर, सन्तुष्ट होकर अपनी पुत्री वसुमित्रा श्रेणिक को दे दी। राजगृहनगर में प्रश्रेणिक चिलातपुत्र को राज्य देकर विरक्त हो प्रव्रजित हो गया। चिलातपुत्र को समस्त अन्यायों में रत देखकर प्रधानों ने श्रेणिका के पास विनयपत्रिका भिजवाई। वह भी उसे देखकर राजगृहनगर में सफेद रंग की सफेद कुटी में आ जाना, इस प्रकार वसुमित्रा तथा अभयमती से कहकर, आकर चिलातपुत्र को निकालकर राजा हो गया। एक बार अभयकुमार ने माता से पूछा—मेरा पिता कहाँ है? उसने कहा—मगधदेश में राजगृहनगर में सफेद कुटी में रह रहा है। यह सुनकर बिदाकर वह भी अकेला उस नन्दग्राम में आया। वहाँ पर श्रेणिक ने पहले निकालने के दोष से रुष्ट नन्दग्राम पर अधिकार करने की इच्छा से दोष लगाने की इच्छा से राजादेश भेजा कि हे बहुत विद्याओं में पारगामी ब्राह्मणो! सुस्वादु

जलं वटकूपं शीघ्रं मे प्रेषयत अन्यथा निग्रहं करोमि । तेन कारणेन व्याकुला ब्राह्मणा अभयकुमारेण कारणं पृष्टाः । तैर्यथार्थे कथिते वारिता स्तेन भोजनादिकं कुरुत (इति) । तद्वचने शिक्षां दत्त्वा द्वौ ब्राह्मणौ श्रेणिकपार्श्वे प्रेषितौ । ताभ्यां विज्ञप्त—देव स कूपो भणितो ऽस्माभिर्न चाग—च्छति । रुष्टो ग्रामबाहिरे स्थितः । तत्रापि भणितो नागच्छति । पुरुषस्य स्त्रीवशीकरणमतो देव निजपुरस्यामुदुम्बरकूपिकां प्रेषय तस्याः पृष्टलग्नो येनागच्छतीतीव तं मत्वा राजा मौनम् १ । तथा गजे पलसंख्यार्थं प्रेषिते जलेन वा हस्तिप्रमाणपाषाणपलानि २ । यथा स वटकूपः पूर्वदिशि स्थितः पश्चिमदिशि कर्तव्यः ग्रामः पूर्वदिशि कृतः ३ । मेषः प्रेषितो न दुर्बलो न बलवान् अतिचारयित्वा वृकसमीपे ध्रियते ४ । गर्गरीमध्यस्थं पाण्डुरकू—ष्माण्डं प्रेषयथ । तत्रैव संवर्ध्य प्रेषितम् ५ । समसारकाष्ठस्य जले अधो—मूलम् ६ । रजोदेवरिकायां प्रतिच्छन्दं याचितम् ७ । इत्यादिकृते स देशिक आगच्छतु न दिने न रात्रौ न भूमौ नाकाशे न मार्गे नामार्गे । सन्ध्यायां शकटैकभागेनागतः । भण्ड सिहासनस्थं त्यक्त्वा अङ्गरक्षमध्यस्थो राजा जनानन्द दृष्ट्वा ज्ञात्वा न तद्दृष्ट्वा श्रेणिकेन संतोषान्मम पुत्रो ऽयं लोकानां कथिते महोत्सवः कृतः अभयमतिवसुमित्रे आनयिते इदानीमन्य—त्कथान्तरम् ।

सिन्धुदेशे विशालीपुर्यां राजा कौशिकः, पुत्री यशस्वती, पुत्रश्चेट-कमहाराजः, सुभद्रा प्रियकारिणी सुप्रभावती मृगावती सुज्येष्ठा चेलिनी चन्दना एताः सप्त पुत्र्यः । तद्रूपालेखार्थं सुचित्रकारं गवेषयति चेटकः । काकसवर्धकिना यतः स्त्रीयन्त्रं कृतं तेन परीक्ष्यन्ते चित्रकाराः ।

जल से युक्त वट कूप को शीघ्र भेज दो, अन्यथा दण्ड दूँगा । उन ब्राह्मणों के द्वारा यथार्थ बात कहीं जाने पर अभयकुमार ने उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि कोअभावि करो । अभयकुमार के वचनों के अनुसार शिक्षा देकर दो ब्राह्मणों को श्रेणिक के पास भेजा । उन दोनों ने निवेदन किया—यह कुआ हम लोगों के कहने पर नहीं आता है, रुष्ट होकर वह गाँव के बाहर स्थित है । वहाँ पर भी कहे जाने पर नहीं आता है । पुरुष का वशीकरण स्त्री है, अतः महाराज! आप अपने नगर में स्थित उदुम्बरकूपिका को भेजिए, जिससे कि उसके पीछे लगकर आ जाय, यह बात जानकर राजा मौन हो गया —१— तथा हाथी के वजन की संख्या के लिए भेजने पर जल से हस्तिप्रमाण पाषाण के बराबर बजन बतला दिया । —२— वहकूप गाँव की पूर्वदिशा में स्थित है, (उसे) पश्चिम दिशा में कर देना ऐसा कहे जाने पर गाँव को पूर्वदिशा में कर दिया —३— मेढा (राजा ने) यह कहकर भेजा कि यह न दुर्बल हो, न बलवान्! अभयकुमार ने उसे अत्यन्त खिला पिलाकर भेड़िए के समीप रख दिया -४— गागर के मध्य में स्थित कुम्हडे को भेजो (ऐसा कहने पर) गागर में ही सफेद कुम्हड़ा बढ़ाकर भेज दिया—५— समान सार वाली लकड़ी का मूल जल में नीचे होनें से मालूम कर लिया—६— धूलि की रस्सी माँगे जाने पर उसी जैसी रस्सी माँगी —७— इत्यादि करने पर वह सिखलाने वाला न दिन में आए, न रात में आए, न भूमि पर आए, न आकाश में आए, न मार्ग में आए और न अमार्ग में (इस प्रकार राजा ने आदेश दे दिया (तब अभयकुमार) सन्ध्या के समय गाड़ी के एक भाग से आ गया । सिंहासन पर स्थित विदूषक को छोड़कर अङ्गरक्षकों के मध्य में स्थित राजा ने लोगों के आनन्द को देखकर, जानकर, उसे न देखकर श्रेणिक ने सन्तोष के साथ लोगों से कहा कि 'यह मेरा पुत्र है ।' अनन्तर राजा ने महोत्सव किया, अभयमति तथा वसुमित्रा को बुलाया । अब दूसरी कथा है—

सिन्धुदेश में विशाली नगरी में राजा कौशिक, पुत्री यशस्वती, पुत्र चेटक महाराज तथा सुभद्रा, प्रियकारिणी, सुप्रभावती, मृगावती, ज्येष्ठा, चेलिनी तथा चन्दना ये सात पुत्रियाँ थीं । उनके रूप को चित्रित करने के लिए राजा चेटक अच्छे चित्रकार को खोज रहे थे । काकवर्णक ने एक स्त्रीयन्त्र बनाया था, उससे चित्रकारों की परीक्षा

पद्मावत्या अनुविद्धरूपलब्धवरश्चित्रभूतिनामा चित्रकरो देशादागत्य अन्य चित्रकरगृहे प्रविष्टः काकसेन चेटकराजस्य दर्शितः । गौरवभोजनादिकं दत्तम् । रात्रौ राजकुले तां यन्त्रस्त्रियं सहसा भङ्क्त्वा भीतचित्तः साक्षा दिवात्मानमवलम्बिकादिकं कुड्ये प्रदर्श्यादृश्यो बभूव । तमतिशयमालोक्य राज्ञा तस्याभयदानं दत्तम् । चेटकसुभद्राप्रियकारिण्यादीनामनुविद्धरूपं लिखितम् । तेन नित्यं राजा विलोकते । चेलिन्या रूपं नागच्छति । तस्या गुह्यदेशे लिखिन्यामपि [?] बिन्दुपाते रूपानुविद्धतायां राजरोषं ज्ञात्वा चेलिनीरूपं तेनानीय राजगृहनगरे श्रेणिकराजस्य दर्शितम् । तस्य कामा सक्तिः । तदर्थमभयकुमारो बहुभाण्डं गृहीत्वा गन्धवादवणिक्सार्थं वाहो भूत्वा विशालीं गतः । राजानं दृष्ट्वा राजकुलसमीपे समर्घ्यं क्रियाणकं दत्त्वा कन्यायां चेटिकागमनसमये श्रेणिकरूपस्य पूजनं प्रशंसनं करोति । चेटिकाः कन्यानां कथयन्ति । ताश्च द्रष्टुं समायाताः । सुज्येष्ठाचेलिनीभ्यां रूपासक्ताभ्यां एकान्ते स भणितः– आवां गृहीत्वा गच्छ त्वम् । सुरङ्गाद्वारे निर्गमनकाले चेलिन्या सुज्येष्ठा अतीर्ष्ययाभर-णव्याजेव वञ्चिता । ततः प्रभाते चेटकराजस्य या भगिनी यशस्वती कन्तिका तत्पार्श्वे अर्जिका जाता । चेलिनी च तेनानीता श्रेणिकेन परि णीता । तस्याः पुत्रो वारिषेणः धारिण्यः पुत्र कूणिकः । अथ श्रेणिकचेलि-न्योर्नित्य विवादौ विष्णुधर्मो जिनधर्म एव । भणिता श्रेणिकेन–भर्तारं देवता नारीति लौकिकवचनात् तवाहमेव देवः, मम ये देवगुरवः तवापि देवगुरवः । एतदाकर्ण्य तया भणितम्– भगवतो भोजनं ददामि । निम–

होती थी। पद्मावती के छापे हुए श्रेष्ठ रूप को पाया हुआ चित्रभूति नामक चित्रकार देश से आकर दूसरे चित्रकर के घर में प्रविष्ट हुआ। कारूक ने उसे चेटकराज को दिखलाया (राजा ने उसे) गौरव और भोजनादिक दिया। रात्रि में राजभवन में उस यन्त्रस्थी को सहसा तोड़कर भयभीत चित्त हुआ वह अपने आपका सहारा साक्षात् दीवाल में प्रदर्शित कर अदृश्य हो गया। उस अतिशय को देखकर राजा ने उसे अभयदान दिया। उसने चेटक, सुभद्रा, प्रियकारिणी आदि का परिपूर्ण रूप चित्रित किया। उसे राजा नित्य देखता था, किन्तु उसकी दृष्टि में चेलिनी का रूप नहीं आता था। चित्रकार ने चेलिनी का नग्न चित्र खींचा। वह ऐसा था कि बिन्दु पड़ जाने के कारण उसके गुह्य अंग पर जो तिल था, वह भी प्रकट होता था। पूर्ण रूप चित्रित करत पर, राजा के रोष को जानकर उसने चेलिनी के रूप वाले चित्र को लाकर राजगृहनगर में श्रेणिक को दिखलाया। श्रेणिक को कामासक्ति हो गई। कार्य की सम्पन्नता हेतु अभयकुमार बहुत सा माल लेकर गन्धवाद नामक वणिकों का नायक (सार्थवाह) होकर विशाली गया। राजा के दर्शन कर राजभवन के समीप योग्य क्रय करने योग्य वस्तुओं को देकर कन्याओं की दासियों के आने पर श्रेणिक के रूप की प्रशसा करता था। दासियाँ कन्याओं से कहती थीं। वे (कन्यायें) उसे देखने के लिए आईं। सुज्येष्ठा और चेलिनी जो कि श्रेणिक के रूप पर आसक्त थीं, उन्होंने एकान्त में उस व्यापारी से कहा—हम दोनों को लेकर तुम चलो। सुरङ्ग के द्वार पर निकलते समय सुज्येष्ठा के प्रति अत्यन्त ईर्ष्यालु होने के कारण आभूषण के बहाने सुज्येष्ठा छली गई। तब प्रातःकाल वह चेटकराज की बहिन जो यशस्वती आर्यिका थी, उसके समीप आर्यिका हो गई। अभयकुमार चेलिनी को ले आया। श्रेणिक ने उसके साथ विवाह कर लिया। चेलिनी का पुत्र वारिषेण था और धारिणी का पुत्र कूणिक था।

श्रेणिक और चेलिनी में नित्य विवाद का कारण विष्णुधर्म और जिनधर्म था। श्रेणिक ने कहा—नारी का देवता पति होता है, इस लौकिक वचन के अनुसार तुम्हारा मैं ही देव हूँ, जो मेरे देव और गुरु हैं वे तुम्हारे भी देव और गुरु हैं। यह सुनकर चेलिनी ने कहा—

न्यानीय गौरवेण महामण्डपे धृताः । अस्माकं ध्यानस्थितानामात्मा विष्णु पदे तिष्ठतीत्युक्त्वा तेषां ध्यानस्थितानां तया स मण्डपो दाहितः । ते च नष्टाः । रुष्टेन राज्ञा सा भणिता । यदि भक्तिर्नास्ति तदा किं मारणं तेषां चिन्त्यते तस्य रोषोपशमनार्थं तया कथा कथिता । वत्सदेशे कौशाम्बीनगर्यां राजा प्रजापालो, राज्ञी यशस्विनी, श्रेष्ठी सागरदत्तो, वसुमती कलत्रम् । द्वितीयः श्रेष्ठी समुद्रदत्तः । प्रीतिवर्धनार्थं सागरदत्तेनोक्तम्–भो समुद्रदत्त, यदि तव पुत्री तदा यो मम पुत्रो भविष्यति तदा तस्य दातव्या । अथवा मे पुत्री तदा तव पुत्रस्य । एवं सागरदत्तवसुमत्योः पुत्रः सर्पो वसुमित्रनामा जातः । समुद्रदत्तासमुद्रदत्तयोः पुत्री नाग दत्ता । शकटके सति सर्पेण परिणीता नागदत्ता । भोगानुभवने शरीरविकारमालोक्य जने विरूपकं वदति सति जनन्या पृष्टा– पुत्रि कीदृशस्तव भर्ता । कथितं तया–दिवा सर्पो रात्रौ नवयौवनो रूपवान् पुरुषः । अनुभूय दिवा पुनः सर्पः पिट्टारके तिष्ठति । एतत्प्रच्छन्नया दृष्ट्वा मन्त्रयित्वा समुद्रदत्तया रात्रौ पिट्टारके दग्धे निराश्रयः स पुरुष एव स्थितः भवद्गुरूणामप्येव जीवो विष्णुपदे तिष्ठत्विति मया चिन्तितम् । इत्याकर्ण्य चित्तस्थकोपेन पापर्द्धिं च गतः श्रेणिक आतापनस्थं यशोधरमुनिमालोक्याम् पापर्द्धिविघ्नकारिणं मारयामीति संचिन्त्य ये पञ्चशतकुक्कुरा मुक्ता मुनेः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रणताः । बाणाश्च पुष्पमाला जाताः । तदा तेन सप्तमनरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्बद्धम् । कुक्कुरबाणाभ्यां तमतिशयमालोक्य पूर्णयोगं तं मुनिं प्रणम्य तत्त्वमाकर्ण्योपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा प्रथमनरके चतुरशीतिवर्षसहस्रमात्रमायुः कृतम् । त्रिगुप्तमुनीनां समीपे क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं वर्धमानतीर्थंकरसमीपे क्षायिकसम्यक्त्वमित्यग्रे ॥

[१०.३२] सा समत्था जिणभत्ती

(एया वि सा समत्था जिणभत्ती दुग्गइं णिवारेदुं ।
पुण्णाणि य पूरेदुं आसिद्धिपरंपरसुहाणं ॥ ७४६ ॥

भगवतों को भोजन देती है। निमन्त्रित कर लाकर गौरव पूर्वक महा-मण्डप में रखा। ध्यान में स्थित हम लोगों की आत्मा विष्णु के पद में ही ठहरती है' ऐसा कहने वाले उन ध्यानस्थितों का मण्डप चेलिनी ने जलवा दिया । वे भाग गए । रुष्ट होकर राजा ने चेलिनी से कहा—यदि भक्ति नहीं है तो उन लोगों के मारने के विषय में क्या सोचती हो ? राजा के रोष की शान्ति के लिए चेलना ने कथा कही—

वत्सदेश में कौशाम्बी नगरी में राजा प्रजापाल, रानी यशस्विनी, सेठ सागरदत्त तथा वसुमती स्त्री थी। दूसरा सेठ समुद्रदत्त था। प्रीति बढ़ाने के लिए सागरदत्त ने कहा— हे समुद्रदत्त यदि तुम्हारे पुत्री हो तो मेरे जो पुत्र हो, उसे तुम वह पुत्री दे देना । अथवा मेरी पुत्री होगी तो वह तुम्हारे पुत्र की होगी। इस प्रकार सागरदत्त और वसुमती का पुत्र वसुमित्र नामक सर्प हुआ। समुद्रदत्ता और समुद्रदत्त की पुत्री नागदत्ता हुई। झटपट में सर्प से नागदत्ता का विवाह हो गया। भोग के अनुभवन काल में शरीर का विकार देखकर लोग जब बुरा कहने लगे तो माता ने पूछा—पुत्री! तुम्हारा पति कैसा है? उसने कहा—दिन में सर्प रहता है और रात में नवयौवन वाला रूपवान पुरुष हो जाता है। भोगों का अनुभव कर दिन में पुनः सर्प पिटारे में ठहरता है। इसे गुप्त रूप से देखकर, सलाह कर समुद्रदत्ता ने रात में पिटारे को जला दिया, निराश्रय होकर वह पुरुष के रूप में ही ठहर गया। आपके गुरुओं का भी जीव विष्णुपद में ही ठहरे, ऐसा मैंने सोचा था। यह सुनकर श्रेणिक के मन में कोप हो गया। शिकार को गए हुए श्रेणिक ने आतापन योग में स्थित यशोधर मुनि को देखकर 'इस शिकार में विघ्न करने वाले को मारता हूँ, यह सोचकर पाँच सौ कुत्ते छोड़े । वे (कुत्ते) मुनि की प्रदक्षिणा कर प्रणत हो गए। (श्रेणिक के) बाण फूलों की माला हो गई । तब उसने सातवें नरक में तेतीस सागर की आयु बाँधी। कुत्ते और बाण के उस अतिशय को देखकर पूर्णयोगी उन मुनि को प्रणाम कर तत्त्व सुनकर उपशम सम्यक्त्व ग्रहण कर प्रथम नरक में चौरासी हजार वर्ष की आयु कर ली । उन्होंने त्रिगुप्त मुनि के समीप क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और वर्द्धमान तीर्थंकर के समीप क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया।

विशेष—श्रेणिक ने ब्राह्मण के सामने जो प्रश्न पूछे थे या जो कार्य किए थे, उनका विशेष वर्णन इस प्रकार है ।

१. श्रेणिक ने कुछ दूर चलकर जल भरा हुआ देखकर जूते पहन लिए और आगे एक वृक्ष के नीचे पहुँचने पर छाता लगा लिया ।

[illegible]-पानी में काँटे वगैरह दिखाई नहीं देते हैं, वे पैरों में चुभ न जावें, इस कारण उसने जूते पहने थे। काकादि पक्षियों की बीट पड़ने के भय से वृक्ष के नीचे छाता लगाया था ।

२. श्रेणिक ने नरनारियों से भरे हुए गाँव को देखकर पूछा—माम! यह गाँव बसा हुआ है या ऊजड़?

[illegible] किसी ग्राम में भोजन प्राप्त हो तो बसा हुआ नहीं तो ऊजड़ समझना चाहिए।

३. एक पेड़ को देखकर श्रेणिक ने पूछा—इसमें कितने काँटे हैं?

[illegible] बेरी के दो काँटे होते है, अर्थात् बेरी के काँटे दो प्रकार के एकत्र रहते हैं।

४. एक पुरुष अपनी स्त्री को मार रहा था, उसे देखकर श्रेणिक ने पूछा—यह बँधी हुई स्त्री को मारता है अथवा खुली हुई को ?

[illegible] स्त्री यदि रखी हुई हो तो उसे छूटी और यदि विवाहिता हो तो उसे बँधी समझना चाहिए ।

५. एक मुर्दे को जाते हुए देखकर पूछा—यह अभी मरा है या पहले ही मर चुका है ?

[illegible] मरे हुए पुरुष को यदि वह गुणवान् था तो उसी समय मरा और यदि मूर्ख था तो पहले ही मर चुका समझना चाहिए ।

६. पके हुए धान के खेत को देखकर पूछा कि खेत का मालिक इसे भोग चुका है अथवा आगे भोगेगा ?

[illegible] धान का खेत यदि ऋण लेकर तैयार किया गया था तो उसका फल पहले ही भोग चुका, ऐसा समझना चाहिए, अन्यथा आगे भोगेगा ।

अभयमती ने कुमार श्रेणिक को एक उलझन में डालना चाहा था। वह उलझन यह थी कि, इस धागे को मूँगे में पिरो दीजिए उस मूँगे में टेढ़े मेढ़े अनेक छेद थे और उनका एक दूसरे छेद से

ऐसा सम्बन्ध था कि उसमें धागा पिरो देना बड़ा कठिन काम था। परन्तु कुमार ने सहज ही उसे पूरा कर लिया। उन्होंने धागे के सिरे पर थोड़ा सा गुड़ लगाकर और उस सिरे को किसी छेद में थोड़ा सा पिरोकर जहां बहुत सी चींटियाँ थीं, ऐसे स्थान में जाकर रख लिया। गुड़ के लोभ में एक चींटी ने उस सिरे को खींचकर दूसरी ओर से निकाल दिया।

नन्दग्राम के लोगों के प्रति राजाज्ञा का प्रतीकार अभयकुमार ने इस प्रकार कराया-

राजा श्रेणिक ने हाथी का वजन कितना है? यह ब्राह्मणों से पूछवाया। अभयकुमार की सम्मति से ब्राह्मणों ने हाथी का वजन इस प्रकार निर्णय करके राजा से निवेदन किया कि पहले तालाब में एक नौका पर हाथी को बैठाकर निकाला, उस समय हाथी के वजन से वह जितनी पानी में डूबी, उस उस पर उसका चिह्न कर दिया और फिर हाथी के बदले में पत्थर भर कर उस चिह्न तथा नौका जितने पत्थरों के भरने से डूबी, उन पत्थरों को तौल लिया। जो पत्थरों का वजन था वही वजन हाथी का निकल आया।

राजा श्रेणिक ने एक साफ किया हुआ कत्थे की लकड़ी का हाथ भर का टुकड़ा ब्राह्मणों के पास भिजवाया और आज्ञा दी कि इसकी जड़ और शिखा (चोटी) बतलाओ? तब ब्राह्मणों ने उस टुकड़े को पानी में डालकर जो सिरा पानी के ऊपर रहा, उसे शिखा और जो नीचे रहा, उसे जड़ निश्चय करके राजा को बतला दिया।

पुण्यास्रव कथा कोश

पुण्यास्रव कथा कोश के अनुसार श्रेणिक को राज्याधिकारी जानकर उसके पिता ने उसके सिर पर दोष लगाया कि तुम गुप्त रूप से पाँच हजार योद्धा रखते हो। ऐसा दोष लगाकर राजा ने उसे अपने देश से निकल जाने की आज्ञा दे दी।

[९०-३२] समर्था जिनभक्ति

गाथार्थ—एक जिनभक्ति दुर्गति के निवारण करने में समर्थ है तथा सिद्धिपर्यन्त पुण्य प्रकृति और शुभभावों की पूर्ति में समर्थ है। [७४६]

अत्र करकण्डुमहाराजस्य कथा—

गोपो विवेकविकलो मलिनो ऽशुचिश्च
राजा बभूव सगुणः करकण्डुनामा ।
इष्ट्वा जिनं भवहरं स सरोजकेन
नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥

अस्य वृत्तस्य कथा। तद्यथा—श्रेणिकस्य गौतमस्वामिना यथा कथिता चार्यपरम्परयागता वा सक्षेपेण कथ्यते ! अत्रैवार्यखण्डे कुन्तलविषये तेरपुरे राजानौ नीलमहानीलौ जातौ । श्रेष्ठी वसुमित्रो, भार्या वसुमती, तद्गोपालो धनदत्तः । तेनैकदाटव्यां भ्रमता सरसि सहस्रदलकमल दृष्ट गृहीतं च, तदा नागकन्या प्रगटीभूय तं वदति— सर्वाधिकस्येदं प्रयच्छेति तदनु सकमलेन स्वगृहमागत्य श्रेष्ठिनस्तद्वृत्तान्तं निरूपितवान् । तेन राज्ञो भाषितम् । राज्ञा गोपालेन श्रेष्ठिना च सहस्रकूटजिनालयं गत्वा जिनमभिवन्द्य सुगुप्तमुनिं च । ततो राज्ञा पृष्टो मुनिः । कः सर्वोत्कृष्टः इति । तेन जिनो निरूपितः । श्रुत्वा गोपालो जिनाग्रे स्थित्वा हे सर्वोत्कृष्ट, कमलं गृहाणेति देवस्योपरि निक्षिप्य गतः ॥ अत्रापरवृत्तान्तः । तथा हि-श्रावस्तिपुर्यां श्रेष्ठी नागदत्तो, भार्या नागदत्ता । द्विजसोमशर्मणो ऽनुरक्तां तां ज्ञात्वा श्रेष्ठी दीक्षितो दिवं गतः । तस्मादागत्याङ्गदेशचम्पायां राजा वसुपालो, देवी वसुमती, तयोः पुत्रो दन्तिवाहननामा जातः । एवं स वसुपालो यावत्सुखेनास्ते तावत्कलिङ्गदेशे सोमशर्मा द्विजो मृत्वा नर्मदातिलकनामा हस्ती जातो धृत्वा वसुपालाय प्रेषितः । स तत्र तिष्ठति सा नागदत्ता मृत्वा च तामलिप्तनगर्यां वणिग्वसुदत्तस्य भार्या नागदत्ता जाता । सा द्वे सुते लेभे धनवतीं धनश्रियं च । धनवती नागानन्दपुरे वैश्य धनदत्तमित्रयोः पुत्रेण धनपालेन परिणीता । धनश्रीर्वत्सदेशे कौशाम्बीपुरे वसुपालवसुमत्योः श्रेष्ठीवसुमित्रेण परिणीता । तत्संसर्गेण जैनी बभूव ।

करकण्डु महाराज की कथा—विवेक से रहित, मलिन और अपवित्र शोभ संसार का हरण करने वाले जिनेन्द्र भगवान् की कमल से पूजा करने के कारण गुणों से युक्त करकण्डु नामक राजा हुआ अतः नित्य रूप से विभु जिनेन्द्र भगवान् की मैं अर्चना करता हूँ ।

इसके चरित्र की कथा—इस प्रकार है—श्रेणिक से गौतम स्वामी ने जैसी कही थी, आचार्य परम्परा से आगत वह संक्षेप से कही जाती है । इसी आर्यखण्ड में कुन्तल देश में तेरपुर में नील तथा महानील दो राजा हुए । सेठ वसुमित्र, भार्या वसुमती तथा उसका गोपाल धनदत्त हुआ । एक बार उसने जंगल में घूमते हुए तालाब में हजार पंखुड़ियों वाला कमल देखा और उसे ले लिया, तब नागकन्या प्रकट होकर उससे कहने लगी—जो सर्वाधिक हो, उसे यह दो । उसके बाद उसने कमल सहित घर आकर सेठ को वह वृत्तान्त कहा । सेठ ने राजा से कहा । राजा गोपाल और सेठ के साथ सहस्रकूट जिनालय में गया और वहाँ पर जिन तथा सुगुप्त मुनि की वन्दना की । तब राजा ने मुनि से पूछा—सर्वोत्कृष्ट कौन है ? मुनि ने जिन को सर्वोत्कृष्ट बतलाया । सुनकर गोपाल ने जिनेन्द्र भगवान् के आगे खड़े होकर (कहा)—हे सर्वोत्कृष्ट, कमल ग्रहण करो, इस प्रकार वह देव के ऊपर कमल निक्षेप कर चला गया । यहाँ पर दूसरा वृत्तान्त है—

श्रावस्तीपुरी में श्रेष्ठी नागदत्त तथा भार्या नागदत्ता थी । उसे ब्राह्मण सोमशर्मा पर अनुरक्त जानकर दीक्षित हो वह स्वर्ग चला गया । वहाँ से आकर अङ्गदेश की चम्पा नगरी में राजा वसुपाल तथा देवी वसुमती के दन्तिवाहन नामक पुत्र हुआ । इस प्रकार वह वसुपाल जब सुख से सो रहा था तो कलिङ्ग देश में सोमशर्मा ब्राह्मण मरकर नर्मदातिलक नामक हाथी हुआ । उसे पकड़कर वसुपाल के लिए भेज दिया गया । वह वहाँ पर बैठने लगा । वह नागदत्ता मरकर ताम्रलिप्त नगरी में वणिक् वसुदत्त की भार्या नागदत्ता हुई । उसे धनवती और धनश्री नामक दो पुत्री प्राप्त हुईं । धनवती नागानन्दपुर में वैश्य धनदत्त और धनमित्रा के पुत्र धनपाल के द्वारा विवाही गई । धनश्री वत्सदेश में कौशाम्बीपुर में वसुपाल और वसुमती के पुत्र सेठ वसुमित्र के साथ विवाही गई । वह उसके संसर्ग से जैनी हो गई । नागदत्ता

नागदत्ता पुत्रीमोहेन धनश्रीसमीपं गता। तया मुनिसमीपं नीता। अणु-व्रतानि गृहीतानि। ततो बृहत्पुत्री समीपं गता तथा बौद्धभक्ता कृता। लघ्व्या वारत्रयमणुव्रतानि ग्राहिता। धनवत्या नाशितानि। चतुर्थे वारे दृढा बभूव। कालान्तरे मृत्वा तत्कौशाम्बीवसुपालवसुमत्योः पुत्री जाता। कुदिने जातेति मञ्जूषायां स्वनामाङ्कितमुद्रिकादिभिर्निक्षिप्य यमुनायां प्रवाहिता। गङ्गां मिलित्वा पद्मद्रहे पतिता। कुसुमपुरे कुसुमदत्तमाला-कारेण दृष्ट्वा स्वगृहमानीय स्ववनिताकुसुममालायाः समर्पिता। तया च पद्मद्रहे लब्धेति पद्मावतीसंज्ञया वर्धिता। युवतिर्जाता। केनचिद्दन्तिवाह-नस्य तत्स्वरूपं कथितम्। तेन तत्र गत्वा तद्रूपं दृष्ट्वा मालाकारः पृष्टः सत्यं कथय कस्येयं पुत्रीति। तेन तदग्रे निक्षिप्ता मञ्जूषा। तत्रस्थित नामाङ्कितमुद्रादिकं वीक्ष्य तज्जातिं ज्ञात्वा परिणीता। स्वपुरमानीता वल्लभा जाता। कियति काले गते तत्पिता स्वशिरसि पलितमालोक्य तस्मै राज्यं दत्त्वा तपसा दिवं गतः। पद्मावती चतुर्थस्नानानन्तरं स्ववल्ल-भेन सुप्ता स्वप्ने सिंहगजादित्यानद्राक्षीत्। राज्ञः स्वप्ने निरूपिते तेनोक्तम् सिंहादर्शनात्प्रतापी गजदर्शनात् क्षत्रियमुख्यो रविदर्शनात्प्रजाम्भोजसुखकरः पुत्रो भविष्यतीति सतुष्टा सुखेन स्थिता। इतस्तेरपुरे स गोपालः सेवाल-द्रहे तरीतुं प्रविष्टः सेवालेन वेष्टितो मृत्वा पद्मावतीगर्भे स्थितः। तन्मृतिं परिज्ञाय सत्कार्यं श्रेष्ठी सुगुप्तमुनिनिकटे तपसा दिवं गतः। इतः पद्मा-वत्या दोहलको जातः। कथम्। मेघाडम्बरे चपलाकुले वृष्टौ सत्यां स्वयं मङ्कुशं गृहीत्वा पुरुषवेषेण द्विपं चटित्वा पृष्ठे राजानं कृत्वा पत्तनाद्बहिर्भ्र-माव इति। तत्स्वरूपे राज्ञः कथिते तेन स्वमित्रवायुवेगखेचरेण मेघाडम्बरा-रादिकं कारयित्वा नर्मदातिलकं द्विपमलंकृत्याराज्ञी स्वयं च समारुह्य

पुत्री के मोह से धनश्री के समीप गई । धनश्री उसे मुनि के समीप ले गई। उसने अणुव्रत ले लिए। अनन्तर वह बड़ी पुत्री के समीप गई, उसने उसे बौद्धधर्म पर आसक्त कर लिया । छोटी ने तीन बार अणुव्रत ग्रहण कराये । धनवती ने विनष्ट करा दिए। चौथी बार वह अणुव्रत में दृढ़ हुई। कालान्तर में वह वसुपाल और वसुमती की पुत्री हुई। चूँकि वह बुरे दिन में हुई थी, अतः सन्दूक में अपने नाम से अङ्कित अँगूठी आदि रखकर यमुना में प्रवाहित कर दी गई। गङ्गा में मिलकर वह पद्मसरोवर में गिर गई। कुसुमपुर में कुसुमदत्त नाम के माली ने देखकर उसे अपने घर लाकर अपनी स्त्री कुसुममाला को सौंप दी । वह चूँकि पद्म सरोवर में प्राप्त हुई थी अतः उसका पद्मावती नाम रखकर बढ़ाया। वह युवती हो गई। किसी ने दन्तिवाहन से उसका स्वरूप कहा। उसने वहाँ जाकर उसका रूप देखकर माली से पूछा—सत्य कहो, यह किसकी पुत्र है? माली ने उसके सामने पेटी रख दी। उसमें स्थित नामाङ्कित मुद्रा आदि को देखकर उसकी जाति जानकर उसके साथ विवाह कर लिया। तथा उसे अपने नगर ले आया। वह उसकी वल्लभा हो गई। कुछ समय बीत जाने पर उस पिता अपने सिर में सफेद बाल देखकर उसे राज्य देकर तपस्यापूर्वक स्वर्ग चला गया। पद्मावती ने चतुर्थस्नान के अनन्तर अपने वल्लभ के साथ सोकर स्वप्न में सिंह, हाथी तथा आदित्य को देखा। राजा से स्वप्नों का वर्णन करने पर उसने कहा—सिंहदर्शन से प्रतापी, गज के देखने से क्षत्रियों में मुख्य, सूर्य के देखने से प्रजारूपी कमलों को सुखकर पुत्र होगा, इस प्रकार सन्तुष्ट हुआकर वह सुखपूर्वक रही। इधर तेरपुर में वह ग्वाल सेवाल से युक्त सरोवर में तैरने के लिए प्रविष्ट हुआ। सेवाल से वेष्टित हो मरकर वह पद्मावती के गर्भ में ठहर गया। उसका मरण जानकर संस्कार कर सेठ सुगुप्त मुनि के निकट तप धारण कर स्वर्ग गया। इधर पद्मावती को दोहला हुआ। कैसा? मेघ छा जाने पर बिजलियों से व्याप्त वर्षा होने पर स्वयं अङ्कुश लेकर पुरुष वेष में हाथी पर चढ़कर पीछे राजा को कर नगर के बाहर दोनों घूमें। उसका स्वरूप राजा के कहे जाने पर उसने अपने मित्र वासुदेव नामक विद्याधर से मेघों का

परिजनेन पुरान्निर्गत: । स च पत्राङ्कुशमुल्लङ्घ्य पवनवेगेन गन्तुं लग्न: सर्वो ऽपि जन: स्थित: । महाटव्यां वृक्षशाखामादाय राजा स्थित: । स्वपुर मागत्य हा पद्मावति तव किमभूदिति महाशोकं कृतवान् । विबुधै: संबोधित: । इत: स हस्ती नानाजनपदानुल्लङ्घ्य दक्षिणं गत्वा श्रान्तो महासरसि प्रविष्ट: । जलदेवतया समुत्तार्य तटे उपवेशिता सा । अत्रावसरे तत्रागतेन भटनाममालाकारेण रुदन्ती संबोधिता । हे भगिनि एहि मद्गृहमित्युक्ते तयोक्तम्—कस्त्वम् । तेनोक्तम्—मालिको ऽहमिति । ततो हस्तिनागपुरे स्वगृहे मद्भगिनीयमिति स्थापिता । तस्मिन् क्वापि गते तद्दयितया मारिदत्तया निर्घाटिता पितृवने पुत्रं प्रसूता । तदा मातङ्गेन तस्या प्रणम्योक्तम्— मत्स्वामिनी त्वमिति । तयोक्तम् — कस्त्वम् । स आह— अत्रैव विजयार्धे दक्षिणश्रेण्यां विद्युत्प्रभपुरेशविद्युत्प्रभविद्युल्लेखयो: सुतो ऽहं-बालदेव: । स्ववनिताकनकमालया दक्षिणक्रीडार्थं गच्छतो मम रामगिरौ वीरभट्टारकस्योपरि न गत विमानम् । क्रुद्धेन मया तस्योपसर्ग: कृत: । पद्मावत्या तं निवार्य मम विद्याच्छेद: कृत: । तदनु मया सा प्रणम्योपशान्तिं नीता । ततो हे स्वामिनि, मम विद्याप्रसादं कुर्वित्युक्ते तयोक्तम्-हस्तिनागपुरे पितृवने यद्रक्षसि बाल तद्राज्ये तव विद्या: सेत्स्यन्ति याहीत्युक्ते सो ऽहं मातङ्गवेषणेदं रक्षन् स्थित इति । तदनु संतुष्टया तस्य बाल: समर्पित: । त्वं वर्धयैनमिति । ततस्तेन काञ्चनमालाया: समर्पित: । स च करयो: कण्डूयुक्त इति करकण्डूनामा पञ्चत्विं लब्ध्वा । सा पद्मावती गान्धारी या ब्रह्मचारिणी तामाश्रिता । तया सह गत्वा समाधिगुप्तमुनिं

स्नान आदि कराकर नर्मदातिलक नामक हाथी पर अलंकृत रानी को चढ़ाकर तथा स्वयं चढ़कर परिजन के साथ नगर से निकल गया। वह हाथी अंकुश का उल्लंघन कर पवनवेग से जाने लगा। सभी लोग ठहर गए। महाजंगल में वृक्ष की शाखा पकड़कर राजा ठहर गया। अपने पुर में आकर हा पद्मावती! तुम्हारा क्या हुआ, इस प्रकार उसने महाशोक किया। विद्वानों ने उसे समझाया। इधर वह हाथी नाना जनपदों का उल्लंघन कर दक्षिण की ओर जाकर थककर महातालाब में प्रविष्ट हो गया। जलदेवी ने उसे (रानी को) उतारकर तट पर बैठा दिया। इसी बीच वहाँ पर आए हुए भट नामक माली ने रोती हुई उसे समझाया। हे बहिन मेरे घर आओ इस प्रकार कहने पर उसने कहा—तुम कौन हो? उसने कहा—मैं माली हूँ। तब हस्तिनाग-पुर में अपने घर में 'यह मेरी बहिन है' ऐसा कहकर ठहरा दिया। वह माली जब कहीं गया था तो उसकी स्त्री मारिदत्ता ने उसे निकाल दिया। रानी ने श्मसान में पुत्र प्रसव किया। तब एक चाण्डाल ने उसे प्रणाम कर कहा—तुम मेरी स्वामिनी हो। पद्मावती ने कहा—तुम कौन हो? उसने कहा—इसी विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में विद्युत्प्रभ नगर के स्वामी विद्युत्प्रभ और उनकी पत्नी विद्यु-ल्लेखा का मैं पुत्र बालदेव हूँ। अपनी स्त्री कनकमाला के साथ क्रीडा के लिए दक्षिण की ओर जाते हुए मेरा विमान रामगिरि पर्वत पर वीरभट्टारक के ऊपर नहीं गया। क्रुद्ध होकर मैंने उनके ऊपर उपसर्ग किया। पद्मावती ने उसका निवारण कर मेरी विद्या नष्ट कर दी। अनन्तर मैंने उसे प्रणाम कर शान्त किया। अनन्तर हे स्वामिनि! मेरे ऊपर विद्या की कृपा करो। ऐसा कहने पर उसने कहा—हस्ति-नागपुर के श्मसान में जिस बालक की रक्षा करोगे, उसके राज्य में तुम्हारी विद्यायें सिद्ध हो जावेंगी, जाओ, ऐसा कहे जाने पर वह मैं चाण्डाल के वेष में यह रक्षा करता हुआ स्थित हूँ। अनन्तर सन्तुष्ट होकर (उसने) उसे बालक समर्पित कर दिया। (और कहा)—तुम इसे बढ़ाओ,। तब उसने (उस बालक को) काञ्चनमाला को सौंप दिया। काञ्चनमाला उसके दोनों हाथों में खुजली होने के कारण करकण्डु नाम रखकर उसका पालन करने लगी। वह पद्मावती कन्यारी

दीक्षां याचितवती । तेनाभाणि— न दीक्षाकालः प्रवर्तते । पूर्वं त्वया यद्व्रतं खण्डितं तत्फलेन त्रिद्धुःसमासीरनुपदये पुत्रराज्यं वीक्ष्य तेन सह तपो भविष्यतीत्युक्ते सतुष्टा पुत्रं विलोक्य ब्रह्मचारिणीनिकटे स्थिता । स बालस्तेन सर्वशास्त्रकुशलः कृतः । तौ खेचरकरकण्डू पितृवने यावत्तिष्ठतस्तावज्जयभद्रवीरभद्राभिख्यौ समागतौ । तत्र नरकपालमुखे लोचनयोर्मध्ये वेणुत्रयमुत्पन्नमालोक्य केनचिद्व्रतिनोक्तम् आचार्यं प्रति— हे नाथ किमिदं कौतुकम् । आचार्यो ऽवदत् । यो ऽत्र राजा भविष्यति तस्याङ्कुशच्छत्रदण्डाः स्युरिति । श्रुत्वा केनचिद्विप्रेणोन्मूलितास्तस्मात्करकण्डुना गृहीताः । कियद्दिनेषु तत्र बलवाहनो राजा ऽपुत्रको मृतः । परिवारेण विधिना हस्ती राज्ञो ऽन्वेषणार्थं प्रेषितः । तेन च करकण्डुरभिषिच्य स्वशिरसि व्यवस्थापितः ततः परिजनेन राजा कृतो बालदेवस्य विद्यासिद्धिरभूत्स तं नत्वा तस्य तन्मातरं समर्प्य विजयार्धं गतः । करकण्डुः प्रतिकूलानुन्मूल्य राज्यं कुर्वन् स्थितः । तत्प्रतापं श्रुत्वा दन्तिवाहनेन तदन्तिकं दूतः प्रेषितः । स गत्वा तं विज्ञप्तवान्—त्वया मत्स्वामिनो दन्तिवाहनस्य भृत्यभावेन राज्यं कर्तव्यमिति । कुपित्वा करकण्डुनोक्तम्— रणे यद्भवति तद्भवतु याहीति विसर्जितः । स स्वयं प्रयाणं दत्त्वा चम्पाबाह्ये स्थितः । दन्तिवाहनो ऽप्यतिकौतुकेन सर्वबलान्वितो निर्गतः । उभयबले सन्नद्धे व्यूहप्रतिव्यूहक्रमेण स्थिते तदवसरे पद्मावती गत्वा स्वभर्तुः स्वरूपं निरूपितवती । ततो गजादुत्तीर्य संमुखमागतः पिता पुत्रो ऽपि । उभयोर्दर्शनं नमस्काराशीर्वाददानं च जातम् । मातापितृभ्यां जगदाश्चर्यविभूत्या पुरं प्रविष्टः । पित्राष्टसहस्रकन्याभिः विवाहं स्थापितः । तस्मै राज्यं समर्प्य पद्मावत्या

नामक ब्रह्मचारिणी के आश्रम में रहने लगी। उसके साथ जाकर उसने समाधिगुप्तमुनि से दीक्षा माँगी। उस मुनि ने कहा—दीक्षा काल नहीं है। पहले तीन बार जो व्रत खण्डित किया, उसके फल से तीन दु:ख थे, उनकी शान्ति हो जाने पर पुत्र का राज्य देखकर उसके साथ तुम्हारा तप होगा, ऐसा कहे जाने पर सन्तुष्ट हुई वह पुत्र को देखकर ब्रह्मचारिणी के निकट ठहर गई। उस बालक को उस विद्याधर ने समस्त कलाओं में कुशल किया। वह खेचर और करकण्डु दोनों श्मसान में जब ठहरे थे तभी जयभद्र और वीरभद्र नामक दो आचार्य आए। वहाँ पर मनुष्य के कपाल के मुख पर और दोनों आँखों में तीन बाँस उत्पन्न देखकर किसी यति ने आचार्य से कहा—हे नाथ! यह कौतुक क्या है ? आचार्य ने कहा—जो यहाँ राजा होगा, उसके अङ्कुश और छत्र के ये दण्ड होंगे। सुनकर किसी ब्राह्मण ने उन्हें उखाड़ लिया, उस ब्राह्मण से करकण्डु ने ले लिए।

कुछ दिनों में वहाँ पर बलवाहन नामक राजा बिना पुत्र के ही मर गया। परिवार ने विधिपूर्वक राजा का अन्वेषण करने के लिए हाथी भेज दिया। उसने करकण्डु का अभिषेक कर अपने सिर पर उसे बैठा लिया। अनन्तर परिजनों ने उसे राजा बना दिया। बालदेव की विद्या सिद्ध हो गई। उसे नमस्कार कर, और उसकी माता को सौंपकर वह विजयार्द्ध चला गया। करकण्डु प्रतिशूलों का उन्मूलनकर राज्य करता हुआ ठहरा।

उसके प्रताप को सुनकर दन्तिवाहन ने उसके समीप दूत भेजा। उस दूत ने जाकर करकण्डु से निवेदन किया—तुम मेरे स्वामी दन्तिवाहन का भृत्यभाव स्वीकार कर राज्य करो। कुपित हुए करकण्डु ने कहा—रण में जो हो सो, हो इस प्रकार वापिस भेज दिया। वह स्वयं प्रयाणकर चम्पा के बाहर ठहर गया। दन्तिवाहन भी समस्त सेना से युक्त हो अत्यन्त कौतुक के साथ निकला। दोनों की सेनायें व्यूह प्रतिव्यूह के क्रम से ठहर जाने पर उसी अवसर पर पद्मावती ने जाकर स्वामी का स्वरूप देखा। तब पिता और पुत्री भी हाथी से उतरकर सामने आए। दोनों का दर्शन और नमस्कार तथा आशी-र्वाद दान हुआ। माता और पिता के साथ संसार को आश्चर्यजनक विभूति से नगर में प्रविष्ट हुए। पिता ने आठ हजार कन्याओं के

भोगाननुभवन् स्थितो दन्तिवाहनः । राज्यं कुर्वतस्तस्य मन्त्रिभिरुक्तं देव त्वया चेरमपाण्ड्यचोलाः साधनीया इति । ततस्तेषामुपरि स्थित्वा तदन्तिकं दूतं प्रेषितवान् । तेन गत्वागतेन तदौद्धत्ये विज्ञप्ते रोषात्तत्र गत्वा युद्धावनौ स्थितः । ते अपि मिलित्वागत्य महायुद्धं चक्रुः । दिनावसाने उभय बलं स्वस्थाने स्थितम् । द्वितीयदिने ऽतिरौद्रे संग्रामे जाते स्वबलभङ्गं वीक्ष्य कोपेन करकण्डुर्महायुद्धं कृत्वा त्रीनपि बबन्ध । तन्मुकुटे पदं न्यसन् तत्र जिनबिम्बानि विलोक्य 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' इति भणित्वा यूयं जैना इत्युक्ते तैरोमिति भणिते हा हा निकृष्टो ऽहं जैनानामुपसर्गं कृतवानिति पश्चात्तापं कृत्वा क्षमां कारितः । स्वदेशं गच्छंस्तेरसमीपे सैन्यं विमुच्य स्थितः । तत्र दौवारिकेरन्तःप्रवेशिताभ्यां धाराशिवभिल्लाभ्यां विज्ञप्तो राजा—देवास्माद्दक्षिणस्यां दिशि गव्यूत्यन्तरे पर्वतस्योपरि धाराशिवं नाम पुरं तिष्ठति । सहस्रस्तम्भं जिनलयणं च तस्योपरि पर्वतमस्तके वल्मीकम् । तद्धेतोः हस्ती पुष्करेण जलं कमलं च गृहीत्वागत्य त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य जलेन सीत्कारबिन्दुभिः पूजयित्वा प्रणमति । ताभ्यां तुष्टिं दत्त्वा तत्र गत्वा जिनं समर्च्य वल्मीकं पूजयन्तं हस्तिनं वीक्ष्य तत्खानितम् तत्स्थितमञ्जूषामुद्घाट्य रत्नमयीं पार्श्वनाथप्रतिमां वीक्ष्य हृष्टः । तल्लयणमगालदेवसंज्ञया स्थापितवांश्च । मूलप्रतिमाग्रे ग्रन्थिं विलोक्य विरूपका दृश्यते इति शिलाकर्मिणं बभाणेमां स्फोटयेति । तेनोक्तम् । जलसिरेयं जलपूरो निःसरिष्यतीति । तथापि स्फोटिता । तद्गुहा निर्गतं जलम् राजादीनां निर्गमने संदेहो ऽभूत् । ततो राजा दर्भशय्यायां स्थितिनैवक्ष्ममासेन

साथ विवाह करा दिया । उसे राज्य देकर दन्तिवाहन पद्मावती के
भोगों का अनुभव करते हुए रहने लगे । राज्य करते हुए उसके मन्त्री
ने कहा—महाराज! तुम्हें चेरम, पाण्ड्य और चोल देश के राजा
अपने वश में करना है । अनन्तर उनके ऊपर चढ़ाई कर उनके पास
दूत भेजा । दूत ने जाकर, वापिस आकर जब उनकी उद्दण्डता के
विषय में निवेदन किया तो रोष से वहाँ जाकर वे युद्धभूमि में स्थित
हो गए । उन्होंने भी मिलकर आकर महायुद्ध किया । दिन समाप्त
होने पर दोनों की सेनायें अपने स्थान पर ठहरीं । दूसरे दिन अत्यन्त
रौद्र संग्राम होने पर अपनी सेना का विनाश देखकर कोप से करकण्डु
ने महायुद्ध कर तीनों को बाँध लिया । उनके मुकुट पर पैर रखते
हुए वहाँ जिनबिम्ब देखकर उनसे, मेरा दुष्कृत मिथ्या हो, यह कह-
कर आप सब जैन हैं, ऐसा कहने पर उनके द्वारा हाँ, ऐसा कहे जाने
पर हा! हा! मैं निकृष्ट हूँ, जो कि जैनियों पर उपसर्ग किया, इस
प्रकार पश्चाताप कर क्षमा कराई । स्वदेश को जाते हुए वे तेरपुर के
समीप सेना छोड़कर ठहर गए । वहाँ द्वारपालों के द्वारा अन्दर
जिन्हें प्रवेश कराया गया था ऐसे धाराशिव के दो भीलों ने राजा
से निवेदन किया—देव! यहाँ से दक्षिण दिशा में गव्यूति प्रमाण बाद
पर्वत के ऊपर धाराशिव नामक नगर है । यहाँ पर हजार स्तम्भों
वाला जिन विश्रामगृह है और उसके ऊपर पर्वत के मस्तक पर बाँबी
है । उस बाँबी को हाथी तालाब से जल और कमल लाकर आकर
तीन प्रदक्षिणा देकर जल से सीत्कार बिन्दुओं के साथ पूजन कर
प्रणाम करता है । उन दोनों को सन्तुष्ट कर वहाँ जाकर जिनेन्द्र
भगवान् की पूजा कर बाँबी की पूजा करते हुए हाथी को देखकर
उसे खुदवाया । उसमें स्थित मञ्जूषा को खोलकर रत्नमयी पार्श्व-
नाथ की प्रतिमा देखकर हर्षित हुआ तथा उस जिन विश्रामालय में
लयणदेव नाम से उस प्रतिमा को स्थापित करा दिया । मूल प्रतिमा
के आगे गाँठ देखकर 'यह विरूप दिखाई दे रही है, इस प्रकार कारी-
गरों से कहा कि इस गाँठ को तोड़ डालो । उन कारीगर ने कहा
यह जलाकी है, इससे जल का प्रवाह निकलेगा । ऐसा कहने पर भी
(राजा ने) गाँठ फुड़वा दी । अनन्तर जल निकला । राजादिक को

स्थितः । नागकुमारः प्रत्यक्षीभूय वक्तुं लग्नः—कालमाहात्म्येन रत्नमय-प्रतिमा रक्षितुं न शक्यत इति मया जलपूर्णं लयणं कृतम् । ततस्त्वया जलापनयनाग्रहो न कर्तव्य इति महताग्रहेण दर्भशय्याया उत्थापितो राजा । ततस्तं पृच्छति स्म-केनेदं लयणं कारितं, तथा वल्मीकमध्ये प्रतिमा केन स्थापितेति । नागकुमारःप्राह—अत्रैव विजयार्धे उत्तरश्रेण्यां नभस्तिलकपुरे राजानावमितवेगसुवेगौ । अत्रैवार्यखण्डजिनालयान् वन्दितुमागतौ मलयगिरौ रावणकृतजिनगृहानपश्यताम् । वन्दित्वा तत्र परिभ्रमन्तौ पार्श्वनाथप्रतिमां लुलोकाते । मञ्जूषायां निक्षिप्य गृहीत्वेमां पर्वतमध्ये अत्र मञ्जूषां व्यवस्थाप्य क्वापि गतौ । आगत्य यावदुत्थापयतस्तावन्नोत्तिष्ठति मञ्जूषा । गत्वा तेरपुरे ऽवधिबोधं महामुनिं पृष्टवन्तौ—मञ्जूषा किमिति नोत्तिष्ठतीति । तैरवाचीयं मञ्जूषा लयणस्योपरिलयणं कथयति । अयं सुवेगो आर्तध्यानेन मृत्वा गजो भूत्वा तां मञ्जूषां पूजयित्वा यदा करकण्डुभूपस्तामुत्पाटयिष्यति तदा गजः संन्यासेन दिवं यास्यतीति । प्रतिमास्थिरत्वमवधार्येदं लयणं केन कारितमिति पृष्टो मुनिः कथयति । विजयार्ध-दक्षिणश्रेण्यां रथनूपुरपुरे राजानौ नीलमहानीलौ जातौ । संग्रामे शत्रुभिः कृतविद्याच्छेदावत्रोषितौ । ताविदं कारितवन्तौ । विद्याः प्राप्य विजयार्धं गतौ । तपसा दिवं गताविति निशम्य तौ दीक्षितौ । ज्येष्ठो ब्रह्मोत्तरं गत इतर आर्तेन हस्ती जातस्तेन देवेन संबोधितः । स जातिस्मरो भूत्वा सम्यक्त्वं व्रतानि चादाय तां पूजयितुं लग्नः । यदा कश्चिदिमां खनति तदा संन्यासं गृह्णीया इति प्रतिपाद्य देवो दिवं गतः त्वयोत्पाटितेति स हस्ती

जल के निकलने पर सन्देह हुआ । तब राजा कुश की शय्या पर आभ्यन्तर और बाह्य संन्यास पूर्वक स्थित हो गया । नागकुमार प्रत्यक्ष होकर कहने लगा—काल के माहात्म्य से रत्नमय प्रतिमा की रक्षा सम्भव नहीं है, अतः मैंने जिन बिम्बालय (लयण) को जल पूर्ण कर दिया है । अतः तुम जल दूर करने का आग्रह नहीं करो, इस प्रकार बहुत आग्रह करने पर राजा दर्भ की शय्या से उठा । तब राजा ने उस नागकुमार से पूछा—यह लयण किसने बनवाया तथा बाँबी के मध्य से प्रतिमा किसने स्थापित की । नागकुमार ने कहा—इसी विजयार्द्ध पर्वत पर उत्तर श्रेणी में नभस्तिलकपुर में राजा अमितवेग और सुवेग थे । एक बार वे दोनों इसी आर्यखण्ड के जिनालयों की वन्दना के लिए आए थे । उन्होंने मलयगिरि पर रावण के द्वारा बनवाए हुए जिनगृहों को देखा । वन्दना कर जब वे दोनों परिभ्रमण कर रहे थे तो उन्होंने पार्श्वनाथ की प्रतिमा को देखा । मञ्जूषा में रखकर इसे लेकर पर्वत के मध्य यहाँ मञ्जूषा को रखकर दोनों कहीं चले गए । आकर जब वे मञ्जूषा उठाने लगे तो मञ्जूषा नहीं उठी । उन्होंने तेरपुर जाकर अवधिज्ञानी महामुनि से पूछा—मञ्जूषा क्यों नहीं उठ रही है? उन्होंने कहा—यह मञ्जूषा लयण के ऊपर लयण को कह रही है । यह सुवेग आर्तध्यान से मरकर हाथी होकर उस मञ्जूषा की पूजा करेगा । जब करकण्डु राजा उसे उखाड़ेगा तब हाथी संन्यासपूर्वक स्वर्ग जायगा । प्रतिमा की स्थिरता का निश्चय कर यह लयण किसने बनवाया, ऐसा पूछने पर मुनि कहने लगे—विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रथनूपुर में नील और महानील राजा हुए । संग्राम में शत्रुओं के द्वारा विद्या नष्ट किए जाने पर यहाँ रहने लगे । उन दोनों ने यह लयण बनवाया है । विद्या पाकर वे विजयार्द्ध पर्वत पर गए । तप से दोनों स्वर्ग गए, ऐसा सुनकर वे दीक्षित हो गए । ज्येष्ठ ब्रह्मोत्तर गया, दूसरा आर्तध्यान से हाथी हुआ, उसे देव ने सम्बोधित किया । उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो गया । वह सम्यक्त्व [illegible] उस प्रतिमा को पूजने लगा । जब कोई इसे खोदे तो तुम संन्यास ग्रहण कर लेना, ऐसा कहकर देव स्वर्ग चला गया । तुमने मंजूषा को उखाड़ लिया है,

संन्यासेन तिष्ठति । त्वं पूर्वभवे च गोपालो जिनपूजया राजा जातो ऽसि । इति संबोध्य नागकुमारो नागवापिकां गतः । तृतीयदिने गत्वा राज्ञा तस्य हस्तिनो धर्मश्रवणं कृतम् । सम्यक्त्वपरिणामेन तनुं विसृज्य सहस्रारं गतो हस्ती । करकण्डुः स्वस्य मातुर्बालदेवस्य च नाम्ना लयनत्रयं कारयित्वा प्रतिष्ठां च तत्रैव स्वतनुजवसुपालाय स्वपदं वितीर्य स्वपित्रा चेरमादिक्षत्रियैश्च दीक्षां बभार । पद्मावत्यपि । करकण्डुर्विशिष्टं तपो विधायायुरन्ते संन्यासेन वितनुर्भूत्वा सहस्रारं गतः । दन्तिवाहनादयः स्वस्य पुण्यानुरूपं स्वर्गलोकं गताः । इति जिनपूजया गोपो ऽप्येवंविधो जज्ञे ऽन्यः किं न स्यादिति ॥

सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः ।
कल्याणकाले ऽथ जिनेश्वराणां सुरेन्द्रदन्तीव विराजते ऽसौ ॥

इति भट्टारकश्रीप्रभाचन्द्रकृतः कथाकोशः समाप्तः ॥

(संवत् १६३८ वर्षे श्रावणसुदि ३ रवौ श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीसकलकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीभुवनकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीज्ञानभूषणदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीविजयकीर्ति देवास्तत्पट्टे भ० श्री शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीसुमतिकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री गुणकीर्तिमुख्यदेशात् स्वात्मपठनार्थं लिखापितः ॥)

अतः वह हाथी संन्यास पूर्वक बैठा है । तुम पहले यहीं ग्वाले थे, जिनपूजा से राजा हुए हो, इस प्रकार सम्बोधित कर नागकुमार नाग-वापिका में चला गया । तीसरे दिन आकर राजा ने उस हाथी को धर्म श्रवण कराया । सम्यक्त्व परिणाम से शरीर छोड़कर हाथी सहस्रार स्वर्ग में चला गया । करकण्डुने अपने, माता के तथा बाल-देव के नाम से तीन लयण (जिन विश्रामालय) बनवाकर तथा प्रति-ष्ठा कराकर वहीं पर अपने पुत्र वसुपाल के लिए अपना पद देकर अपने पिता तथा चेरम आदि क्षत्रियों के साथ दीक्षा धारणकर ली । पद्मावती ने भी दीक्षा ले ली । करकण्डु विशिष्ट तपकर आयु के अन्त में संन्यासपूर्वक मरण कर सहस्रार स्वर्ग में गया । दन्तिवाहनादि अपने पुण्य के अनुरूप स्वर्ग लोक गए । जिस प्रकार जिनपूजा से गोप अच्छी गतियों को प्राप्त हुआ, उसी प्रकार ऐसा करने पर अन्य सद्गतिको क्यों नहीं प्राप्त होगा ?

सुकोमल और समस्त सुखों का बोध करने वाले पदों सहित प्रभा-चन्द्रकृत यह प्रबन्ध सुशोभित हो रहा है, जिस प्रकार जिनेश्वरों के कल्याण काल में देवों के इन्द्र का हाथी (ऐरावत) सुकोमल और समस्त सुखों का बोध कराने वाले जिन चरणों से सुशोभित होता है ।

इस प्रकार भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्रकृत कथाकोश समाप्त हुआ ।

अवनिपाल १
अवन्ती १२,६३,९०■१०,९०■१२,
　९०■१५,९०■२१/६,
　९०■२३,९०■२६
अवसीर [पर्वत] ९०■२५
अशोक ११, ७८,९०■९
अशोका ३९
अश्वदेवी ४९
अष्टापदगिरि ३७
अस्थानि (अटवी) ९०■५
अहिच्छत्र (नगर) १,११,२१,९०■८
अहिमार ८९
अंशुमती ७१
अंशुमान् ७१

(आ)

आकाशगामिनी [विद्या] ६
आदर्शांक ५
आदित्यप्रभ ५
आदित्याभ ५
आनन्द ३४
आनन्दपुर ४६
आभीर ५७
आमलकण्ठ ७८
आराधना ४
आराधना-प्रबन्ध ९०

[इ]

इन्द्रदत्त ६३,६९
इन्द्रधनु ९०■१९
इभ ५६
इला ७१
इलावर्धन ७१

(ई)

ईर्ष्यावती ८३

(उ)

उग्रसेन ४९,९०■२२
उज्जयिनी १२,१४,२५,३०,३७
　४६,६३,६८,७२,८४,८६,
९०■१०,९०■१२,९०■१५,
९०■२१/६, ९०■२३,
९०■२५, ९०■२६
उड्र ४
उत्तरकुरु ९०■२१
उत्तरभूति ३०
उत्तरमथुरा ९
उत्तरापथ ४,९०■११.९०■२५
उदीर्णबलवाहन ३०
उदुम्बरकुथित ८
उद्दायन ८
उद्गगमुनि ७०
उर्विला १३
उलूखल (देश) ३७

[उ]

उशिरावर्त ३७
उष्ट्रग्रीव [पर्वत] ५८

[ऊ]

ऊड्रविषय ९०■१९
ऊर्जयन्त ५८,९०■१४

[ए]

एकरथ्य ४४
एकातपत्र ९०■२१/४

[औ]

औड्र ९४

[क]

कच्छ ८
कडारपिङ्ग ३१
कनकनगर १३
कनकप्रभा ९०■२
कनकमाला ९०■३२
कनकरथ ४१
कनकश्री ५
कनका ६
कन्तिका ४१
कपिल ७६,८०
कपिलक्षेत्र ७६
कपिला ४६,७६
कमल ८४
कमलश्री ७,४६, ९०■२२
कमला ८४
करकण्ड ४२
करकण्डू ९०■३२
करवती ५
करहाटक ४
कलकल ९०■१६
कलकलेश्वर ६३
कलिङ्ग [देश] २, ९०■३२
कलिङ्गसेना ३७
कंस ४६
काकदेवी ४६
काकन्दी ७४, ९०■२१/७
काकव ९०■२१
काञ्चनमाला ४२, ९०■३२
काञ्ची ४
काञ्चीपुर ७७, ९७■३१
काणा ५०
काणादेवी ९०■१४
कामधेनु ६२
कामसेना ७
काम्पिल्य २०,३१,४७ ५५, ९०■१६, ९०■२८
कायसुन्दरी ३०
कार्तवीर्य ६२,८३
कार्तिकपुर ७३
कार्तिकेय ७३
कालप्रिय [पत्तन] ४२
कालमेघ ९०■२६
कालसंदीव ९०■१०
कालिदेव ९०■२९
कालिराक्षस ९०■२९
कालीनागदेवी ४६
का [क] वि ८०
काशी ९०■२.९०■९.९०■२२
काश्यपी ६८,६३,८४
किन्नरपुर ७
किमचल ८९
किंजल्पनामा [पक्षी] ११
कुणालपुर ८१
कुण्डलमण्डित ७
कुण्डिलपुर ५०
कुबेरदत्त ३१,४६
कुम्भकारकट ७९
कुम्भपुर १२
कुरुजाङ्गल ६,१२,९०■१,९०■१०

गोकर्ण (पर्वत) ४१
गोपवती ३३
गोपायन १७
गोमृङ्ग ५
गोवर्धनगिरि ४९
गोवर्धनमुनि ६८
गोविन्द [नट] ४२
गौड १०
गौतम ९०■१०
गौतमस्वामिन् ९०■३२
गौरसंदीप ३०
गौरी ९

[च]

चक्रपुर ५
चक्रायुद्ध ५
चक्रेश्वरी २
चण्डप्रद्योतन ९०■१०
चण्डवेग ७४
चतुर्दश विद्या ६३
चतुर्मुखमुनि ५९
चन्दना ४१, ९०■३१
चन्द्र १८
चन्द्रकीर्ति ७६
चन्द्रगुप्तराजा ६८
चन्द्रगुहा ९०■१४
चन्द्रचूल ५
चन्द्रपुरी ७६
चन्द्रप्रभ ९
चन्द्रभूति ८७
चन्द्रवाहन ६३
चन्द्रवेगा ५
चन्द्रलेखा ७६
चन्द्रवेग ५६
चन्द्रशेखर ९
चन्द्रश्री ८७
चम्पा ७, २२, २३, ३७ ४६, ४८, ५१, ६३, ७०, ९०■१९, ९०■२७, ९०■३२
चाणाक्य ८०
चाणूरमल्लदेवी ४९
चामीकरवती ५
चामुण्डा ७५
चारणमुनि ९०■२२
चारित्रभूषणमुनि १
चारुदत्त ३७
चित्रगुप्त २१
चित्रभूति ९०■३१
चित्रमाला ५
चिलातपुत्र ९०■३१
चिल्लातपुत्र ७७
चेटक ४१, ९०■३१
चेरम ९०■३२
चेलनी ११
चेलिनी २१, ४१, ९०■३१
चोल ९०■३२

[ज]

जनमेजय ९०■१२
जमदग्नि ६, ६२
जम्बूद्वीप ५९
जय २७

जयचन्द्रा ९० १९
जयन्त ५
जयन्तगिरि ९० १४
जयपाल १७
जयपाली २८
जयश्री १३
जयसिंह ९०
जयसेन ५३, ५९, ८९
जयसेनकुमार ३२
जयसेना ५९
जयावती ६ , ७५
जरासन्ध ४९
जलस्तम्भिनी [विद्या] ९० ७
जितशत्रु ३०, ४६, ७१, ७५,
 ९० २१/३
जिनकल्पिक १४
जिनकल्पित ९० १५
जनदत्त ६, ४६, ४७, ४९, ८४,
९० १५, ९० २५, ९० २९,
 ९० ३०
जिनदत्ता ५, ७२, ९० १५
 ९० २२, ९० ३०
जिनदास ९० १, ९० २९
जिनदासी ९० २९
जिनपाल १४, ७२
जिनपालकुमार ९० १५
जिनभद्र ८४
जिनमती ९० ३०
जिनमतिका ८४
जीवक ९० १७
जीवयशा ४९
जीवामारि २१
जैनी ३८
ज्येष्ठा ४१

[ट]

टक्क ४

[त]

तलिकाराष्ट्र [देश] ९० १६
ताम्रलिप्त ३७, ७५, ९० ३२
ताम्रलिप्ति १०
ताराभगवती २
तिलकावती ७७, ९० ३१
तुङ्कारी ४६
तुङ्गभद्रा ९० २२
तुङ्गी ५८
तेरपुर ९० ३२
त्रिगुप्तमुनि ३, ९० ३१

[द]

दक्षिणकाञ्ची ४
दक्षिणमथुरा ९
दक्षिणश्रेणी ९० ३२
दक्षिणापथ ६८, ७५, ७९, ८०, ८१,
 ८७, ९० १०, ९० २२,
 ९० ३१
दण्डक ७९
दत्त ३४
दत्तमुनि ७७
दत्ताचार्य ६१
दन्तिवाहन ९० ३२
दन्तुरा ९० १४

धर्मकीर्ति ७
धर्मघोष ७०
धर्मरुचि ३५
धर्मनगर २४
धर्मपाल ९०■२३
धर्मश्री १३, ९०■२३
धर्मसिंहराजा ८७
धर्मसेना ४६
धातुरस ३७
धान्यकनक १९
धान्यकर ९०■२२
धारा ९०
धाराशिव ९०■३२
धारणी ३४
धूर्मसिंह ३७
धृतिषेण ५९, ५९■१०

(न)

नग्नकि ४२
नद ९०■२१/८
नन्दीमती ७८
नन्द ४९, ५७, ८०, ९०, ९०■३१
नन्दा ९०■९
नन्दीश्वरयात्रा ६
नन्दीश्वराष्टदिन १३
नन्दीश्वराष्टमी २
नभस्तलवल्लभ ५
नभस्तिलकपुर ९०■३२
नमि ४२
नमुचि १२
नयंधर ६४
नरपाल ६
नरसिंह ३१
नर्मदा ५९, ९०■१७
नमवातिलक ९०■१२
नागकुमार ९०■३२
नागदत्त १४, ४८, ९०■१५
९०■२३, ९०■३०, ९०■३२
नागदत्ता १४, २१, ५७, ९०■१५
९०■३०, ९०■३१, ९०■३२
नागधर्म १४, ९०■१५, ९०■३१
नागधर्मा ९०■२६
नागपाश ५
नागवती ९०■१९
नागवसु ४८
नागश्री १४, ६३, ९०■१५
नागसेन ९०■२३
नागानन्द ९०■३२
नाभिगिरि १३
नारद २७, ६३
नासिक्य ५७
निपुणमतिविलासिनी २८
निर्लक्षणनामा ९०■२१/४
निष्कलङ्क २
नील ६, ९०■३२
नृवाहन २३

(प)

पञ्चनमस्कार २
पञ्चाग्निसाधन ४९
पणिक ६७
पणिका ६७

पद्मीश्वर ६७
पद्म १२, ६०(२७)
पद्ममण्डल १२
पद्मरथ २२, ४२,४६
पद्मश्री ६०(२२)
पद्मखण्डपत्तन २८
पद्मावती १, २ ६२, ६०[२२]
    ६०[३२]
पद्मिनीखेट [ग्राम] ३३
परकच्छपत्तन ६०[१६]
परथ: ६८
परशु ६२
परशुराम ६२
पर्णलघ्वी (विद्या] ७
पर्वत २७
पवनवेगा १३
पलाशकुट ११, ६०[६]
पलाश [ग्राम] ३३
पल्लर ६० [२२]
पाकशासन २६
पाञ्चाल ५४
पाटलिपुत्र ४. १०,१६, ३६, ५४
    ८०,८८,६०,६०[२६]
पाटवर्धन [हस्ती] ४६
पाण्ड्य ६०(३२)
पात्रकेसरिन् १
पादौषध मुनि ६०[१]
पारकुलराग ४६
पाराशर मुनि ४०
पांसुल ६५
पिण्याकगन्ध ६, ४७
पिप्पल ४७
पुत्रपरम्पराविधि ५६
पुद्गल ६०(२६)
पुण्डरीका ४८
पुण्ड्रनगर ४
पुण्ड्रवर्धन ६८
पुरन्दरदेव १३
पुरुषोत्तम मन्त्री २
पुष्कर ७
पुष्पचूल ५१
पुष्पडाल ११
पुष्पदत्ता ५१
पुष्पदन्त १२,६०[१४]
पूतना [विद्या] ४६
पूतिगन्ध: १३
पूतिमुखा १३
पूतिमुखीं ५१
पूर्णचन्द्र ५
पूर्णभद्र १५, ६०(१८)
पूर्वमालव ६०[१६]
पृथिवीपुर ८६
पृथ्वी ४६
पोदनपुर ४६,५४,६५,६०[११]
    ६०[१३]
प्रजापाल ६,१४,१६,२१,६४,६७
    ८६,६०[१५], ६०[२१/३.]
    ६०(३१)
प्रद्योत ६३, ७१
प्रभाचन्द्र ६०, ६०(३२)

प्रभावती ८, २६, ४१
प्रमाणपल्ली ६०[२१/३]
प्रह्लाद १२
प्रश्रेणिक ७७
प्रज्ञप्तिविद्या १३
प्रियकारिणी ५, ४१, ६०(११)
प्रयङ्गु ५
प्रियङ्गुश्री ६०(२३)
प्रियङ्गुसुन्दरी ३१
प्रियदत्त ७
प्रियदत्ता ६०[१५]
प्रियदमधर ६०[१५]
प्रियधर्म १४, ६०(१५)
प्रियधर्मा १४
प्रियमित्र १४, ६०[१५]
प्रियसेन ८७
प्रिया ६०[३]
प्रियङ्कुर २६
प्रियङ्गुलता ४६
प्रियंवद ६०[२७]
फाल्गुनाष्टमी २

[ब]

बलभद्र ४६, ५८
बलराज १३
बलवाहन ६०(३२)
बलि १२
बृहदारण्यक शास्त्र २७
बृहस्पति १२
ब्रह्मदत्त ७, २०, ६०[२१/१,] ६०(२८)
ब्रह्मरथ २०, ६०(२८)
ब्रह्मा ९, ४३
ब्रह्मिला ५१
बालक ७६
बालदेव ६०(३२)
बिलवति ६०(२५)
बिभीषण ५
बुद्धदास ७२
बुद्धश्री १६
बुद्धिमती २, ६०[१६]

[भ]

भगीरथ ५६
भट ६०[३२]
भट्टा ४६
भण्ड ७६
भद्रबाहु ६८
भद्रमहिष ६१
भद्रबट ६८
भद्रिलपुर ४६, ५६
भरत ५२, ७६
भरत [ग्राम] ६०
भर्तृमित्र ५६, ७७
भवसेन ६
भव्यश्री ५
भव्यसेनाचार्य ६
भानु ३७
भीम ७, ५५, ५६
भीमदास ५५
भीष्म ५०
भूतबलि ६०[१४]

भूतरमण ५
भूतिलक (नगर) ५
भूमिगृह (नगर) ३४
भूमितिलक ६
भृगुकच्छ ५०
मेखला ३७

(म)

मगध १, ६, ११, १४, १६, २१, २२, ५०, ६४, ९०(११), ९०(१५), ९०(२१/२), ९०(२१/३) ९०(३१)
मगधसुन्दरी ११
मङ्गलपुर ३२
मणिकेतु ५९
मणिचन्द्र ४६
मणिभद्रा १५
मणिमाली ३
मणिवत ४६
मथुरा १३, ४९
मदनकेतु ३
मदनवेगा २९
मदनसुन्दरी २
मदनावली ९०(१९)
मधुबिन्दु ३६
मनोरमा २३, ४१, ८५
मरीचि ५२
मरुदेवा ४२
मलयगिरि ९०[१२]
मलयावती ९०(१०)
महाकर्मप्रकृतिप्राभृत ९०(१७)
महाकाल ६३ ९०[२६]
महानील ९०(१२)
११
महापद्म १२, ९०(१३)
महापद्माचार्य ६०
महारत्न ५९
महीधर ८०, ९०(१९)
महेन्द्रराम १२
महेश्वरपुर ४१
माघमास ९० (७)
माणिभद्रा ९०(१८)
मान्याखेटनगर २
मारिदत्ता ९०(३२)
मालव ४
मालयर (पर्वत) ९०(२५)
मित्रवती ३४, ३७, ९०(१६)
मिथिला १२, २२. ४२, ७५, ८५, ९०[२७]
मुण्डराज ९०(२२)
मुण्डीरस्वामिपत्तन ४२
मूलस्थान ४२
मूलाराधना ४
मृगध्वज ६१
मृगावती ४१, ९०(३१)
मृगी ५
मृत्तिकावती ४६
मेखलपुर ९५
मेघकूट ६
मेघदेवी ४६
मेघनिनाद ४१

मेघनिनाद ४१
मेघनिबद्ध ४१
मेघपुर ५६
मेघमाला ५६
मेघवती ५६
मेघसेन ५६
मेदज (मुनि)४६
मेरुक ४२
मोरीयवंश ६६(२२)
मौद्गिल्लगिरि ६४

(य)

यतिवृषभ ८६
यम २४
यमदण्ड १७, २६, ७५, ६०(३१)
यमदण्डराज ७७
यमपाल २६
यमपाश २५, ७५
यमलार्जुना ४६
यमुनाचक्र ३२,४६,६६,७१,७८,८६, ६०(७)
यमुनाचक्र ७८
यवनलिपि ६०(१०)
यशस्वती ५०, ८०, ६०(३१)
यशस्विनी ४१, ६०[३१]
यशोदा ४६
यशोधर २१, ६०(२२), ६०(३१)
यशोधरा ५
यशोध्वज १०
यशोभद्रा ६३
यक्षदत्ता १३

(र)

रक्ता १२
रक्जोदरी ४६
रतिषेण ५६
रत्नचूल ३, ५, ३७
रत्नप्रभ ४७
रत्नमाला ५
रत्नसंचयपुर २, ५६
रत्नायुध ५
रथनूपुर ६०(३२)
रथनूपुर चक्रवालपुर ६०(७)
रविगुप्ताचार्य २
रश्मिवेग ५
रागबुद्धि ६०[२५]
राजगृह ६, ११, १४, १८, २१, २६, ३४, ४५, ६३, ७७, ६०(११) ६०(१५) ६०(२१/३) ८०(३१)
राजपुर ३७
रामगिरि ६०(३२)
रामदत्ता ५, २८
रामिल्या २०, ६०(२८)
रावण ६०(३२)
रिष्टामात्य ८१
रुक्मिणी ६०(१७)
रुद्र ४१
रुद्रा ४२
रुद्रदत्त ३७, ७७, ६०(३०)
रूपिणी ५०
रेणुका ६२

रेवती ६, ४६, ८३
रोहिणी ३८, ४६
रोहक ७३
रौरक ८

[ल]

लकुच ९०[२६]
लक्षपाक ४६
लक्ष्मी [ग्राम] ५०
लक्ष्मीधामन् ५
लक्ष्मीमती ७, १२, ५०, ९०[१६]
लाटदेश ७६, ९०[३०]
लुब्धश्रेष्ठी ४८
लोहाचार्य ४

[व]

वज्रकुमार १३
वज्रदंष्ट्र ५
१२
वज्रायुध ५
वटग्राम ६०
वत्स १४,१५,२१ ९०[७]९०[१५],
९० (१८), ९०(३१), ९०(३२)
वत्सपालक ११
वनराज ५
वनवासदेश ८०
वप्रा ९०(१६)
वरदत्त ५६,६२, ९०(२१)
वरधर्मा ६,३६
वरसेन ६०
वराहग्रीव ३७
वरुण ६, ८४
वरेन्द्र ९०[४]
वर्धमान ११, ४१, ६७, ९०(३१)
वसन्ततिलका ४२, ८४
वसन्तमाला ५६
वसन्तश्री ३७
वसन्तसेन ५६, ६३
वसन्तसेना २५, ३६, ८४
वसु २७
वसुदत्त ९०(३२)
वसुदेव ४६
वसुन्धरा ९०[२२]
वसुपाल१८ ४६,९०[८].९०[१२]
९०[३१]. ९०[३२]
वसुपाली ९०[१८]
वसुमती २१, ९०[८], ९०[९]
९०[१२], ९०[२१]
९०[३२]
वसुमित्र२१,९०[१२] ९०[२५]
९०[३१], ९०[३२]
वसुमित्रा ९०[१८]. ९०[३१]
वसुवर्धन ७
वसुशर्मा २६
वंक्र ८६
वाराणसी ९०(२), ९०(२२)
वामन १२
वामरथ ७५
वायुभूति ६३. ९०(४)
वारत्रिक २६
वाराणसी ४,२६,३०,४६,९०(२)
वारिषेण ११, ९०(३१)

वासव ८
वासुदेव ९, ५०, ५५, ५८, ६५, ९०(२१/४)
वासुपूज्य ९०(२७)
विचित्र ९०(२)
विचित्रपताका ९०(२)
विजय ५, ६१
विजयदत्त ७६
विजयमती ५३
विजयसेन २०, ४६, ५३, ८३, ८४, ९०(२८)
विजया ५९, ७६
विजयार्ध ९०(१९), ९०(३२)
विदेह ९०(१७)
विद्याम्बरी ९०(७)
विद्याधरी २९
विद्युच्चर ७५
विद्युच्चोर ११, ७५, ९०[१९]
विद्युज्जिह्व ४१
विद्युद्रथ ६, ९०[७], ९०[३२]
विद्युत्प्रभा ५, ४७
विद्युद्दंष्ट्र ५
विद्युद्वेगा ९०[७]
विद्युन्मती ९०[३१]
विद्युल्लेखा ९०[३२]
विनयवती ९०(१)
विनयंधर ९०[१]
विनीत [देश] ९०(१२), ९०[२१/१, ९०[२१/३, ९०[२४]
विन्ध्य ५५
विपुलगिरि ९०(१०)
विमलचन्द्राचार्य ३०
विमलमती ९०(२२)
विमलवाहन १३, २३
विमला ४२, ८१
विशाखदत्त ९०(२)
विशाखाचार्य ६८
विशाला ४१
विशालीपुरी ९०[३१]
विश्वदेवी ४२, ७६
विश्वभूति ४६
विश्वसेन ४२, ४६, ६६
विश्वानुलोम ६, २२, ९०(२७)
विष्णु १२
विष्णुकुमार १२
विष्णुदत्त ४७, ९०(४)
विष्णुधर्म २१, ९०[३१]
विष्णुमित्र ३७
विष्णुश्री ९०[४]
वीतशोकपुर ३, ५, ७८
वीरदत्त ९०[१२]
वीरदत्ता ९०[१२]
वीरनरेश्वर ६
वीरभट्टारक ९०[१२]
वीरभद्राचार्य ४९,९०[४], ९०[५] ९०(३२)
वीरमती ६, ३९, ७३, ८७
वीरवती ३४
वीरसेन ७४, ८७, ८९, ९०[११]

वीरसेना ८६, ९०(११
वृषभ ४६
वृषभदत्त ८८
वृषभदास २३
वृषभदेव ५२
वृषभदेवी ४६
वृषभध्वज ९०(६)
वृषभश्री ८८
वृषभसेन ७२, ८१, ८८, ९०(१)
वृषसेना ९०(१)
वेगवती ५, ९०(१६)
वेगाङ्कवती १३
वेत्रवती ४४, ९०(११)
वेनातट ७५,९०(१०),९०[१४]
वेनानदी ७५
वैजयन्त ५, ६६
वैदिश ४
वैभार ७७
वैश्रवण ८१
व्याघ ४०
[श]
शकट ३८, ८०
शकटादेवी ४६
शकटाल ६०
शकुनशर्मा ४६
शक्कुर ६, ३८
शङ्खिनी ५
शतद्वार ९०[२१/२],९०[२१/४]
शतमन्यु ९०(१६)
शम्भुकुमार ५८
शालिसिक्थ ८२
शिवकीर्ति ६
शिवकोटि ४
शिवगुप्तवन्दक ८६
शिवनन्दी ९०(६)
शिवभूति १५,२८,९९'४६,९०(१८
शिवमन्दिर (पुर) ३७
शिवशर्मा २६,३८,४६,९०(२१/२
शीतलस्वामिन् ७३
शुभ ८५
शुभतुङ्ग २
शूरसेन ३७, ९०(१६)
शूरसेना ९०[१६]
शौरिपुर ४६
श्रावस्ती ३०,८६,९०(३२)
श्रीकान्ता ३०, ८८
श्रीकीर्ति ११
श्रीकुमार ५७
श्रीदत्त ५, ७१
श्रीदेवी ६८, ९०(३)
श्रीधर ५, ९०[२२]
श्रीधरा ५
श्रीधर्म ३०, ९०[२१/१०]
श्रीधर्माचार्य ६
श्रीध्वज ९०(२२)
श्रीभूति ५, २८
श्रीमती १३, ३०
श्रीवर्धन ३२
श्रीवर्म ५
श्रीवर्मा १२

श्रीषेणा ५७
श्रुतवृष्टि ४१
श्रुतदेवता ६०[५]
श्रुतसागरचन्द्राचार्य १२
श्रुतसागरमुनि १२
श्रेणिक ११, २१, २६, ४१, ४६,
६०[१०], ६०[३१]
श्वेतराम ६२
श्वेतसंदीव ६०(१०)

[ष]

षष्ठाष्टमी ६६

(स)

सगरचक्रवर्ती ५६
सती ३५
सत्यवती ४०, ४१
सत्यंधर ४१
सनत्कुमार ३, ६६
सप्तभङ्गी २
सप्तव्यसन २६
सप्रभा ६४
समन्तभद्रस्वामी ४
समाधिगुप्त २३,४१,५०,६०[२२]
६०(३०), ६०[३२]
समुद्रदत्त ५,१७,२१,२८,३७,६६
६०[२३], ६०(३१)
समुद्रदत्ता १३, २१
समुद्रविजय ४६, ५६
सरयू ५३
सर्वहित ६०[२२]
सर्वोपाध्याय ६०[३]
सर्वौषधीमुनि २६
सहदेवी ६६
सहस्रभट ६
सहस्रभट १४, ८६, ६०[२१/१]
संगमदेव ६६
संघश्री २, १६, ६०[२२]
संजयन्त ५
संवरीपुर ७८, ८६
साकेतपुर ८४, ६०[२४]
सागरदत्त १३, १७, २१, २६, ४२,
४५, ४७, ५१, ५७, ६७,
६०[२१/५],६०(२३), ६०(८१)
सागरदत्ता १७
सागरसेन ५३
सात्यकि ४१
सिद्धपुर ६०(१३)
सिद्धार्थ ६१, ६८, ६०[१]
सिन्धु ४
सिन्धुतट ६० १६)
सिन्धुदेवी ६०[१६]
सिन्धुदेश ४१, ६०[१६], ६०[३१]
सिन्धुनद ६०(१६)
सिन्धुमती ६०[१६]
सिन्धुविषय ४८
सिन्धुसागर ४८
सिंह ६०, ६०[११]
सिंहचन्द्र ५
सिंहध्वज ६०(१६)
सिंहपुर ५, २८
सिंहबल १२, १३

सिंहयक ३७
सिंहरथ ४६, ९०[११]
सिंहरथा ९०[११]
सिंहराज ७
सिंहलद्वीप ३७, ९०[१६]
सिंहवती ५
सिंहसेन ५, २८, ३३, ४२
सीता ३
सीमन्धर ६१
सीमा ५
सुकान्त २३
सुकुमाल ६१
सुकेतु ८४
सुकोसल ६४
सुगुप्तमुनि ९०(३२)
सुघ प ५
सुज्येष्ठा ९०[३१]
सुरत्त ८४
सुदर्शन २३,९०[२१/७
सुदृष्टि ८६
सुधर्म २२, २४, ६३
सुधर्माचाय ५
सुनन्द ६
सुनन्दा ६, ६४, ९०[९]
सुन्दर ३७
सुन्दरी ५, ४७
सुप्रतिष्ठा ९०(७)
सुप्रभा ४१, ८४, ८६, ९०(३१)
सुप्रभावती ९०(३१)
सुबन्धु ८०
सुभद्र ६३, ८४
सुभद्रा ३३,३७,४१,४७,७७,८४
९०(२३), ९०(३१)
सुभूति १३
सुभौम ८३, ९०(२१/७)
सुमति ३१, ८९
सुमित्र ५, २८, ९०[२४]
सुमित्रराज ८०
सुमित्रा ५, १५,२८, ९०[२१/१]
सुमित्राचार्य १३
सुरक्ता २७
सुरत ३५
सुरपतिनामा ६५
सुरम्य [देश] ९०[११]
सुरावर्त ५
सुराष्ट्र (देश) ९०[१४],९०[१७]
९०(२०)
सुरेन्द्रदत्त ६३
सुलक्ष्मणा ५
सुवर्णखुर ९०[२१]
सुवर्णभद्र ७६
सुवर्णवर्मा ९०(२४)
सुवर्णश्री ९०[२४]
[illegible]र १०
[illegible] ५६, ९०(३२)
[illegible], ९, ९०(१७)
[illegible]ता ५, ७९, ८४
सुसीमा १०
सुंसुमार (ह्रद) २६
सूरचन्द्र ९० ११)

सूरवसु १४, ९०(१५),९०(१६)
सूरदत्ता ९०(१६)
सूरदेव ११
सूरमित्र ९०(१६)
सूर्यनामा १०
सूर्यमित्र ४७, ६३
सूर्याभ ५
सूर्योदयपुर ९०(१९)
सोमक १६
सोमदत्त ६, १३
सोमदत्ता ६३
सोमदेव ५०
सोमभूति ८४
सोमशर्मा ६.२९.३८.४६.६३.
६८. ८४,९०(४).९०(१०.
९०(११). ९०(२२).९०(२५)
९०▇११. ९०▇१२
सोमश्री ५५. ९०▇२१
सोमा १७, ९०[१०]
सोमिल्ला ११, ३८, ४६
सोमिल्या ९०(४)
सौराष्ट्र १०
स्वयंभूरमण ८२, ९०(२१/८)
स्वस्तिमती २७

'ह'

हृतवान (पर्वत) ७२
हरिचन्द्र ५
हरिणम्भ्रुङ्ग ५
हरिवश ९०(१७)
हरिषेण ९० (१९)
हल्ल ९०(२१/६)
हस्तिनागपुर ६.१२.१३.४०.४६.
६६.७६.९०(१). ९०[२]
हिमशीतल (राजा) २
ह्रीमन्त 'पर्वत' ११